अनुवाद

भाषाएँ–समस्याएँ

(Translation: Languages-Problems)

जय राम

vuokn : Hkk”kk,&leL;k,

vuokn : Hkk"kk,&leL;k,

t ; jke

Hkk"kk idk'ku
ubZ fnYyh & 110002

© iidk'kd

I.S.B.N. : 978-81-323-5492-5

iFke lLdj.k % 2021

Hkk"kk iidk'ku

22] iidk'knhi fcfYMx] vilkjh jkM]
nfj;kxit] ubl fnYyh & 110002
}kjk oYM VDukykjthit ubl fnYyh dl lg;kx ls iidkf'kr

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**अनुवाद**	**1**
	इतिहास	2
	अनुवाद का अर्थ, परिभाषा एवं क्षेत्र	6
	अनुवाद का अर्थ	7
	भारतीय चिन्तन	8
	प्राचीन परम्परा	12
	आधुनिक परम्परा	13
	समभाषिक अनुवाद	15
	अन्यभाषिक अनुवाद	17
	अनुवाद का महत्त्व	22
	तुलनात्मक साहित्य विवेचन	24
	साध्य रूप में अनुवाद	24
	मूलभाषा का ज्ञान	27
	अनुवाद सिद्धान्त का विकास	33
	अनुवाद की प्रक्रिया	39
	अनुवाद की इकाई	40
	पाठ की संरचना	40

अनुवाद परिवृत्ति 61
अनुवाद के प्रकार 64
अनुवाद की प्रकृति 69
अनुवाद का शिल्प पक्ष 71
विभिन्न रूपों में संगणक-सहायित-अनुवाद 74
अनुवाद एवं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान 80
अनुवाद की आवश्यकता 88
व्यवसाय के रूप में अनुवाद की आवश्यकता 91
अनुवाद-प्रक्रिया 94
अनुवाद की पाठ-प्रकृतिपरक सीमाएँ 101

2. पत्रकारिता और अनुवाद 103
पत्रकारिता और अनुवाद का सामान्य परिचय 103
पत्रकारिता में अनुवाद की समस्याएँ 104
पारिभाषिक शब्दावली की समस्या 108

3. भाषा का अर्थ 115
राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा 119
भाषा-परिवार 123
भाषा का माध्यम 133

4. भाषा की उत्पत्ति 135
भाषा की उत्पत्ति 135
परोक्ष मार्ग 139

5. भाषायी समस्या 148

6. भाषाविज्ञान 160
भाषा विज्ञान के अनेक नाम 160
भाषाविज्ञान का इतिहास 161
मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान 170
शरीर-विज्ञान और भाषा-विज्ञान 170

1

अनुवाद

किसी भाषा में कही या लिखी गयी बात का किसी दूसरी भाषा में सार्थक परिवर्तन अनुवाद (Translation) कहलाता है। अनुवाद का कार्य बहुत पुराने समय से होता आया है।

संस्कृत में 'अनुवाद' शब्द का उपयोग शिष्य द्वारा गुरु की बात के दुहराए जाने, पुनः कथन, समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन, आवृत्ति जैसे कई संदर्भों में किया गया है। संस्कृत के 'वद्' धातु से 'अनुवाद' शब्द का निर्माण हुआ है। 'वद्' का अर्थ है बोलना। 'वद्' धातु में 'अ' प्रत्यय जोड़ देने पर भाववाचक संज्ञा में इसका परिवर्तित रूप है 'वाद' जिसका अर्थ है– 'कहने की क्रिया' या 'कही हुई बात'। 'वाद' में 'अनु' उपसर्ग उपसर्ग जोड़कर 'अनुवाद' शब्द बना है, जिसका अर्थ है, प्राप्त कथन को पुनः कहना। इसका प्रयोग पहली बार **मोनियर विलियम्स** ने अँग्रेजी शब्द टांसलेशन के पर्याय के रूप में किया। इसके बाद ही 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग एक भाषा में किसी के द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री की दूसरी भाषा में पुनः प्रस्तुति के संदर्भ में किया गया।

वास्तव में अनुवाद भाषा के इन्द्रधनुषी रूप की पहचान का समर्थतम मार्ग है। अनुवाद की अनिवार्यता को किसी भाषा की समृद्धि का शोर मचा कर टाला नहीं जा सकता और न अनुवाद की बहुकोणीय उपयोगिता से इन्कार किया जा सकता है। Translation के पर्यायस्वरूप 'अनुवाद' शब्द का स्वीकृत अर्थ है, एक भाषा की विचार सामग्री को दूसरी भाषा में पहुँचाना। अनुवाद के लिए हिंदी

में 'उल्था' का प्रचलन भी है। अँग्रेजी में Translation के साथ ही Translation का प्रचलन भी है, जिसे हिंदी में 'लिप्यन्तरण' कहा जाता है।

अनुवाद के लिए 'भाषांतर' और 'रूपांतर' का प्रयोग भी किया जाता रहा है, लेकिन अब इन दोनों ही शब्दों के नए अर्थ और उपयोग प्रचलित हैं। 'भाषांतर' और 'रूपांतर' का प्रयोग अँग्रेजी के Translation शब्द के पर्याय-स्वरूप होता है, जिसका अर्थ है दो व्यक्तियों के बीच भाषिक संपर्क स्थापित करना। कन्नड़भाषी व्यक्ति और असमियाभाषी व्यक्ति के बीच की भाषिक दूरी को भाषांतरण के द्वारा ही दूर किया जाता है। 'रूपांतर' शब्द इन दिनों प्रायः किसी एक विधा की रचना की अन्य विधा में प्रस्तुति के लिए प्रयुक्त है। जैसे, प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का रूपांतरण 'होरी' नाटक के रूप में किया गया है।

किसी भाषा में अभिव्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में यथावत् प्रस्तुत करना अनुवाद है। इस विशेष अर्थ में ही 'अनुवाद' शब्द का अभिप्राय सुनिश्चित है। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है, वह मूलभाषा या स्रोतभाषा है। उससे जिस नई भाषा में अनुवाद करना है, वह 'प्रस्तुत भाषा' या 'लक्ष्य भाषा' है। इस तरह, स्रोत भाषा में प्रस्तुत भाव या विचार को बिना किसी परिवर्तन के लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करना ही अनुवाद है।

इतिहास

अनुवाद असाधारण रूप से कठिन और आह्वाहनात्मक कार्य माना जाता है। यह एक जटिल, कृत्रिम, आवश्यकता-जनित, और एक दृष्टि से सर्जनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें असाधारण और विशिष्ट कोटि की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। यह इसकी अपनी प्रकृति है। परन्तु माना जाता है कि मौलिक लेखन न होने के कारण अनुवाद को सम्मान का स्थान नहीं मिलता है, क्योंकि इस बात की अवगणना होती है कि अनुवाद इसीलिए कठिन है कि वह मौलिक लेखन नहीं-पहले कही गई बात को ही दुबारा कहना होता है, जिसमें अनेक नियन्त्रणों और बन्धनों का पालन करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार अमौलिक होने के कारण अनुवाद का महत्त्व तो कम हो गया, परन्तु इसी कारण इसके लिए अपेक्षित नियन्त्रणों और बन्धनों को महत्त्वपूर्ण नहीं समझा गया। इस सम्बन्ध में सृजनशील लेखकों के विचारों की प्रायः चर्चा होती रही है। कुछ विचार इस प्रकार हैं–

(क) सम्पूर्ण अनुवाद कार्य केवल एक असमाधेय समस्या का समाधान खोजने के लिए किया गया प्रयास मात्र है। (**हुम्बोल्त**)

(ख) किसी कृति का अनुवाद उसके दोषों को बढ़ा देता है और उसके गुणों को विद्रूप कर देता है। (**वाल्तेयर**)

(ग) कला की एक विधा के रूप में अनुवाद कभी सफल नहीं हो सकते। (**चक्रवर्ती राजगोपालाचारी**)

(घ) अनुवादक वंचक होते हैं। (**एक इतालवी कहावत**)

ऐसे विचारों के उद्‌भव के पीछे तत्कालीन परिस्थितियाँ तथा उनसे प्रेरित धारणाएँ मानी जाती हैं। पहले अनुवाद सामग्री का बहुलांश साहित्यिक रचनाएँ होती थीं, जिनका अनुवाद रचनाओं की साहित्यिक प्रकृति की सीमाओं के कारण पाठक की आशा के अनुरूप नहीं हो पाता था। साथ ही यह भी धारणा थी कि रचना की भाषा के प्रत्येक अंश का अनुवाद अपेक्षित है, जिससे मूल संवेदना का कोई अंश छट न पाए, और क्योंकि यह सम्भव नहीं, अतः अनुवाद को प्रवंचना की कोटि में रख दिया गया था।

पृष्ठभूमि

यह स्थिति स्थूल रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रही, जिसमें अनुवाद मुख्य रूप से व्यक्तिगत रुचि से प्रेरित अधिक था, सामाजिक आवश्यकता से प्रेरित कम। इसके अतिरिक्त मौलिक लेखन की परिमाणगत प्रचुरता के कारण भी इस प्रकार की राय बनी। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् साम्राज्यवाद के खण्डित होने के फलस्वरूप अनेक छोटे-बड़े राष्ट्र स्वतन्त्र हुए तथा उनकी अस्मिता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो गया। संघीय गणराज्यों के घटक भी अपनी अस्मिता के विषय में सचेत होने लगे। इस सम्पर्क-स्थापना तथा अस्मिता-विकास की स्थिति में भाषा का केन्द्रीय स्थान है, जो बहुभाषिकता की स्थिति के रूप में दिखाई पड़ता है। इसमें अनुवाद की सत्ता अवश्यम्भावी है। इसके फलस्वरूप अनुवाद प्रधान रूप से एक सामाजिक आवश्यकता बन गया। विविध प्रकार के लेखनों के अनुवाद होने लगे। अनुवाद कार्य एक व्यवसाय हो गया। अनुवादकों को प्रशिक्षित करने के अभिकरण स्थापित हो गए, जिनमें अल्पकालीन और पूर्णसत्रीय पाठ्यक्रमों और कार्यशालाओं आदि का आयोजन किया जाने लगा। इसका यह भी परिणाम हुआ कि एक ओर तो अनुवाद के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदला तथा दूसरी ओर ज्ञानात्मक दृष्टि से अनुवाद सिद्धान्त

के विकास को विशेष बल मिला तथा अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए अनुवाद सिद्धान्त की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। फलस्वरूप, अनुवाद सिद्धान्त एक अपेक्षाकृत स्वतन्त्र ज्ञानशाखा बन गया, जिसकी जानकारी अनुवादक, अनुवाद शिक्षक, और अनुवाद समीक्षक, तीनों के लिए उपादेय हुआ।

सामयिक सन्दर्भ

अनुवाद के विषय में सैद्धान्तिक चर्चा का सूत्रपात आधुनिक युग में ही हुआ, ऐसा समझना तथ्य और तर्क दोनों के ही विपरीत माना जाने लगा। अनुवाद कार्य की लम्बी परम्परा को देखते हुए यह मानना तर्कसंगत बन गया कि अनुवाद कार्य के विषय में सैद्धान्तिक चर्चा की परम्परा भी पुरानी है। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में **सिसरो** के लेखन में अनुवाद चिन्तन के बीज प्राप्त होते हैं और तत्पश्चात् भी इस विषय पर विद्वान् अपने विचार प्रकट करते रहे हैं। इस चिन्तन की पृष्ठभूमि भी अवश्य रही है, यद्यपि उसे स्पष्ट रूप से पारिभाषित नहीं किया गया। यह अवश्य माना गया कि जिस प्रकार अनुवाद कार्य का संगठित रूप में होना आधुनिक युग की देन है, उसी प्रकार अनुवाद सिद्धान्त की अपेक्षाकृत सुपरिभाषित पृष्ठभूमि का विकसित होना भी आधुनिक युग की देन है।

अनुवाद सिद्धान्त के आधुनिक सन्दर्भ की मूल विशेषता है, इसकी बहुपक्षीयता। यह किसी एकान्वित पृष्ठभूमि पर आधारित न होकर अनेक परन्तु परस्पर सम्बद्ध शास्त्रों की समन्वित पृष्ठभूमि पर आधारित है, जिनके प्रसंगोचित अंशों से वह पृष्ठभूमि निर्मित है। मुख्य शास्त्र हैं—पाठ संकेत विज्ञान, सम्प्रेषण सिद्धान्त, भाषा प्रयोग सिद्धान्त, और तुलनात्मक अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान। यह स्पष्ट करना भी उचित होगा कि एक ओर मानव अनुवाद तथा यान्त्रिक अनुवाद, तथा दूसरी ओर लिखित अनुवाद और मौखिक अनुवाद के व्यावहारिक महत्त्व के कारण इनके सैद्धान्तिक पक्ष के विषय में भी चिन्तन आरम्भ होने लगा है। तथापि मानवकृत लिखित माध्यम के अनुवाद की ही परिमाणगत तथा गुणात्मक प्रधानता मानी जाती रही है तथा इनसे सम्बन्धित सैद्धान्तिक चिन्तन के मुद्दे विशेष रूप से प्रासंगक हैं।

यद्यपि प्राचीन भारतीय परम्परा में अनुवाद चिन्तन की परम्परा उतने व्यवस्थित तथा लेखबद्ध रूप में प्राप्त नहीं होती, जिस प्रकार पश्चिम में, तथापि अनुवाद चिन्तन के बीज अवश्य उपलब्ध हैं। तदनुसार, अनुवाद पुनरुक्ति है—एक भाषा में व्यंजित सन्देश को दूसरी भाषा में पुनः कहना।

अनुवाद के प्रति यह दृष्टि पश्चिमी परम्परा में स्वीकृत धारणा से बाह्य स्तर पर ही भिन्न प्रतीत होती है। परन्तु इस दृष्टि को अपनाने से अनुवाद सम्बन्धी अनेक सैद्धान्तिक बिन्दुओं की अधिक विशद् तथा संगत व्याख्या की गई है। इसी सम्बन्ध में दूसरी दृष्टि द्वन्द्वात्मकता की है, जो आधुनिक है तथा मुख्य रूप से संरचनावाद की देन है।

अनुवाद कार्य की परम्परा को देखने से यह स्पष्ट है कि अनुवाद सिद्धान्त सम्बन्धी चिन्तन साहित्यिक कृतियों को लेकर ही अधिक हुआ है। यह स्थिति संगत भी है। विगत युग में साहित्यिक कृतियों को ही अनुवाद के लिए चुना जाता था। अब भी साहित्यिक कृतियों के ही अनुवाद अधिक परिमाण में होते हैं। तथापि, परिस्थितियों के अनुरोध से अब साहित्येतर लेखन का अनुवाद भी अधिक मात्रा में होने लगा है। विशेष बात यह है कि दोनों कोटियों के लेखनों में एक मूलभूत अन्तर है, जिसे लेखक की व्यक्तिनिष्ठता तथा निर्वैयक्तिकता की शब्दावली में अधिक स्पष्ट रीति से प्रकट कर सकते हैं। व्यक्तिनिष्ठ लेखन का, अपनी प्रकृति की विशेषता से, कुछ अपना ही सन्दर्भ है। यह कहकर हम दोनों की उभयनिष्ठ पृष्ठभूमि का निषेध नहीं कर रहे, परन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में हम दोनों की दूरी और आपेक्षिक स्वायत्तता को विशेष रूप से उभारना चाहते हैं। यह उचित ही है कि भाषाप्रयोग के पक्ष से निर्वैयक्तिक लेखन के अनुवाद के सैद्धान्तिक सन्दर्भ को भी विशेष रूप से उभारा जाए।

विस्तार

अनुवाद सिद्धान्त का एक विकासमान आयाम है अनुसन्धान की प्रवृत्ति। अनुवाद सिद्धान्त की बहुविद्यापरक प्रकृति के कारण विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ–भाषाविज्ञानी, समाजशास्त्री, मनोविज्ञानी, शिक्षाविद्, नृतत्त्वविज्ञानी, सूचना सिद्धान्त विशेषज्ञ–परस्पर सहयोग के साथ अनुवाद के सैद्धान्तिक अंशों पर शोधकार्य में रुचि लेने लगे। अनुवाद कार्य का क्षेत्र बढ़ता गया। अलग–अलग संस्कृतियों के लोगों में सम्पर्क बढ़ा–लोग विदेशों में शिक्षा के लिए जाते, व्यापारिक–औद्योगिक संगठन विभिन्न देशों में काम करते, विभिन्न भाषा–भाषी लोग सम्मेलनों में एक साथ बैठकर विमर्श करते, राष्ट्रों के मध्य राजनयिक अनुबन्ध होने लगे। इन सभी में अनुवाद की अनिवार्य रूप से आवश्यकता प्रतीत हुई और अनुवाद की विशिष्ट समस्याएँ उभरने लगी। इन समस्याओं का अध्ययन अनुवाद सम्बन्धी अनुसन्धान का उर्वर क्षेत्र बना। एक ओर भाषा और संस्कृति

तथा दूसरी ओर भाषा और विचार के मध्य सम्बन्ध पर अनुवाद द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर नया चिन्तन सामने आया।

मशीन अनुवाद तथा मौखिक अनुवाद के क्षेत्रों में नई-नई सम्भावनाएँ सामने आने लगी, जिसने इन क्षेत्रों में अनुवाद अनुसन्धान को गति प्रदान की। मानव अनुवाद तथा लिखित अनुवाद के परम्परागत क्षेत्रों पर भी भाषा अध्ययन की नई दृष्टियों ने विशेषज्ञों को नूतन पद्धति से विचार करने के लिए प्रेरित किया। इन सब प्रवृत्तियों से अनवाद सिद्धान्त को प्रतिष्ठा का पद मिलने लगा और इसे सैद्धान्तिक शोध के एक उपयुक्त क्षेत्र के रूप में स्वीकृति प्राप्त होने लगी।

अनुवाद दशा में पहला सार्थक प्रयास **एच. एच. विल्सन** ने 1855 में 'ग्लोरी ऑफ ज्यूडिशियल एंड रेवेन्यू टर्म्स' के द्वारा किया। सन् 1961 में राजभाषा विधायी आयोग की स्थापना हुई। इसका काम अखिल भारतीय मानक विधि शब्दावली तैयार करना था। 1970 में विधि शब्दावली का प्रकाशन हुआ। इसका परिवर्धन होता आ रहा हे। इसका नवीन संस्करण 1984 में निकला। इस आयोग ने कानून संबंधी अनेक ग्रंथों का अनुवाद किया है। कई न्यायालयों में न्यायाधीश हिंदी में भी निर्णय देने लगे है।

अनुवाद का अर्थ, परिभाषा एवं क्षेत्र

भारत में अनुवाद की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। कहते हैं अनुवाद उतना ही प्राचीन है, जितनी कि भाषा। आज 'अनुवाद' शब्द हमारे लिए कोई नया शब्द नहीं है। विभिन्नभाषायी मंच पर, साहित्यिक पत्रिकाओं में, अखबारों में तथा रोजमर्रा के जीवन में हमें अक्सर 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग देखने-सुनने को मिलता है। साधारणत: एक भाषा-पाठ में निहित अर्थ या संदेश को दूसरे भाषा-पाठ में यथावत् व्यक्त करना अर्थात् एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में कहना अनुवाद है। परंतु यह कार्य उतना आसान नहीं, जितना कहने या सुन ने में जान पड़ रहा है। दूसरा, अनुवाद सिद्धांत की चर्चा करना और व्यावहारिक अनुवाद करना-दो भिन्न प्रदेशों से गुजरने जैसा है, फिर भी इसमें कोई दो राय नहीं कि अनुवाद के सिद्धांत हमें अनुवाद कर्म की जटिलताओं से परिचित कराते हैं। फिर, किसी भी भाषा के साहित्य में और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जितना महत्त्व मूल लेखन का है, उससे कम महत्त्व अनुवाद का नहीं है, लेकिन सहज और संप्रेषणीय अनुवाद मूल लेखन से भी कठिन काम है। भारत

जैसे बहुभाषी देश के लिए अनुवाद की समस्या और भी महत्त्वपूर्ण है। इसकी जटिलता को समझना अपने आप में बहुत बड़ी समस्या है।

अनुवाद का अर्थ

अनुवाद एक भाषिक क्रिया है। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में अनुवाद का महत्त्व प्राचीन काल से ही स्वीकृत है। आधुनिक युग में जैसे-जैसे स्थान और समय की दूरियाँ कम होती गईं वैसे-वैसे द्विभाषिकता की स्थितियों और मात्र में वृद्धि होती गई और इसके साथ-साथ अनुवाद का महत्त्व भी बढ़ता गया। अन्यान्य भाषा-शिक्षण में अनुवाद विधि का प्रयोग न केवल पश्चिमी देशों में वरन् पूर्वी देशों में भी निरन्तर किया जाता रहा है। बीसवीं शताब्दी में देशों के बीच दूरियाँ कम होने के परिणामस्वरूप विभिन्न वैचारिक धरातलों और आर्थिक, औद्योगिक स्तरों पर पारस्परिक भाषिक विनिमय बढ़ा है और इस विनिमय के साथ-साथ अनुवाद का प्रयोग और अधिक किया जाने लगा है।

साधारणत: अनुवाद कर्म में हम एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं। अनुवाद कर्म के मर्मज्ञ विभिन्न मनीषियों द्वारा प्रतिपादित अलग-अलग शब्दों में परिभाषित किए हैं। अनुवाद के पूर्ण स्वरूप को समझने के लिए यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख किया जा रहा है–

पाश्चात्य चिन्तन

नाइडा–'अनुवाद का तात्पर्य है स्रोत-भाषा में व्यक्त सन्देश के लिए लक्ष्य-भाषा में निकटतम सहज समतुल्य सन्देश को प्रस्तुत करना। यह समतुल्यता पहले तो अर्थ के स्तर पर होती है फिर शैली के स्तर पर।'

जॉन कनिंगटन–'लेखक ने जो कुछ कहा है, अनुवादक को उसके अनुवाद का प्रयत्न तो करना ही है, जिस ढंग से कहा, उसके निर्वाह का भी प्रयत्न करना चाहिए।'

कैटफोड–'एक भाषा की पाठ्य सामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्यसामग्री से प्रतिस्थापना ही अनुवाद है।'

सैमुएल जॉनसन–'मूल भाषा की पाठ्य सामग्री के भावों की रक्षा करते हुए उसे दूसरी भाषा में बदल देना अनुवाद है।'

फॉरेस्टन–'एक भाषा की पाठ्य सामग्री के तत्त्वों को दूसरी भाषा में स्थानान्तरित कर देना अनुवाद कहलाता है। यह ध्यातव्य है कि हम तत्त्व या कथ्य को संरचना (रूप) से हमेशा अलग नहीं कर सकते हैं।'

हैलिडे–'अनुवाद एक सम्बन्ध है, जो दो या दो से अधिक पाठों के बीच होता है, ये पाठ समान स्थिति में समान प्रकार्य सम्पादित करते हैं।'

न्यूमार्क–'अनुवाद एक शिल्प है, जिसमें एक भाषा में व्यक्त सन्देश के स्थान पर दूसरी भाषा के उसी सन्देश को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।'

इस प्रकार नाइडा ने अनुवाद में अर्थ पक्ष तथा शैली पक्ष, दोनों को महत्त्व देने के साथ-साथ दोनों की समतुल्यता पर भी बल दिया है। जहाँ नाइडा ने अनुवाद में मूल-पाठ के शिल्प की तुलना में अर्थ पक्ष के अनुवाद को अधिक महत्त्व दिया है, वहीं कैटफोड अर्थ की तुलना में शिल्प सम्बन्धी तत्त्वों को अधिक महत्त्व देते हैं। सैमुएल जॉनसन ने अनुवाद में भावों की रक्षा की बात कही है, तो न्यूमार्क ने अनुवाद कर्म को शिल्प मानते हुए निहित सन्देश को प्रतिस्थापित करने की बात कही है। कैटफोड ने अनुवाद को पाठसामग्री के प्रतिस्थापन के रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार यह प्रतिस्थापन भाषा के विभिन्न स्तरों (स्वन, स्वनिम, लेखिम), भाषा की वर्ण सम्बन्धी इकाइयों (लिपि, वर्णमाला आदि), शब्द तथा संरचना के सभी स्तरों पर होना चाहिए। नाइडा, कैटफोड, न्यूमार्क तथा सैमुएल जॉनसन की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद एक भाषा पाठ में व्यक्त (निहित) सन्देश को दूसरी भाषा पाठ में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया का परिणाम है। हैलिडे अनुवाद को प्रक्रिया या उसके परिणाम के रूप में न देखकर उसे दो भाषा-पाठों के बीच ऐसे सम्बन्ध के रूप में परिभाषित करते हैं,जो दो भाषाओं के पाठों के मध्य होता है।

भारतीय चिन्तन

देवेन्द्रनाथ शर्मा–विचारों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपान्तरित करना अनुवादहै।'

भोलानाथ–किसी भाषा में प्राप्त सामग्री को दूसरी भाषा में भाषान्तरण करना अनुवाद है, दूसरे शब्दों में एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथा सम्भव और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास ही अनुवाद है।'

पट्टनायक–अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सार्थक अनुभव (अर्थपूर्ण सन्देश या सन्देश का अर्थ) को एक भाषा-समुदाय से दूसरी भाषा-समुदाय में सम्प्रेषित किया जाता है।'

विनोद गोदरे–अनुवाद, स्रोत-भाषा में अभिव्यक्त विचार अथवा रचना अथवा सूचना साहित्य को यथासम्भव मूल भावना के समानान्तर बोध एवं संप्रेषण के धरातल पर लक्ष्य-भाषा में अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया है।'

रीतारानी पालीवाल–स्रोत-भाषा में व्यक्त प्रतीक व्यवस्था को लक्ष्य-भाषा की सहज प्रतीक व्यवस्था में रूपान्तरित करने का कार्य अनुवाद है।'

दंगल झाल्टे–स्रोत-भाषा के मूल पाठ के अर्थ को लक्ष्य-भाषा के परिनिष्ठित पाठ के रूप में रूपान्तरण करना अनुवाद है।'

बालेन्दु शेखर–अनुवाद एक भाषा समुदाय के विचार और अनुभव सामग्री को दूसरी भाषा समुदाय की शब्दावली में लगभग यथावत् सम्प्रेषित करने की सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अनुवाद की परिकल्पना में स्रोत-भाषा की सामग्री लक्ष्य-भाषा में उसी रूप में, सम्पूर्णता में प्रकट होती है। सामग्री के साथ प्रस्तुति के ढंग में भी समानता हो। मूल-भाषा से लक्ष्य-भाषा में रूपान्तरित करने में स्वाभाविकता का निर्वाह अनिवार्यत: हो और लक्ष्य-भाषा में व्यक्त विचारों में ऐसी सहजता हो कि वह मूल-भाषा पर आधारित न होकर स्वयं मूल-भाषा होने का एहसास पैदा करे। हम यह भी लक्ष्य करते हैं कि लगभग सभी परिभाषाओं में अनुवाद-प्रक्रिया को शामिल किया गया है। इन सभी परिभाषाओं के आधार पर 'अनुवाद' को परिभाषित किया जा सकता है–'अनुवाद, मूल-भाषा या स्रोत-भाषा में निहित अर्थ (या सन्देश)व शैली को यथा सम्भव सहज समतुल्य रूप में लक्ष्य-भाषा की प्रकृति व शैली के अनुसार परिवर्तित करने की सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।'

अनुवाद के क्षेत्र

आज की दुनिया में अनुवाद का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। शायद ही कोई क्षेत्र बचा हो जिसमें अनुवाद की उपादेयता को सिद्ध न किया जा सके। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आधुनिक युग के जितने भी क्षेत्र हैं सबके सब अनुवाद के भी क्षेत्र हैं, चाहे न्यायालय हो या कार्यालय, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी हो या शिक्षा, संचार हो या पत्रकारिता, साहित्य का हो या सांस्कृतिक सम्बन्ध, इन सभी क्षेत्रों में अनुवाद की महत्ता एवं उपादेयता को सहज ही देखा-परखा जा सकता है। चर्चा की शुरुआत न्यायालय क्षेत्र से करते हैं।

न्यायालय–अदालतों की भाषा प्रायः अंग्रेजी में होती है। इनमें मुकद्मों के लिए आवश्यक कागजात अक्सर प्रादेशिक भाषा में होते हैं, किन्तु पैरवी अंग्रेजी में ही होती है। इस वातावरण में अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषा का बारी-बारी से परस्पर अनुवाद किया जाता है।

सरकारी कार्यालय–आजादी से पूर्व हमारे सरकारी कार्यालयों की भाषा अंग्रेजी थी। हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता मिलने के साथ ही सरकारी कार्यालयों के अंग्रेजी दस्तावेजों का हिन्दी अनुवाद जरूरी हो गया। इसी के मद्देनजर सरकारी कार्यालयों में राजभाषा प्रकोष्ठ की स्थापना कर अंग्रेजी दस्तावेजों का अनुवाद तेजी से हो रहा है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी–देश-विदेश में हो रहे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के गहन अनुसंधान के क्षेत्र में तो सारा लेखन-कार्य उन्हीं की अपनी भाषा में किया जा रहा है। इस अनुसंधान को विश्व पटल पर रखने के लिए अनुवाद ही एक मात्र साधन है। इसके माध्यम से नई खोजों को आसानी से सबों तक पहुँचाया जा सकता है। इस दृष्टि से शोध एवं अनुसंधान के क्षेत्र में अनुवाद बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

शिक्षा–भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश के शिक्षा-क्षेत्र में अनुवाद की भूमिका को भला कौन नकार सकता है। कहना अतिशयोक्ति न होगी कि शिक्षा का क्षेत्र अनुवाद के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। देश की प्रगति के लिए परिचयात्मक साहित्य, ज्ञानात्मक साहित्य एवं वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद बहुत जरूरी है। आधुनिक युग में विज्ञान, समाज-विज्ञान, अर्थशास्त्र,भौतिकी, गणित आदि विषय की पाठ्य-सामग्री अधिकतर अंग्रेजी में लिखी जाती है। हिन्दी प्रदेशों के विद्यार्थियों की सुविधा के लिए इन सब ज्ञानात्मक अंग्रेजी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद तो हो ही रहा है, अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी इस ज्ञान-सम्पदा को रूपान्तरित किया जा रहा है।

जनसंचार–जनसंचार के क्षेत्र में अनुवाद का प्रयोग अनिवार्य होता है। इनमें मुख्य हैं समाचार-पत्र, रेडियो, दूरदर्शन। ये अत्यन्त लोकप्रिय हैं और हर भाषा-प्रदेश में इनका प्रचार बढ़ रहा है। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में समाचार प्रसारित होते हैं। इनमें प्रतिदिन 22भाषाओं में खबरें प्रसारित होती हैं। इनकी तैयारी अनुवादकों द्वारा की जाती है।

साहित्य–साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद वरदान साबित हो चुका है। प्राचीन और आधुनिक साहित्य का परिचय दूरदराज के पाठक अनुवाद के माध्यम सेपाते

हैं। 'भारतीय साहित्य' की परिकल्पना अनुवाद के माध्यम से ही संभव हुई है। विश्व-साहित्य का परिचय भी हम अनुवाद के माध्यम से ही पाते हैं। साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद के कार्य ने साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन को सुगम बना दिया है। विश्व की समृद्ध भाषाओं के साहित्यों का अनुवाद आज हमारे लिए कितना जरूरी है कहने या समझाने की आवश्यकता नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अनुवाद का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों का संवाद मौखिक अनुवादक की सहायता से ही होता है। प्राय: सभी देशों में एक-दूसरे देशों के राजदूत रहते हैं और उनके कार्यालय भी होते हैं। राजदूतों को कई भाषाएँ बोलने का अभ्यास कराया जाता है। फिर भी देशों के प्रमुख प्रतिनिधि अपने विचार अपनी ही भाषा में प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुवाद की व्यवस्था होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री एवं शान्ति को बरकरार रखने की दृष्टि से अनुवाद की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृति–अनुवाद को 'सांस्कृतिक सेतु' कहा गया है। मानव-मानव को एक-दूसरे के निकट लाने में, मानव जीवन को अधिक सुखी और सम्पन्न बनाने में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 'भाषाओं की अनेकता' मनुष्य को एक दूसरे से अलग ही नहीं करती, उसे कमजोर, ज्ञान की दृष्टि से निर्धन और संवेदन शून्य भी बनाती है। 'विश्वबंधुत्व की स्थापना' एवं 'राष्ट्रीय एकता' को बरकरार रखने की दृष्टि से अनुवाद एक तरह से सांस्कृतिक सेतु की तरह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

अनुवादक

अनुवादक (translator) का कार्य स्रोतभाषा के पाठ को अर्थपूर्ण रूप से लक्ष्यभाषा में अनुदित करता है। अनुवाद का कार्य अन्ततोगत्वा एक ही व्यक्ति करता है। एकाकी अनुवाद में तो अनुवादक अकेला होता ही है, सहयोगात्मक अनुवाद में भी, अन्तिम भाग में, सम्पादन का काम अनुवादक को अकेले करना होता है। अत: अनुवादक के साथ अनेक दायित्व जुड़ जाते हैं और कार्य के सफल निष्पादन में उससे अनेक अपेक्षाएं रहती हैं। भाषा ज्ञान, विषय ज्ञान, अभिव्यक्ति कौशल, व्यक्तिगत गुण आदि की दृष्टि से अनुवादक से होने वाली अपेक्षाओं पर विचार करना होता है।

एक अच्छा अनुवादक वह है, जो–

स्रोत भाषा (जिससे अनुवाद करना है) के लिखित एवं वाचिक दोनों रूपों का अच्छा ज्ञाता हो,

लक्ष्य भाषा (जिसमें अनुवाद करना है) के लिखित रूप का अच्छा ज्ञाता हो,

पाठ जिस विषय या टॉपिक का है, उसकी जानकारी रखता हो।

अनुवाद की परम्परा

अनुवाद की परम्परा बहुत पुरानी है। बेबल के मीनार (Tower of Babel) की कथा प्रसिद्ध ही है, जो इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि, मानव समाज में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। यह तर्कसंगत रूप से अनुमान किया जा सकता है कि पारस्परिक सम्पर्क की सामाजिक अनिवार्यता के कारण अनुवाद व्यवहार का जन्म भी बहुत पहले हो गया होगा। परन्तु जहाँ तक लिखित प्रमाणों का सम्बन्ध है, अनुवाद परम्परा के आरम्भिक बिन्दु का प्रमाण ईसा से तीन सहस्र वर्ष पहले प्राचीन मिस्र के राज्य में, द्विभाषिक शिलालेखों के रूप में मिलता है।

तत्पश्चात् ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व रोमन लोगों के ग्रीक लोगों के सम्पर्क में आने पर ग्रीक से लैटिन में अनुवाद हुए।

बारहवीं शताब्दी में स्पेन में इस्लाम के साथ सम्पर्क होने पर यूरोपीय भाषाओं में अरबी से अनुवाद हुए।

बृहत् स्तर पर अनुवाद तभी होता है, जब दो भिन्न भाषा-भाषी समुदायों में दीर्घकाल पर्यन्त सम्पर्क बना रहे तथा उसे सन्तुलित करने के प्रयास के अन्तर्गत अल्प विकसित संस्कृति के लोग सुविकसित संस्कृति के लोगों के साहित्य का अनुवाद कर अपने साहित्य को समृद्ध करें। ग्रीक से लैटिन में और अरबी से यूरोपीय भाषाओं में प्रचुर अनुवाद इसी प्रवृत्ति के परिणाम माने जाते हैं। अनुवाद कार्य को इतिहास की प्रवृत्तियों की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किजा जाता है–प्राचीन और आधुनिक।

प्राचीन परम्परा

प्राचीन युग में मुख्यत: तीन प्रकार की रचनाओं के अनुवाद प्राप्त होते हैं। क्योंकि इन तीन क्षेत्रों में ही प्राय: ग्रन्थों की रचना होती थी। ये क्षेत्र हैं–साहित्य, दर्शन और धर्म। साहित्यिक रचनाओं में ग्रीक के इलियड और ओडेसी, संस्कृत

के रामायण और महाभारत ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनका व्यापक स्तर पर अनुवाद हुआ। दार्शनिक रचनाओं में **प्लेटो** के संवाद, अनुवाद की दृष्टि से लोकप्रिय हुए। धार्मिक रचनाओं में बाइबिल के सबसे अधिक अनुवाद पाए जाते हैं।

आधुनिक परम्परा

आधुनिक युग में अनुवाद के माध्यम से प्राचीन युग के ये महान ग्रन्थ अब विभिन्न भाषा भाषियों को उपलब्ध होने लगे हैं। अनुवाद तकनीक की दृष्टि से इन अनुवादों की विशेषता यह है कि, प्राचीन युग में ये अनुवाद विशेष रूप से एकपक्षीय रूप में होते थे अर्थात् जिस भाषा में अनुवाद किए जाते थे (= लक्ष्यभाषा) उनसे उनकी किसी रचना का मूल ग्रन्थ भाषा (= मूलभाषा या स्रोत भाषा) में अनुवाद नहीं होता था। इसका कारण यह कि मूल ग्रन्थों की तुलना में लक्ष्यभाषा के ग्रन्थ प्रायः उतने उत्कृष्ट नहीं होते थे, दूसरी बात यह कि मूल ग्रथों की भाषा के प्रति अत्यन्त आदर भावना के कारण लक्ष्य भाषा के रूप में प्रयोग में लाना सम्भवतः अनुचित समझा जाता था।

आधुनिक युग में अनुवाद का क्षेत्र विस्तृत हो गया है। उपर्युक्त तीन के अतिरिक्त विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्साशास्त्र, प्रशासन, कूटनीति, विधि, जनसम्पर्क (समाचार पत्र इत्यादि) तथा अन्य अनेक क्षेत्रों के ग्रन्थों और रचनाओं का अनवाद भी होने लगा है। प्राचीन युग के अनुवादों की तुलना में आधुनिक युग के अनुवाद द्विपक्षीय (बहुपक्षीय) रूप में होते हैं। आधुनिक युग में अनुवाद का आर्थिक और राजनीतिक महत्त्व भी प्रतिष्ठित हो गया है। विभिन्न राष्ट्रों के मध्य राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अनुबन्धों के प्रपत्र के द्विभाषिक पाठ तैयार किए जाते हैं। बहुराष्ट्रीय संस्थाओं को एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र में प्रत्येक कार्य पाँच या छः भाषाओं में किया जाता है। इन सब में अनिवार्य रूप से अनुवाद की आवश्यकता होती है।

इस स्थिति का औचित्य भी है। आधुनिक युग में हुई औद्योगिक, प्रौद्योगिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रान्ति के फलस्वरूप विश्व के राष्ट्रों में एक-दूसरे के निकट सम्पर्क की आवश्यकता की चेतना का अतीव शीघ्र विकास हुआ, उसके कारण अनुवाद को यह महत्त्व मिलना स्वाभाविक माना जाता है। यही कारण है कि यदि प्राचीन युग की प्रेरक शक्ति अनुवादक की व्यक्तिगत रुचि अधिक थी, तो आधुनिक युग में अनुवाद की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक आवश्यकता एक प्रबल प्रेरक शक्ति बनकर

सामने आई है। इस स्थिति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। भाषायी अल्पसंख्यक वर्ग के लेखकों की रचनाएँ दूसरी भाषाओं में अनुदित होकर अधिक पढ़ी जाती हैं। अपेक्षाकृत छोटे तथा बहुभाषी राष्ट्रों को अपने देश के भीतर ही विभिन्न भाषाभाषी समुदायों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने की समस्या का सामना करना पड़ता है।

सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप अनुवाद के इस महत्त्व के कारण अनुवाद कार्य अब संगठित रूप से होता देखा जाता है। राजनीतिक-आर्थिक कारणों से उत्पन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुवाद अब एक व्यवसाय बन चुका है तथा व्यक्तिगत होने के साथ-साथ उसका संगठनात्मक रूप भी प्रतिष्ठित होता दिखता है। अनुवाद कौशल को सिखाने के लिए शिक्षा संस्थाओं में प्रबन्ध किए जाते हैं तथा स्वतन्त्र रूप से भी प्रशिक्षण संस्थान काम करते हैं।

व्याख्याएँ

ज्ञातस्य कथनमनुवादः–ज्ञात का (पुनः) कथन अनुवाद है। **(जैमिनिन्यायमाला)**

प्राप्तस्य पुनः कथनेऽनुवादः–पूर्वकथित का पुनः कथन अनुवाद है। **(शब्दार्थचिन्तामणिः)**

आवृत्तिनुवादो वा–पुनरावर्तन ही अनुवाद है। **(भर्तृहरि)**

लेखक होना सरल है, किन्तु अनुवादक होना अत्यन्त कठिन है।–**मामा वरेरकर**

प्रत्येक कृति अनुवाद योग्य है, परन्तु प्रत्येक कृति का अच्छा अनुवाद नहीं किया जा सकता। –**खुशवन्त सिंह**

अनुवाद, प्रकाश के आने के लिए वातायन खोल देता है, वह छिलके को छोड़ देता है, जिससे हम गूदे का स्वाद ले सकें।–**बाइबिल**

एक विशिष्ट प्रकार के भाषिक व्यापार के रूप में अनुवाद, भारतीय परम्परा की दृष्टि से, कोई नई बात नहीं। वस्तुतः 'अनुवाद' शब्द और उससे उपलक्षित भाषिक व्यापार भारतीय परम्परा में बहुत पहले से चले आए हैं। अतः 'अनुवाद' शब्द और इसके अंग्रेजी पर्याय 'ट्रांसलेशन' के व्युत्पत्तिमूलक और प्रवृत्तिमूलक अर्थों की सहायता से अनुवाद की परिभाषा और उसके स्वरूप को श्रेष्ठतर रूप से जाना जा सकता है।

व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

'अनुवाद' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है–पुनः कथन, एक बार कही हुई बात को दोबारा कहना। इसमें अर्थ की पुनरावृत्ति होती हैं, शब्द (शब्द रूप) की नहीं। 'ट्रांसलेशन' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'पारवहन' अर्थात् एक स्थान-बिन्दु से दूसरे स्थान-बिन्दु पर ले जाना। यह स्थान-बिन्दु भाषिक पाठ है। इसमें भी ले जाई जाने वाली वस्तु अर्थ होता है, शब्द नहीं। उपर्युक्त दोनों शब्दों में अन्तर व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की दृष्टि से है, अतः सतही है। वास्तविक व्यवहार में दोनों की समानता स्पष्ट है। अर्थ की पुनरावृत्ति को ही दूसरे शब्दों में और प्रकारान्तर से, अर्थ का भाषान्तरण कहा जाता है, जिसमें कई बार मूल भाषा की रूपात्मक-गठनात्मक विशेषताएँ लक्ष्यभाषा में संक्रान्त हो जाती है।

वस्तुतः 'अनुवाद' शब्द का भारतीय परम्परा वाला अर्थ आधुनिक सन्दर्भ में भी मान्य है और इसी को केन्द्र बिन्दु बनाकर अनुवाद की प्रकृति को अंशशः समझा जाता है। तदनुसार, अनुवाद कार्य के तीन सन्दर्भ हैं–समभाषिक, अन्यभाषिक और अन्तरसंकेतपरक।

समभाषिक अनुवाद

समभाषिक सन्दर्भ में अर्थ की पुनरावृत्ति एक ही भाषा की सीमा के अन्तर्गत होती है, परन्तु इसके आयाम भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। मुख्य आयाम दो हैं -कालक्रमिक और समकालिक। कालक्रमिक आयाम पर समभाषिक अनुवाद एक ही भाषा के ऐतिहासिक विकास की दो निकटस्थ अवस्थाओं में होता है, जैसे, पुरानी हिन्दी से आधुनिक हिन्दी में अनुवाद। समकालिक आयाम पर समभाषिक अनुवाद मुख्य रूप से तीन स्तरों पर होता है–बोली, शैली और माध्यम।

बोली स्तर पर समभाषिक अनुवाद के चार उपस्तर हो सकते हैं–

(क) एक भौगोलिक बोली से दूसरी भौगोलिक बोली में, जैसे ब्रज से अवधी में,

(ख) अमानक बोली से मानक बोली में, जैसे गंजाम ओड़िया से पुरी की ओड़िया में अथवा नागपुर मराठी से पुणे मराठी में,

(ग) बोली रूप से भाषा रूप में, जैसे ब्रज या अवधी से हिन्दी में,

(घ) एक सामाजिक बोली से दूसरी सामाजिक बोली में, जैसे अशिक्षितों या अल्पशिक्षितों की भाषा से शिक्षितों की भाषा में या एक धर्म

में दीक्षित लोगों की भाषा से अन्य धर्म में दीक्षित लोगों की भाषा में।

शैली स्तर पर समभाषिक अनुवाद को शैली-विकल्पन के रूप में भी देखा जा सकता है। इसका एक अच्छा उदाहरण है औपचारिक शैली से अनौपचारिक शैली में अनुवाद, जैसे 'धूम्रपान वर्जित है' (औपचारिक शैली), 'बीड़ी सिगरेट पीना मना है' (अनौपचारिक शैली)। इसी प्रकार 'ट्यूबीय वायु आधान में सममिति नहीं रह गई। है' (तकनीकी शैली), 'टायर की हवा निकल गई है' (गैरतकनीकी शैली)।

माध्यम की दृष्टि से समभाषिक अनुवाद की स्थिति वहाँ होती है जहाँ मौखिक माध्यम में प्रस्तुत सन्देश की लिखित माध्यम में या इसके विपरीत पुनरावृत्ति की जाए जैसे, मौखिक माध्यम का एक वाक्य है–'समय की सीमा के कारण मैं अपने श्रोताओं को अधिक विस्तार से इस विषय में नहीं बता पाऊँगा।' इसी को लिखित माध्यम में इस प्रकार से कहना सम्भवत: उचित माना जाता है–'स्थान की सीमा के कारण मैं अपने पाठकों को अधिक विस्तार से इस विषय का स्पष्टीकरण नहीं कर सकूंगा।' ('समय' 'स्थान', 'श्रोता' 'पाठक' 'विषय में बता पाना' 'का स्पष्टीकरण कर सकना')।

समभाषिक अनुवाद के उपर्युक्त उदाहरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं।

(क) अर्थान्तरण या अर्थ की पुनरावृत्ति की प्रक्रिया में शब्द चयन तथा वाक्य-विन्यास दोनों प्रभावित होते हैं। माध्यम अनुवाद में स्वन प्रक्रिया की विशेषताएँ (बलाघात, अनुतान आदि) लिखित व्यवस्था की विशेषताओं (विराम-चिह्न आदि) का रूप ले लेती हैं या इसके विपरीत होता है।

(ख) बोली, शैली, और माध्यम के आयामों के मध्य कठोर विभाजन रेखा नहीं, अपितु इनमें आंशिक अतिव्याप्ति पाई जाती है, जिसकी सम्भावना भाषा प्रयोग की प्रवृत्ति में ही निहित है। जैसे, शैलीगत अनुवाद की आंशिक सत्ता माध्यम अनुवाद में दिखाई देती है, और तदनुसार 'के विषय में बता पाना' जैसा मौखिक माध्यम का, अत: अनौपचारिक, चयन, लिखित माध्यम में औपचारिकता का स्पर्श लेता हुआ 'का स्पष्टीकरण कर सकना' हो जाता है। इसी प्रकार शैलीगत अनुवाद में सामाजिक बोलीगत अनुवाद भी कभी-कभी समाविष्ट हो जाता है। जैसे, शिक्षितों की बोली में, औपचारिक शैली की प्रधानता की प्रवृत्ति हो सकती है और अल्पशिक्षितों या अशिक्षितों की बोली में अनौपचारिक शैली की।

समभाषिक अनुवाद की समस्याएँ न केवल रोचक हैं अपितु अन्यभाषिक अनुवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी हैं। अनुवाद को भाषाप्रयोग की एक विधा के रूप में देखने पर समभाषिक अनुवाद का महत्त्व और भी स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्यभाषिक अनुवाद की प्रकृति को समझने की दृष्टि से समभाषिक अनुवाद की प्रकृति को समझना न केवल सहायक है, अपितु आवश्यक भी है। ये कहा जा सकता है कि अनुवाद व्युत्पन्न भाषाप्रयोग है, जिसके दो सन्दर्भ हैं–समभाषिक और अन्यभाषिक। इस सन्दर्भ भेद से अनुवाद व्यवहार में अन्तर आ जाता है, परन्तु दोनों ही स्थितियों में अनुवाद की प्रकृति वही रहती है।

अन्यभाषिक अनुवाद

अन्यभाषिक अनुवाद दो भाषाओं के बीच में होता है। ये दो भाषाएँ ऐतिहासिकता और क्षेत्रीयता के समन्वित मानदण्ड पर स्वतन्त्र भाषाओं के रूप में पहचानी जाती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से एक ही धारा में आने वाली भाषाओं को सामान्यतः उस स्थिति में स्वतन्त्र भाषा के रूप में देखते हैं। यदि वह कालक्रम में एक दूसरे के निकट सन्निहित न हों, जैसे संस्कृत और हिन्दी, इन दोनों के मध्य प्राकृत भाषाएँ आ जाती हैं। इसी प्रकार क्षेत्रीयता की दृष्टि से प्रतिवेशी भाषाओं में अत्यधिक आदन-प्रदान होने पर भी उन्हें भिन्न भाषाएँ ही मानना होगा, जैसे हिन्दी और पंजाबी। अन्यभाषिक अनुवाद के सन्दर्भ में सम्बन्धित भाषाओं का स्वतन्त्र अस्तित्त्व महत्त्व की बात होती है। समभाषिक अनुवाद की तुलना में अन्यभाषिक अनुवाद सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। भाषाप्रयोग की दृष्टि से अन्यभाषिक अनुवाद की समस्याओं में समभाषिक अनुवाद की समस्याओं से गुणात्मक अन्तर दिखाई पड़ता है। इस प्रकार समभाषिक अनुवाद से सम्बन्धित होते हुए भी अन्यभाषिक अनुवाद, अपेक्षाकृत स्वनिष्ठ व्यापार है।

अन्तर संकेतभाषिक अनुवाद

अनुवाद शब्द के उपर्युक्त दोनों सन्दर्भ अपेक्षाकृत सीमित हैं। इनमें अनुवाद को भाषा-संकेतों का व्यापार माना गया है। वस्तुतः भाषा-संकेत, संकेतों की एक विशिष्ट श्रेणी है, जिनके द्वारा सम्प्रेषण कार्य सम्पन्न होता है। सम्प्रेषण के लिए विभिन्न कोटियों के संकेतों को काम में लिया जाता है। इन्हें सामान्य संकेत कहा

जाता है। इस दृष्टि से भी अनुवाद शब्द की परिभाषा की जाती है। इसके अनुसार एक संकेतों द्वारा कही गई बात को दूसरी कोटि के संकेतों द्वारा पुनः कहना इस प्रकार के अनुवाद को अन्तरसंकेतपरक अनुवाद कहा जाता है। यह सामान्य संकेत विज्ञान के अन्तर्गत है। भाषिक संकेतों को प्रवर्तन बिन्दु मानकर संकेतों को भाषिक और भाषेतर में विभक्त किया जाता है। भाषेतर में दो भाग हैं–बाह्य (बाह्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य) और आन्तरिक (अन्तरिन्द्रिय द्वारा ग्राह्य)।

अनुवाद की दृष्टि से संकेत-परिवर्तन के व्यापार की निम्नलिखित कोटियाँ बन सकती हैं–

1. बाह्य संकेत का बाह्य संकेत में अनुवाद–इसके अनुसार किसी देश का मानचित्र उस देश का अनुवाद है, किसी प्राणी का चित्र उस प्राणी का अनुवाद है।

2. बाह्य संकेत का भाषिक संकेत में अनुवाद–इसके अनुसार किसी प्राणी के लिये किसी भाषा में प्रयुक्त कोई शब्द उस प्राणी का अनुवाद है। इस दृष्टि से वस्तुतः यहा भाषा दर्शन की समस्या है, जिसकी व्याख्या अर्थ के संकेत सिद्धान्त में की गई है।

3. आन्तरिक संकेत से आन्तरिक संकेत में अनुवाद–इसके अनुसार किसी एक घटना को उसकी समशील संवेदना में परिवर्तित करना इस श्रेणी का अनुवाद है। स्पष्ट है कि इस स्थिति की वास्तविक सत्ता नहीं हो सकती। अतः केवल सैद्धान्तिकता की दष्टि से ही यह कोटि निर्धारित की जाती है।

4. आन्तरिक संकेत से भाषिक संकेत में अनुवाद–इसके अनुसार किसी आन्तरिक संवेदना के लिए किसी शब्द का प्रयोग करना इस कोटि का अनुवाद है। इसको अधिक स्पष्टता से कहा जाता है कि, किसी भौतिक स्थिति के साथ सम्पर्क होने पर–जैसे, किसी दुर्घटना को देखकर, प्रकृति के किसी दृश्य को देखकर, किसी वस्तु को हाथ लगाकर, कुछ सूंघकर, दूसरे शब्दों में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होने पर–मन में जिस संवेदना का उदय होता है वह एक प्रकार का संकेत है। उसके लिये भाषा के किसी शब्द का प्रयोग करना या भाषिक संकेत द्वारा उसकी पुनरावृत्ति करना इस कोटि का अनुवाद कहलाएगा। उदाहरण के लिए, एक विशिष्ट प्रकार की वेदना का संकेत करने के लिए हिन्दी में 'शोक' शब्द का प्रयोग किया जाता है और दूसरी के लिए 'प्रेम' का। समझा जाता है कि एक संवेदना का अनुवाद 'शोक' शब्द द्वारा किया जाता है और दूसरी का 'प्रेम' द्वारा। इस दृष्टि से यह कहा जाता है कि समस्त मौलिक

अभिव्यक्ति अनुवाद है। वक्ता या लेखक अपने संवेदना रूपी संकेतों की भाषिक संकेतों में पुनरावृत्ति कर देता है। इस दृष्टि से यह भाषा मनोविज्ञान की समस्या है, जिसकी व्याख्या उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त में की गई है।

इस प्रकार, अनुवाद शब्द की व्यापक परिधि में तीनों सन्दर्भों के अनुवादों का स्थान है -समभाषिक अनुवाद, अन्यभाषिक अनुवाद, और अन्तरसंकेतपरक अनुवाद। तीनों का अपना-अपना सैद्धान्तिक आधार है। इन तीनों के मध्य का भेद जानना महत्त्वपूर्ण है। अनुवादक को यह स्थिर करना है कि इन तीनों में केन्द्रीय स्थिति किसकी है तथा शेष दो का उनके साथ कैसा सम्बन्ध है।

सैद्धान्तिक औचित्य की दृष्टि से अन्यभाषिक अनुवाद की स्थिति केन्द्रीय है। केवल 'अनुवाद' शब्द (विशेषणरहित पद) से अन्यभाषिक अनुवाद का अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसका मूल है द्विभाषाबद्धता। अनुवादक का बोधन तथा अभिव्यक्ति दोनों स्थितियों में ही भाषा से बँधे रहते हैं और ये भाषाएँ भी भेद (काल, स्थान या प्रयोग सन्दर्भ पर आधारित भेद) की दृष्टि से नहीं, अपितु कोड की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होती हैं, जैसे हिन्दी और अंग्रेजी, हिन्दी और सिन्धी आदि।

इस केन्द्रीय स्थिति के दो छोर हैं। प्रथम छोर पर दोनों स्थितियों में भाषाबद्धता रहती है, परन्तु भाषा वही रहती है। स्थितियों को अन्तर उसी भाषा के भेदों के अन्तर पर आधारित होता है। यह समभाषिक अनुवाद है। पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग की स्पष्टता के लिए इसे 'अन्वयान्तर' या 'शब्दान्तरण' कहा जाता है। दूसरे छोर पर भाषेतर संकेत का भाषिक संकेत में परिवर्तन होता है। संकेत पद्धति का यह परिवर्तन भाषा प्रयोग की सामान्य स्थिति को जन्म देता है। पारिभाषिक शब्दावली में इसे 'भाषा व्यवहार' कहा जाता है। इन तीनों (समभाषिक अनुवाद, अन्यभाषिक अनुवाद, और अन्तरसंकेतपरक अनुवाद) में सम्बन्ध तथा अन्तर दोनों हैं। यह सम्बन्ध उभयनिष्ठ है।

अनुवाद (अन्यभाषिक अनुवाद) की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वास्तविक अनुवाद कार्य में तथा अनुदित पाठ के मूल्यांकन में अनुवादकों को समभाषिक अनुवाद तथा अन्तरसंकेतपरक अनुवाद की संकल्पनाओं से सहायता मिलती है। यह आवश्यकता तभी मुखर रूप से सामने आती है, जब अनुवाद करते-करते अनुवादक कभी अटक जाते हैं -मूल पाठ का सम्यक् बोधन नहीं हो पाते, लक्ष्यभाषा में शुद्ध और उपयुक्त अनुवाद का पर्याप्ततया अन्वेषण करने

में कठिनाई होती है, अनुवादक को यह जाँचना होता है कि अनुवाद कितना सफल है, इत्यादि।

प्रवृत्तिमूलक अर्थ

प्रवृत्तिमूलक में (व्यवहार में) 'अनुवाद' शब्द से अन्यभाषिक अनुवाद का ही अर्थ लिया जाता है। और इसी कारण शनैः शनैः यह बात सिद्धान्त का भी अंग बन गई है कि अनुवाद दो भाषाओं के मध्य होने वाली प्रक्रिया है। इस स्थिति का स्वीकार किया जाता है। संस्कृत परम्परा का 'छाया' शब्द इसी स्थिति का संकेत करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

परिभाषा के दृष्टिकोण

अनुवाद के स्वरूप को समझने के लिए अनुवाद की परिभाषा विशेष रूप से सहायक है। अनुवाद की बहुपक्षीयता को देखते हुए अनुवाद की परिभाषा विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत की गई है। मुख्य दृष्टिकोण तीन प्रकार के हैं–(1) अनुवाद एक प्रक्रिया है। (2) अनुवाद एक प्रक्रिया अथवा/और उसका परिणाम है। (3) अनुवाद एक सम्बन्ध का नाम है।

अनुवाद की परिभाषाओं का यह वर्गीकरण जहाँ अनुवाद की प्रकृति की बहुपक्षीयता को स्पष्ट करता है, वहाँ इससे यह संकेत भी मिलता है कि, विभिन्न उद्देश्यों के अनुसार अनुवाद की परिभाषाएँ भी भिन्न-भन्न हो सकती हैं। इस प्रकार ये सभी परिभाषाएँ मान्य हैं। इन परिभाषाओं के आधार पर अनुवाद के दो पक्ष माने जाते हैं।

अनुवाद के पक्ष

अनुवाद के दो पक्ष हैं–पहला संक्रियात्मक पक्ष अत एव गतिशील और दूसरा सैद्धान्तिक पक्ष अत एव स्थितिशील।

संक्रियात्मक पक्ष

संक्रियात्मक दृष्टि से अनुवाद एक प्रक्रिया है। अनुवाद के पक्ष का सम्बन्ध अनुवाद करने के कार्य से है जिसके लिए 'अनुवाद कार्य' शब्द का प्रयोग करना उचित माना जाता है।

सैद्धान्तिक पक्ष

सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुवाद एक सम्बन्ध है, जो दो या दो से अधिक, परन्तु विभिन्न भाषाओं के पाठों के मध्य होता है, परन्तु वे समानार्थक होने चाहिये। इस सम्बन्ध का उद्घाटन तुलनात्मक पद्धति के अध्ययन से किया जाता है। इन दोनों का समन्वित रूप इस धारणा में मिलता है कि अनुवाद एक निष्पत्ति है–कार्य का परिणाम अनुवाद है–जो अपने मूल पाठ से पर्यायता के सम्बन्ध से जुड़ा है। निष्पत्ति के रूप में अनुवाद को 'अनुदित पाठ' कहा जाता है। इस दृष्टि से एक मूल पाठ के अनेक अनुवाद हो सकते हैं। इस प्रकार संक्रियात्मक दृष्टि से अनुवाद को जहाँ भाषा प्रयोग की एक विधा के रूप में जाना जाता है, वहाँ सैद्धान्तिक दृष्टि से इसका सम्बन्ध भाषा पाठ तुलना तथा व्यतिरेकी विश्लेषण की तकनीकों पर आधारित भाषा सम्बन्धों के प्रश्न से (तुलनात्मक-व्यतिरेकी पाठ भाषाविज्ञान यही है) जोड़ा जाता है।

अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की शाखा कहा गया है। वस्तुतः, अपने इस रूप में यह अपने प्रक्रिया रूप तथा सम्बन्ध रूप परिभाषाओं की योजक कड़ी है, जिसका संक्रियात्मक आधार अनुदित पाठ है, जिसके मूल में 'अनुवाद एक निष्पत्ति है' की धारणा निहित है। इन परिभाषाओं से अनुवाद के विषय में जो अन्य जानकारी मिलती है, वे बन्दुवार निम्न प्रकार से हैं -

1. अनुवाद एक भाषा या भाषाभेद से दूसरी भाषा या भाषा भेद में होता है,
2. यह प्रक्रिया, परिवर्तन, स्थानान्तरण, प्रतिस्थापन, या पुनरावृत्ति की प्रकृति की होती है,
3. स्थानान्तरित होने वाली वस्तु को विभिन्न नामों से इंगत कर सकते हैं, जैसे पाठ्यसामग्री, सार्थक अनुभव, सूचना, सन्देश। ये विभिन्न नाम अनुवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के विभिन्न आयामों तथा अनुवाद कार्य के उद्देश्यों में अन्तर से जुड़े हैं। जैसे, भाषागत 'पाठ्यसामग्री' नाम से व्यक्त होने वाली सुनिश्चितता अनुवाद के भाषावैज्ञानिक आधार की विशेषता है, जिसका विशेष उपयोग मशीन अनुवाद में होता है। 'सूचना' और 'सार्थक अनुभव' अनुवाद के समाज भाषागत आधार का संकेत करते हैं, और 'सन्देश' से अनुवाद की पाठ संकेतपरक पृष्ठभूमि उपलक्षित होती है।
4. उपर्युक्त की विशेषता यह होती है कि इसका दोनों भाषाओं में समान अर्थ होता है। यह अर्थ की समानता व्यापक दृष्टि से होती है और भाषिक अर्थ से लेकर सन्दर्भमूलक अर्थ तक व्याप्त रहती है।

संक्षेप में, एक भाषा के विशिष्ट भाषाभेद के विशिष्ट पाठ को दूसरी भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत करना अनुवाद है, जिसमें वह मूल के भाषिक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य से निष्पन्न अर्थ, प्रयुक्ति और शैली की विशेषता, विषयवस्तु, तथा सम्बद्ध सांस्कृतिक वैशष्ट्यि को यथासम्भव संरक्षित रखते हुए दूसरी भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्राह्य प्रतीत हो।

अनुवाद का महत्त्व

बीसवीं सदी को अनुवाद का युग कहा गया है। यद्यपि अनुवाद सबसे प्राचीन व्यवसाय या व्यवसायों में से एक कहलाता है तथापि उसके जो महत्त्व बीसवीं सदी में प्राप्त हुआ वह उससे पहले उसे नहीं मिला, ऐसा माना जाता है। इसका मुख्य कारण माना गया है कि बीसवीं शताब्दी में ही भाषासम्पर्क अर्थात् भिन्न भाषा-भाषी समुदायों में सम्पर्क की स्थिति प्रमुख रूप से आरम्भ हुई। इसके मूल कारण आर्थिक और राजनीतिक माने जाते हैं। फलस्वरूप, विश्व का आर्थिक-राजनीतिक मानचित्र परिवर्तित होने लगा। वर्तमान युग में अधिकतर राष्ट्रों में यदि एक भाषा प्रधान है तो एक या अधिक भाषाएँ गौण पद पर दिखाई देती हैं। दूसरे शब्दों में, एक ही राजनीतिक-प्रशासनिक इकाई की सीमा के अन्तर्गत भाषायी बहुसंख्यक भी रहते हैं और भाषायी अल्पसंख्यक भी। लोकतन्त्र में सब लोगों का प्रशासन में समान रूप से भाग लेने का अधिकार तभी सार्थक माना जाता है, जब उनके साथ उनकी भाषा के माध्यम से सम्पर्क किया जाए। इससे बहुभाषिकता की स्थिति उत्पन्न होती है और उसके संरक्षण की प्रक्रिया में अनुवाद कार्य का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक, तथा साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान-प्रदान के कारण अनुवाद कार्य की अनिवार्यता और महत्ता की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित होती हुई दिखती है। अत: अनुवाद एक व्यापक तथा बहुधा अनिवार्य और तर्कसंगत स्थिति मानी जाती है। अनुवाद के महत्त्व को दो भिन्न, परन्तु सम्बन्धित सन्दर्भो में अधिक स्पष्टता से समझया जाता है-(क) सामाजिक एवं व्यावहारिक महत्त्व, (ख) शैक्षणिक एवं ज्ञानात्मक महत्त्व।

सामाजिक एवं व्यावहारिक महत्त्व

सामाजिक सन्दर्भ में अनुवाद व्यापार अनौपचारिक परिस्थितियों में होता है। इसका सम्बन्ध द्विभाषिकता की स्थिति से है। द्विभाषिकता का सामान्य अर्थ है

एक समय में दो भाषाओं का वैकल्पिक रूप से प्रयोग। वर्तमान युग के समाज का एक बृहद् भाग ऐसा है, जो सामाजिक सन्दर्भ की अनौपचारिक स्थिति में दो भाषाओं का वैकल्पिक प्रयोग करता है। सामान्य रूप से प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति, नगरीय परिवेश का अर्ध शिक्षित व्यक्ति, दो भिन्न भाषाभाषी राज्यों के सीमा प्रदेश में रहने वाली जनता, तथा भाषायी अल्पसंख्यक, इनमें अधिक स्पष्ट रूप से द्विभाषिकता की स्थिति देखी जाती है। यह द्विभाषिकता प्रायः आश्रित-संयुक्त द्विभाषिकता की कोटि की होती है, जिसका सामान्य लक्षण यह है कि, सब एक भाषा में (मातृभाषा में) सोचते हैं, परन्तु अन्य भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। इस स्थिति में अनुवाद प्रक्रिया का होना अनिवार्य है। परन्तु यह प्रक्रिया अनौपचारिक रूप में ही होती है। व्यक्ति मन ही मन पहली भाषा से अन्य भाषा में अनुवाद कर अपनी बात कह देते हैं। यह माना गया है कि, अन्य भाषा परिवेश में अन्य भाषा सीखते समय अनुवाद का प्रत्यक्ष रूप से अस्तित्त्व रहता है। यदि स्व-भाषा के ही परिवेश में अन्य भाषा सीखी जाए तो 'कोड' परिवर्तन की स्थिति आती है, जिसमें अनुवाद की स्थिति कुछ परोक्ष हो जाती है। अतः द्विभाषी रूप में सभी अनुवाद अनौपचारिक हैं। इस दृष्टि से अनुवाद एक सामाजिक भाषा व्यवहार में महत्त्वपूर्ण भूमिका में दिखता है।

शैक्षणिक एवं ज्ञानात्मक महत्त्व

शैक्षणिक एवं ज्ञानात्मक सन्दर्भ में अनुवाद व्यापार औपचारिक स्थिति में होता है। इसके दो भेद हैं–साधन रूप में अनुवाद और साध्य रूप में अनुवाद।

साधन रूप में अनुवाद

साधन रूप में अनुवाद का प्रयोग भाषा शिक्षण की एक विधि के रूप में किया जाता है। संज्ञानात्मक कौशल के रूप में अनुवाद के अभ्यास से भाषा अधिगम के दो कौशलों-बोधन और अभिव्यक्ति को पुष्ट किया जाता है। इसी प्रकार साधन रूप में अनुवाद के दो और क्षेत्र हैं–भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन तथा तुलनात्मक साहित्य विवेचन।

भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन

वस्तुतः भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण के लिए अनुवाद के द्वारा ही व्यक्ति को यह ज्ञात होता है कि, एक वाक्य में किस शब्द का क्या अर्थ है।

उसके पश्चात् ही वह दोनों में समानता तथा असमानता के बिन्दु से अवगत हो पाता है। अत: व्यतिरेकी भाषा विश्लेषण को अनुवादात्मक विश्लेषण (ट्रांसलेटिव एनालसिस) भी कहा गया है।

तुलनात्मक साहित्य विवेचन

तुलनात्मक साहित्य विवेचन में साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन के साधन रूप में अनुवाद के प्रयोग के द्वारा सदृश-विसदृश अंशों का अर्थबोध होता है, जिससे अंशों की तुलना की जा सके। इसके अतिरिक्त अन्य भाषा साहित्य की कृतियों के अनुवाद का अभ्यास करना अथवा/और उन्हें अनुदित रूप में पढ़ना तुलनात्मक साहित्य विवेचन में अनुवाद के योगदान का उदाहरण है।

साध्य रूप में अनुवाद

साध्य रूप में अनुवाद व्यापार अनेक क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। कोशकार्य भी एक प्रकार का अनुवाद कार्य है। समभाषिक कोश में एक ही भाषा के अन्दर अनुवाद होता है और द्विभाषी कोश में दो भाषाओं के मध्य। यह अनुवाद, पाठ की अपेक्षा भाषा के आयाम पर होता है, जिसमें भाषा विश्लेषण के दो स्तर प्रभावित होते हैं। वे दो स्तर—शब्द और शब्द शृंखला हैं।

इसी प्रकार किसी भाषा के विकास के लिए भी अनुवाद-व्यापार का आश्रय लिया जाता है। जब किसी भाषा को ऐसे व्यवहार-क्षेत्रों में काम करने का अवसर मिलता है, जिनमें पहले उसका प्रयोग नहीं होता था, तब उसे विषयवस्तु और अभिव्यक्ति पद्धति दोनों ही दृष्टियों से विकसित करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए अन्य भाषाओं से विभिन्न प्रकार के साहित्य का उसमें अनुवाद किया जाता है। फलस्वरूप, विषयवस्तु की परिधि के विस्तार के साथ-साथ भाषा के अभिव्यक्ति-कोश का क्षेत्र भी विस्तृत होता है। अनेक नये शब्द बन जाते हैं, कई बार प्रचलित शब्दों को नया अर्थ मिल जाता है, नये सहप्रयोग विकसित होने लगते हैं, संकर-शब्दावली प्रयोग में आने लगती है, और भाषा प्रयोग के सन्दर्भ की विशेषता के कारण कुल मिलाकर भाषा का एक नवीन भेद विकसित हो जाता है। आधुनिक प्रशासनिक हिन्दी तथा पत्रकारिता हिन्दी इसके अच्छे उदाहरण हैं। इस प्रक्रिया को भाषा नियोजन और भाषा विकास कहते हैं, जो अपने व्यापकतर सन्दर्भ में राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास का अंग है। इस प्रकार अनुवाद के माध्यम से विकासशील भाषा में आवश्यक और

महत्त्वपूर्ण साहित्य का प्रवेश होता है। तब कह सकते हैं कि इस रूप में अनुवाद राष्ट्रीय विकास में भी योगदान करता है।

अपने व्यापकतम रूप में अनुवाद भाषा की शक्ति में संवर्धन करता है, पाठों की व्याख्या एवं निर्वचन में सहायक है, भाषा तथा विचार के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करता है, ज्ञान का प्रसार करता है, संस्कृति का संवाहक है, तथा राष्ट्रों के मध्ये परस्पर आवागमन और सद्भाव की वृद्धि में योगदान करता है। **गेटे** के शब्दों में, अनुवाद (अपनी प्रकृति से) असम्भव होते हुए भी (सामाजिक दृष्टि से) आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है।

स्वरूप

अनुवाद के स्वरूप के दो उल्लेखनीय पक्ष हैं–समन्वय और सन्तुलन। अनुवाद सिद्धान्त का बहुविद्यापरक आयाम इसका समन्वयशील पक्ष है। तदनुसार, यद्यपि अनुवाद सिद्धान्त का मूल उद्गम है अनुप्रयुक्त तुलनात्मक पाठसंकेत विज्ञान, तथापि उसे कुछ अन्य शास्त्र भी स्पर्श करते हैं। 'तुलनात्मक' से अनुवाद का दो भाषाओं से सम्बन्धित होना स्पष्ट ही है, जिसमें भाषाओं की समानता–असमानता के प्रश्न उपस्थित होते हैं। पाठसंकेत विज्ञान के तीनों पक्ष–अर्थविचार, वाक्यविचार तथा सन्दर्भमीमांसा–अनुवाद सिद्धान्त के लिए प्रासंगिक हैं। अर्थविचार में भाषिक संकेत तथा भाषाबाह्य यथार्थ के बीच में सम्बन्ध का अध्ययन होता है। सन्दर्भ मीमांसा के अन्तर्गत भाषा प्रयोग की स्थिति के सन्दर्भ के विभिन्न आयामों–वक्ता एवं श्रोता की सामाजिक पहचान, भाषा प्रयोग का उद्देश्य तथा सन्देश के प्रति वक्ता–श्रोता की अभिवृत्ति, भाषाप्रयोग की भौतिक परिस्थितियों की तथा अभिव्यक्ति, माध्यम आदि–की मीमांसा होती है। स्पष्ट है कि संकेत विज्ञान की परिधि भाषा विज्ञान की अपेक्षा व्यापकतर है तथा अनुवाद कार्य जैसे व्यापक सम्प्रेषण व्यापार के अध्ययन के उपयुक्त है।

समन्वय पक्ष

अनुवाद सिद्धान्त को स्पर्श करने वाले शास्त्रों में है–सम्प्रेषण सिद्धान्त, जिसकी मान्यताओं के अनुसार अनुवाद कार्य एक सम्प्रेषण व्यापार है, तथा तदनुसार उस पर वे सभी बातें लागू होती हैं, जो सम्प्रेषण व्यापार की प्रकृति में हैं, जैसे सम्प्रेषण का शतप्रतिशत् यथातथ न होना, अपूर्णता, उद्रिक्तता (व्यतिरिक्तता), आंशिक कृत्रिमता आदि। इसी से अनुवाद कार्य में शब्द-प्रति-शब्द तथा

अर्थ-प्रति-अर्थ समानता के स्थान पर सन्देश-स्तरीय समानता का औचित्य भी साधा जा सकता है। संक्रियात्मक दृष्टि से एक पाठ या प्रोक्ति अनुवाद कार्य का प्रवर्तन बिन्दु होता है। एक पाठ की अपनी संरचना होती है, भाषिक संसक्ति तथा सन्देशगत सुबद्धता की संकल्पनाओं द्वारा उसके सुगठित अथवा शिथिल होने की जाँच कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक पाठ को भाषा प्रकायों की एकीभूत समष्टि के रूप में देखते हुए, उसमें भाषा-प्रयोग शैलीयों के भाषाप्रकार्यमूलक वितरण के विषय में अधिक निश्चित जानकारी प्राप्त होती हैं। इसी से सम्बन्धित शास्त्र है, समाज भाषाशास्त्र तथा शैली विज्ञान, जिसमें सामाजिक बोलियों तथा प्रयुक्तियों के अध्ययन के साथ सन्दर्भानुकूल भाषा प्रयोग की शैलीयों के वितरण की जानकारी अनुवाद सिद्धान्त के लिए वांछनीय है।

भाषा से समन्धित होने के कारण तर्कशास्त्र तथा भाषादर्शन भी अनुवाद सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं। तर्कशास्त्र के अनुसार अनुदित पाठ के सत्यमूल्य की परीक्षा अनुवाद की विशुद्धता को शुद्ध करने का आधार है। भाषादर्शन में होने वाले अर्थ सम्बन्धी चिन्तन से अनुवाद कार्य में अर्थ के अन्तरण या उसकी पुनरावृत्ति से सम्बन्धित समस्याओं को जानने में सहायता मिलती है। **विटजेन्स्टीन** की मान्यता 'भाषा में शब्द का 'प्रयोग' ही उसका अर्थ हैश। अनुवाद सिद्धान्त के लिए इस कारण से विशेष प्रासंगिक है कि पाठ ही अनुवाद कार्य की इकाई है, जिसका सफल अर्थबोध अनुवाद की पहली आवश्यकता है। इस प्रकार वक्ता की विवक्षा में अर्थ का मूल खोजना, भाषिक अर्थ तथा भाषाबाह्य स्थिति (सन्दर्भ) अनुवाद सिद्धान्त के आवश्यक अंग हैं। अर्थ के अन्तरण में जहाँ उपर्युक्त मान्यताओं की एक भूमिका है, वहाँ अर्थगत द्विभाषिक समानता के निर्धारण में घटकीय विश्लेषण की पद्धति की विशेष उपयोगिता स्वीकार की गई है। यह बात विशेष रूप से ध्यान में ली जाती है कि जहाँ विविध शास्त्रों की प्रासंगक मान्यताओं से अनुवाद सिद्धान्त का स्वरूप निर्मित है, वहाँ स्वयं अनुवाद सिद्धान्त उन शास्त्रों का एक विशिष्ट अंग है।

सन्तुलन पक्ष

अनुवाद सिद्धान्त का 'सामान्य' पक्ष भी है और विशिष्ट पक्ष भी, और यह इसका सन्तुलनशील स्वरूप है—सामान्य और विशिष्ट का सन्तुलन। अनुवाद की परिभाषा के अनुसार कहा जाता है कि अनुवाद व्यवहारत: विशिष्ट भाषाभेद के स्तर पर तथा इसीलिए सिद्धान्तत: सामान्य भाषा के स्तर पर होता है—अंग्रेजी

भाषा के एक भेद पत्रकारिता की अंग्रेजी से हिन्दी भाषा के सममूल्य भेद पत्रकारिता की हिन्दी में। तदनुसार, युगपद् रूप से अनुवाद सिद्धान्त का एक सामान्य पक्ष भी है और विशिष्ट पक्ष भी। हम जो बात सामान्य के स्तर पर कहते हैं, उसे व्यावहारिक रूप में भाषाभेद के विशिष्ट स्तर पर उदाद्धृत करते हैं।

क्षेत्र

'यथासम्भव अधिकतम पाठ प्रकारों के लिए एक उपयुक्त तथा सामान्य अनुवाद प्रणाली का निर्धारण' ये अनुवाद के क्षेत्र सम्बन्धित एक विचारणीय प्रश्न माना जाता है। प्रणाली के निर्धारण के सम्बन्ध में अनुवाद प्रक्रिया की प्रकृति, अनुवाद (वस्तुतः अनुवाद कार्य) के विभिन्न प्रकार, अनुवाद के सूत्र तथा विभिन्न कोटि के पाठों के अनुवाद के निर्देश निश्चित करने के प्रारूप का निर्धारण, आदि पर विचार करना होता है। अनुवाद का मुख्य उद्देश्य, अनुवाद की इकाई, अनुवाद का कला-कौशल-विज्ञान का स्वरूप, अनुवाद कार्य की सीमाएँ, आदि कुछ अन्य विषय हैं, जिन पर विचार अपेक्षित होता है।

मूलभाषा का ज्ञान

अनुवाद कार्य का मेरुदण्ड है मूलभाषा पाठ। इसकी संरचना, इसका प्रकार, भाषाप्रकार्य प्रारूप के अनुसार मूलपाठ का स्वरूप निर्धारण, आदि के साथ शब्दार्थ-व्यवस्था एवं व्याकरणिक संरचना के विश्लेषणात्मक बोधन के विभिन्न प्रारूप, उनकी शक्तियों और सीमाओं का आकलन, आदि के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक चर्चा तथा इनके संक्रियात्मक ढाँचे का निर्धारण, इसके अन्तर्गत आने वाले मुख्य बिन्दु हैं। अनुवाद सिद्धान्त के ही अन्तर्गत कुछ गौण बिन्दुओं की चर्चा भी होती है—रूपक, व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ, पारिभाषिक शब्द, आद्याक्षर (परिवर्णी) शब्द, भौगोलिक नाम, व्यापारिक नाम, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के नाम, सांस्कृतिक शब्द, आदि के अनुवाद के लिए कौन-सी प्रणाली अपनाई जाएय साहित्यिक रचनाओं, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय लेखन, प्रचार साहित्य आदि के लिए अनुवाद प्रणाली का रूप क्या हो, इत्यादि।

विविध शास्त्रों का ज्ञान

इसी से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, अनुवाद की विभिन्न युक्तियाँ—लिप्यन्तरण, शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद, शब्दानुगामी अनुवाद, आगत

अनुवाद, व्याख्या, विस्तरण, संक्षेपण, सांस्कृतिक पर्याय, स्वभाषीकरण आदि। अनुवाद का काम अन्ततोगत्वा एक ही व्यक्ति करता है। एकाकी अनुवाद में तो अनुवादक अकेला होता ही है, सहयोगात्मक अनुवाद में भी, अन्तिम अवधि में, सम्पादन का कार्य अनुवादक को अकेले करना होता है। अतः अनुवादक के साथ अनेक दायित्व जुड़ जाते हैं और कार्य के सफल निष्पादन में उससे अनेक अपेक्षाएं रहती हैं। भाषा ज्ञान, विषय ज्ञान, अभिव्यक्ति कौशल, व्यक्तिगत गुण आदि की दृष्टि से अनुवादक से होने वाली अपेक्षाओं पर विचार करना होता है। अनुवाद शिक्षा और अनुवाद समीक्षा, दो अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं।

शिक्षा

अनुवाद की शिक्षा भाषा-अधिगम के, विशेष रूप से अन्य भाषा अधिगम के, साधन के रूप में दी जा सकती है (भाषाशिक्षण की द्विभाषिक पद्धति भी इसी के अन्तर्गत है)। इसमें अनुवाद शिक्षण, भाषा-शिक्षण के अधीन है तथा एक मध्यवर्ती अल्पकालिक अभ्यासक्रम में इसकी योजना की जाती है, जिसमें शिक्षण के सोपान तथा लक्ष्य बिन्दु स्पष्ट तथा निश्चित होते हैं। इसमें शिक्षार्थी का लक्ष्य भाषा सीखना है, अनुवाद करना नहीं। शिक्षा के दूसरे चरण में अनुवाद का अभ्यास, अनुवाद को एक शिल्प या कौशल के रूप में सीखने के लिए किया जाता है, जिसकी प्रगत अवस्था 'अनुवाद कला है' की शब्दावली में निर्दिष्ट की जाती है। इस स्थिति में जो भाषा (मूलभाषा या लक्ष्यभाषा) अनुवादक की अपनी नहीं, उसके अधिगम को भी आनुषंगक रूप में पुष्ट करता जाता है। अभ्यास सामग्री के रूप में पाठ प्रकारों की विविधता तथा कठिनाई की मात्रा के अनुसार पाठों का अनुस्तरण करना होता है। यदि एक सजातीय-विजातीय, स्वेदशी या विदेशी भाषा को सीखने की योजना में उससे या उसमें अनुवाद करने की क्षमता को विकसित करना एक उद्देश्य हो तो अनुवाद-शिक्षण के दोनों सोपानों–साधनपरक तथा साध्यपरक को अनुस्तरित रूप में देखा जा सकता है।

समीक्षा

अनुवाद समीक्षा, अनुवाद सिद्धान्त का ऐसा अंग है, जिसका शिथिल रूप में व्यवहार, अनुदित कृति का एक सामान्य पाठक भी करता है, परन्तु जिसकी एक पर्याप्त स्पष्ट सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि है। सिद्धान्तपुष्ट अनुवाद समीक्षा एक

ज्ञानात्मक व्यापार है। इसमें एक मूलपाठ के एक या एक से अधिक अनुवादों की समीक्षा की जाती है, तथा मूल की तुलना में अनुवाद का या मूल के विभिन्न अनुवादों का पारस्परिक तुलना द्वारा मूल्यांकन किया जाता है। इसके तीन सोपान हैं–मूलभाषा पाठ तथा लक्ष्यभाषा पाठ का विश्लेषण, दोनों की तुलना (प्रत्यक्ष तथा परोक्ष समानताओं की तालिका, और अभिव्यक्ति विच्छेदों का परिचयन), और अन्त में लक्ष्यभाषागत विशुद्धता, उपयुक्तता और स्वाभाविकता की दृष्टि से अनुवाद का मूल्यांकन। मूल्यांकन के सोपान पर अनुवाद की सफलता की जाँच के लिए विभिन्न परीक्षण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

प्रकार

अनुवाद को कला और विज्ञान दोनों ही रूपों में स्वीकारने की मानसिकता इसी कारण पल्लवित हुई है कि संसारभर की भाषाओं के पारस्परिक अनुवाद की कोशिश अनुवाद की अनेक शैलियों और प्रविधियों की ओर इशारा करती हैं। अनुवाद की एक भंगिमा तो यही है कि किसी रचना का साहित्यिक-विधा के आधार पर अनुवाद उपस्थित किया जाए। यदि किसी नाटक का नाटक के रूप में ही अनुवाद किया जाए तो ऐसे अनुवादों में अनुवादक की अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का वैशिष्ट्य भी अपेक्षित होता है। अनुवाद का एक आधार अनुवाद के गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक होने पर भी आश्रित है। ऐसा पाया जाता है कि अधिकांशतः गद्य का अनुवाद गद्य में अथवा पद्य में ही उपस्थित हो, लेकिन कभी-कभी यह क्रम बदला हुआ नजर आता है। कई गद्य कृतियों के पद्यानुवाद मिलते हैं, तो कई काव्यकृतियों के गद्यानुवाद भी उपलब्ध हैं। अनुवादों को विषय के आधार पर भी वर्गीकृत किया जाता है और कई स्तरों पर अनुवाद की प्रकृति के अनुरूप उसे मूल-केंद्रित और मूलमुक्त दो वर्गों में भी बाँटा गया है। अनुवाद के जिन सार्थक और प्रचलित प्रभेदों का उल्लेख अनुवाद विज्ञानियों ने किया है, उनमें शब्दानुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद, सारानुवाद, व्याख्यानुवाद, आशुअनुवाद और रूपांतरण को सर्वाधिक स्वीकृति मिली है।

शब्दानुवाद

स्रोतभाषा के प्रत्येक शब्द का लक्ष्यभाषा के प्रत्येक शब्द में यथावत् अनुवादन को शब्दानुवाद कहते हैं। 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' पर आधारित

शब्दानुवाद वास्तव में अनुवाद की सबसे निकृष्ट कोटि का परिचायक होता है। प्रत्येक भाषा की प्रकृति अन्य भाषा से भिन्न होती है और हर भाषा में शब्द के अनेकानेक अर्थ विद्यमान रहते हैं। इसीलिए मूल भाषा की हर शब्दाभिव्यक्ति को यथावत् लक्ष्यभाषा में नहीं अनुवादित किया जा सकता। कई बार ऐसे शब्दानुवादों के कारण बड़ी हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संस्कृत से हिंदी में किये गये अनुवाद को कई बार प्रकृति की साम्यता के कारण सह्य होते हैं, लेकिन यूरोपीय परिवार की भाषाओं से किये गए अनुवाद में अर्थ और पदक्रम के दोष सामान्यतः नजर आते हैं। वास्तव में यदि स्रोत और लक्ष्यभाषा में अर्थ, प्रयोग, वाक्य-विन्यास और शैली की समानता हो, तभी शब्दानुवाद सही होता है, अन्यथा यंत्रवत् किये गए शब्दानुवाद अबोधगम्य, हास्यास्पद एवं कृत्रिम हो जाते हैं।

भावानुवाद

ऐसे अनुवादकों में स्रोत-भाषा के शब्द, पदक्रम और वाक्य-विन्यास पर ध्यान न देकर अनुवाद मूलभाषा की विचार-सामग्री या भावधारा पर अपने आपको केंद्रित करता है। ऐसे अनुवादों में स्रोतभाषा की भाव-सामग्री को उपस्थित करना ही अनुवादक का लक्ष्य होता है। भावानुवाद की प्रक्रिया में कभी-कभी मूल रचना जैसा मौलिक वैभव आ जाता है, लेकिन कई बार पाठकों को यह शिकायत होती है कि अनुवादक ने मूलभाषा की भावधारा को समझे बिना, लक्ष्य-भाषा की प्रकृति के अनुरूप भाव सामग्री प्रस्तुत कर दी है। जब पाठक किसी रचना को रचनाकार के अभिव्यक्ति-कौशल की दष्टि से पढ़ना चाहता है, तो भावानुवाद उसकी लक्ष्यसिद्धि में सहायक नहीं होता।

छायानुवाद

संस्कृत नाटकों में लगातार ऐसे प्रयोग मिलते हैं कि उनकी स्त्र-पात्र तथा सेवक, दासी आदि जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, उसकी संस्कृत छाया भी नाटक में विद्यमान रहती है। ऐसे ही प्रयोगों से छायानुवाद का उद्‌भव हुआ है। अनुवाद की प्रविधि के अंतर्गत अनुवादक न शब्दानुवाद की तरह केवल मूल शब्दों का अनुसरण करता है और न सिर्फ भावों का ही परिपालन करता है, बल्कि मूलभाषा से पूरी तरह बंधा हुआ उसकी छाया में लक्ष्यभाषा में वर्णय-विषय की प्रस्तुति करता है।

सारानुवाद

इस अनुवाद में मूलभाषा की सामग्री का संक्षिप्त और अतिसंक्षिप्त अनुवाद लक्ष्यभाषा में किया जाता है। लंबे भाषणों और वाद-विवादों के अनुवाद प्रस्तुत करने में यह विधि सहायक होती है।

व्याख्यानुवाद

ऐसे अनुवादों में मूलभाषा की सामग्री का लक्ष्यभाषा में व्याख्या सहित अनुवाद उपस्थित किया जाता है। इसमें अनुवादक अपने अध्ययन और दष्टिकोण के अनुरूप मूल भाषा की सामग्री की व्याख्या अपेक्षित प्रमाणों और उदाहरणों आदि के साथ करता है। लोकमान्य तिलक ने 'गीता' का अनुवाद इस शैली में किया है। संस्कृत के बहुत सारे भाष्यकारों और हिन्दी के टीकाकारों ने व्याख्यानुवाद की शैली का ही अनुगमन किया है। स्वभावत: व्याख्यानुवाद अथवा भाष्यानुवाद मूल से बहुत बड़ा हो जाता है और कई स्तरों पर तो एकदम मौलिक बन जाता है।

आशु अनुवाद

जहाँ अनुवाद दुभाषिये की भूमिका में काम करता है, वहाँ वह केवल आशुअनुवाद कर पाता है। दो दूरस्थ देशों के भिन्न भाषा-भाषी जब आपस में बातें करते हैं, तो उनके बीच दुभाषिया संवाद का माध्यम बनता है। ऐसे अवसरों पर वे अनुवाद शब्द और भाव की सीमाओं को तोड़कर अनुवादक की सत्वर अनुवाद क्षमता पर आधारित हो जाता है। उसके पास इतना समय नहीं होता है कि शब्द के सही भाषायी पर्याय के बारे में सोचे अथवा कोशों की सहायता ले सके। कई बार ऐसे दुभाषिये के आशु अनुवाद के कारण दो देशों में तनाव की स्थिति भी बन जाती है। आशु अनुवाद ही अब भाषांतरण के रूप में चर्चित है।

रूपान्तरण

अनुवाद के इस प्रभेद में अनुवादक मूलभाषा से लक्ष्यभाषा में केवल शब्द और भाव का अनुवादन नहीं करता, अपितु अपनी प्रतिभा और सुविधा के अनुसार मूल रचना का पूरी तरह रूपांतरण कर डालता है। विलियम शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'दुर्लभ बन्धु' अर्थात् 'वंशपुर का महाजन' नाम से किया है, जो रूपांतरण के अनुवाद का अन्यतम

उदाहरण है। मूल नाटक के एंटोनियो, बैसोलियो, पोर्शिया, शाइलॉक जैसे नामों को भारतेंदु ने क्रमशः अनंत, बसंत, पुरश्री, शैलाक्ष जैसे रूपांतर प्रदान किये हैं। ऐसे रूपांतरण में अनुवाद की मौलिकता सबसे अधिक उभरकर सामने आती है।

अनुवादक के इन प्रभेदों से ज्ञापित होता है कि संसार भर की भाषाओं में अनुवाद की कई शैलियाँ और प्रविधियाँ अपनाई गई हैं, लेकिन यदि अनुवादक सावधानीपूर्वक शब्द और भाव की आत्मा का स्पर्श करते हुए मूलभाषा की प्रकृति के अनुरूप लक्ष्यभाषा में अनुवाद उपस्थित करे तो यही आदर्श अनुवाद होगा। इसीलिए श्रेष्ठ अनुवादक को ऐसा कुशल चिकित्सक कहा जाता है, जो बोतल में रखी दवा को अपनी सिरिंज के द्वारा रोगी के शरीर में यथावत् पहुँचा देता है।

अनुवाद के सिद्धान्त

अनुवाद सिद्धान्त कोई अपने में स्वतन्त्र, स्वनिष्ठ, सिद्धान्त नहीं है और न ही यह उस अर्थ में कोई 'विज्ञान' ही है, जिस अर्थ में गणितशास्त्र, भाषाशास्त्र, समाजशास्त्र आदि हैं। इसकी ऐसी कोई विशिष्ट अध्ययन सामग्री तथा अध्ययन प्रणाली भी नहीं, जो अन्य शास्त्रों की अध्ययन सामग्री तथा प्रणाली से इस रूप में भिन्न हो कि, इसका मूलतः स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व बन सके। वस्तुतः, यह अनुवाद के विभिन्न मुद्दों से सम्बन्धित ज्ञानात्मक सूचनाओं का एक निकाय है, जिससे अनुवाद को एक प्रक्रिया (अनुवाद कार्य), एक निष्पत्ति (अनुदित पाठ), तथा एक सम्बन्ध (सममूल्यता) के रूप में समझने में सहायता मिलती है। इसके लिए सद्यः 'अनुवाद विद्या' (ट्रांसलेशन स्टडीज), 'अनुवाद विज्ञान' (साइंस ऑफ ट्रांसलेशन), और 'अनुवादिकी' (ट्रांसलेटालजी) शब्द भी प्रचलित हैं।

अनुवाद, भाषाप्रयोग सम्बन्धी एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसकी एक सुनिश्चित परिणति होती है तथा जिसके फलस्वरूप मूल एवं निष्पत्ति में 'मूल्य' की दृष्टि से समानता का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार प्रक्रिया, निष्पत्ति, और सम्बन्ध की सङ्घटित इकाई के रूप में अनुवाद सम्बन्धी सामान्य प्रकृति की जानकारी ही अनुवाद सिद्धान्त है, जो मूलतः एकान्वित न होते हुए भी संग्रहणीय, रोचक, ज्ञानवर्धक, तथा एक सीमा तक वास्तविक अनुवाद कार्य के लिए उपादेय है। अपने विकास की वर्तमान अवस्था में यह बहु-विद्यापरक अनुशासन बन गया है। जिसका ज्ञान प्राप्त करना स्वयमेव एक लक्ष्य है तथा जो जिज्ञासु पाठक के लिए बौद्धिक सन्तोष का स्रोत है।

अनुवाद सिद्धान्त की अनुवाद कार्य में उपयोगिता का आकलन के समय इस सामयिक तथ्य को ध्यान में रखा जाता है कि वर्तमान काल में अनुवाद एक सङ्गठित व्यवसाय हो गया है, जिसमें व्यक्तिगत रुचि की अपेक्षा व्यावसायिक-सामाजिक आवश्यकता से प्रेरित प्रशिक्षणार्थियों की संख्या अधिक होती है। विशेष रूप से ऐसे लोगों के लिए तथा सामान्य रूप से रुचिशील अनुवादकों के लिए अनुवाद कार्य में दक्षता विकसित करने में अनुवाद सिद्धान्त के योगदान को निरूपित किया जाता है। इस योगदान का सैद्धान्तिक औचित्य इस दृष्टि से भी है कि अनुवाद कार्य सर्जनात्मक होने के कारण ही गौण रूप से समीक्षात्मक भी होता है। इसे 'सर्जनात्मक-समीक्षात्मक' भी कहा जाता है।

सर्जनात्मकता को विशुद्ध तथा पुष्ट करने के लिए जो समीक्षात्मक स्फुरणाएँ अनुवादक में होती हैं, वे अनुवाद सिद्धान्त के ज्ञान से प्ररित होती हैं। अनुवाद की विशुद्धता की निष्पत्ति में सिद्धान्त ज्ञान का योगदान रहता है। साथ ही, अनुवाद प्रक्रिया की जानकारी उसे पर्याय-चयन में अधिक सावधानी से काम करने में सहायता कर सकती है। इससे अधिक महत्त्वपर्ण बात मानी जाती है कि वह मूर्खतापूर्ण त्रुटियाँ करने से बच सकता है। मूलपाठ का भाषिक, विषयवस्तुगत, तथा सांस्कृतिक महत्त्व का कोई अंश अनुदित होने से न रह जाए, इसके लिए अपेक्षित सतर्क दृष्टि को विकसित करने में भी अनुवाद सिद्धान्त का ज्ञान अनुवादक की सहायता करता है। इसी प्रश्न को दूसरे छोर से भी देखा जाता है। कहा जाता है कि जो लोग मौलिक लिख सकते हैं, वे लिखते हैं, जो लिख नहीं पाते वे अनुवाद करते हैं, और जो लोग अनुवाद नहीं कर सकते, वे अनुवाद के बारे में चर्चा किया करते हैं। वस्तुतः इन तीनों में परिपूरकता है—ये तीनों कुछ भिन्न-भिन्न हैं—तथापि यह माना जाता है कि अनुवाद विषयक चर्चा को अधिक प्रामाणिक तथा विशद बनाने में अनुवाद सिद्धान्त के विद्यार्थी को अनुवाद कार्य सम्बन्धी अनुभव सहायक होता है। यह बात कुछ ऐसी ही है कि सर्जनात्मकता से अनुभव के स्तर पर परिचित साहित्य समीक्षक अपनी समीक्षात्मक प्रतिक्रियाओं को अधिक विश्वासोत्पादक रीति से प्रस्तुत कर सकता है।

अनुवाद सिद्धान्त का विकास

अनुवाद सिद्धान्त के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए इसके विकास कों विहंग-दृश्य से दो चरणों में विभक्त करके देखा जाता है—

1. आधुनिक भाषाविज्ञान, विशेष रूप से अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, के विकास से पूर्व का युग–बीसवीं सदी पूर्वार्द्ध,
2. इसके पश्चात् का युग–बीसवीं सदी उत्तरार्ध।

सामान्य रूप से कहा जाता है कि, सिद्धान्त विकास के विभिन्न युगों में और उसी विभिन्न धाराओं में विवाद का विषय यह रहा कि, अनुवाद शब्दानुगामी हो या अर्थानुगामी, यद्यपि विवाद की 'भाषा' बदलती रही। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में रोमन युग से आरम्भ होता है, जब **होरेंस** तथा **सिसरो** ने शब्दानुगामी तथा अर्थानुगामी अनुवाद में अन्तर स्पष्ट किया तथा साहित्यिक रचनाओं के लिए अर्थानुगामी अनुवाद को प्रधानता दी। सिसरो ने अच्छे अनुवादक को व्याख्याकार तथा अलंकार प्रयोग में दक्ष बताया। रोमन युग के पश्चात्, जिसमें साहित्यिक अनुवादों की प्रधानता थी, दूसरी शक्तिशाली धारा बाइबिल अनुवाद की है। सन्त **जेरोम** (400 ईस्वी) ने भी बाइबिल के अनुवाद में अर्थानुगामिता को प्रधानता दी तथा अनुवाद में दैनन्दिन के व्यवहार की भाषा के प्रयोग का समर्थन किया। इसमें विचार यह था कि, बाइबिल का सन्देश जनसाधारण पर्यन्त पहुँच जाए और इसके निमित्त जनसाधारण के लिए बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया जाए, जिसमें स्वभावतः अर्थानुगामी दृष्टिकोण को प्रधानता मिली।

जान वाइक्लिफ (1330–84) तथा **विलियम टिंड्ल** (1494–1936) ने इस प्रवृत्ति का समर्थन किया। बोधगम्य तथा सुन्दर भाषा में, तथा शैली एवं अर्थ के मध्य सामंजस्य की रक्षा करते हुए, बाइबिल के अनुवाद की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला, जिसमें **मार्टिन लूथर** (1530) का योगदान उल्लेखनीय रहा। तृतीय धारा शिक्षाक्रम में अनुवाद के योगदान से सम्बन्धित रही है। **क्विटिलियन** (प्रथम शताब्दी) ने अनुवाद तथा समभाषी व्याख्यात्मक शब्दान्तरण की उपयोगिता को लेखन अभ्यास तथा भाषण–दक्षता विकसित करने के सन्दर्भ में देखा, जिसका मध्यकालीन यूरोप में अधिक प्रसार हुआ। इससे स्थानीय भाषाओं का स्तर ऊपर उठा तथा उनकी अभिव्यक्ति सामर्थ्य में वृद्धि भी हुई। समृद्ध और विकसित भाषाओं से विकासशील भाषाओं में अनुवाद की प्रवृत्ति मध्यकालीन यूरोप के साहित्यिक जगत् की एक प्रमुख प्रवृत्ति है, जिसे ऊर्ध्वस्तरी आयाम की प्रवृत्ति कहा गया और इसी समय प्रचलित समान रूप से विकसित या अविकसित भाषाओं के मध्य अनुवाद की प्रवृत्ति को समस्तरी आयाम की प्रवृत्ति के रूप में देखा गया।

मध्यकालीन यूरोप के आरम्भिक सिद्धान्तकारों में फ्रेंच विद्वान ई. **दोलेत** (1509-46) ने 1540 में प्रकाशित निबन्ध में अनुवाद के पाँच विधि-निषेध प्रस्तावित किए–

(क) अनुवादक को मूल लेखक की भाषा की पूरा ज्ञान हो, परन्तु वह चाहे तो मूलभाषा की दुर्बोधता और अस्पष्टता को दूर कर सकता है,

(ख) अनुवादक का मूलभाषा और लक्ष्यभाषा का पूर्ण ज्ञान हो,

(ग) अनुवादक शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद से बचे,

(घ) अनुवादक दैनन्दिन के व्यवहार की भाषा का प्रयोग करे,

(ङ) अनुवादक ऐसा शब्दचयन तथा शब्दविन्यास करे कि उचित प्रभाव की निष्पत्ति हो।

जार्ज चौपमन (1559-1634) ने भी इसी प्रकार 'इलियड' के सन्दर्भ में अनुवाद के तीन सूत्र प्रस्तावित किए–

(क) शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद से बचा जाए,

(ख) मूल की भावना पर्यन्त पहुँचने का प्रयास किया जाए,

(ग) अनुवाद, विद्वत्ता के स्पर्श के कारण अति शिथिल न हो।

यूरोप के पुनर्जागरण युग में अनुवाद की धारा एक गौण प्रवृत्ति रही। इस युग के अनुवादकों में अर्थ की प्रधानता के साथ पाठक के हितों की रक्षा की प्रवृत्ति दिखाई देती है। **हालैण्ड** (1552-1637) के अनुवाद में मूलपाठ के अर्थ में परिवर्तन-परिवर्धन द्वारा अनुदित पाठ के संस्कार की झलक दीखती है। सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में **सर जान डेनहम** (1615-69) ने कविता के अनुवाद में शब्दानुगामी होने की प्रवृत्ति का विरोध किया और मूल पाठ के केन्द्रीय तत्त्व को ग्रहण कर लक्ष्यभाषा में उसके पुनस्सर्जन की बात कही, उसे 'अनुसर्जन' (ट्रांसक्रिएशन) कहा जाने लगा।

इस अविध में **जान ड्राइडन** (1631-1700) ने महत्त्वपर्ण विचार प्रकट किए। उन्होंने अनुवाद कार्य की तीन कोटियाँ निर्धारित की–

(क) शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद (मेटाफ्रेज़),

(ख) अर्थानुगामी अनुवाद (पैराफ्रेज़),

(ग) अनुकरण (इमिटेशन)।

ड्राइडन के अनुसार (क) और (ख) के मध्य का मार्ग अवलम्बन योग्य है। उनके अनुसार कविता के अनुवाद में अनुवादक को दोनों भाषाओं पर

अधिकार हो, उसे मूल लेखक के साहित्यिक गुणों और उसकी 'भावना' का ज्ञान हो, तथा वह अपने समय के साहित्यिक आदर्शों का पालन करे। **अलेग्जेंडर पोप** (1688–1744) ने भी डाइडन के समान ही विचार प्रकट किए।

अठारहवीं शताब्दी में अनुवाद की अतिमूलनिष्ठता तथा अतिस्वतन्त्रता के विवाद से एक सोपान आगे बढ़कर एक समस्या थी कि अपने समकालीन पाठक के प्रति अनुवादक का कर्तव्य। पाठक की ओर अत्यधिक झुकाव के कारण अनुदित पाठ का स्वरूप मूल पाठ से काफी दूर पड़ जाता था। इस पर **डॉ. सैम्युएल जानसन** (1709–84) ने कहा कि, अनुवाद में मूलपाठ की अपेक्षा परिवर्धन के कारण उत्पन्न परिष्कृति का स्वागत किया जा सकता है, परन्तु मूलपाठ की हानि न हो, ये ध्यान देना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि जिस प्रकार लेखक अपने समकालीन पाठक के लिए लिखता है, उसी प्रकार अनुवादक भी अपने समकालीन पाठक के लिए अनुवाद करता है। डॉ. जानसन की सम्मति में अनुवाद की मूलनिष्ठता तथा पाठकधर्मिता में सन्तुलन मिलता है। उन्होंने अनुवादक को ऐसा चित्रकार या अनुकर्ता कहा, जो मूल के प्रति निष्ठावान होते हुए भी उद्दिष्ट दर्शक के हितों का ध्यान रखता है।

एलेग्जेंडर फ्रेजर टिटलर, जिनकी पुस्तक, 'प्रिंसिपल्स आफ ट्रांसलेशन' (1791) अनुवाद सिद्धान्त पर पहली व्यवस्थित पुस्तक मानी जाती है, उन्होंने तीन अनुवाद सूत्र प्रस्तावित किए–

(क) अनुवाद में मूल रचना के भाव का पूरा अनुरक्षण हो,

(ख) अनुवाद की शैली मूल के अनुरूप हो,

(ग) अनुवाद में मूल वाली सुबोधता हो।

टिटलर ने ही यह कहा कि, अनुवाद में मूल की भावना इस प्रकार पूर्णतया संक्रान्त हो जाए कि उसे पढकर पाठकों को उतनी ही तीव्र अनुभूति हो, जितनी मूल के पाठकों को हुई थी, प्रभावसमता का सिद्धान्त यही है।

उन्नीसवीं शताब्दी में रोमांटिक तथा उत्तर–रोमांटिक युगों में अनुवाद चिन्तन पर तत्कालीन काव्यचिन्तन का प्रभाव दिखाई देता है। ए. डब्ल्यू. लेगल ने सब प्रकार के मौखिक एवं लिखित भाषा व्यवहार को अनुवाद की संज्ञा दी तथा मूल के गठन को संरक्षित रखने पर बल दिया। इस युग में एक ओर तो अनुवादक को सर्जनात्मक लेखक के तुल्य समझने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, तो दूसरी ओर अनुवाद को शब्दानुगामी बनाने पर बल देने की बात कही गई।

कुछ विद्वानों ने अनुवाद की भिन्न उपभाषा होने का चर्चा की जो उपर्युक्त मान्यताओं से मेल खाती है।

विक्टोरियन धारा के अनुवादक इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि देश और काल की दूरी को अनुवाद में सुरक्षित रखा जाए–विदेशी भाषाओं की प्राचीन रचनाओं के अनुवाद में विदेशीयता और प्राचीनता की हानि न हो–जिसके फलस्वरूप शब्दानुगामी अनुवाद की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। **लौंगफेलो** (1807–81) इसके समर्थक थे। परन्तु **उमर खैयाम** की रुबाइयों के अनुवादक **फिटजेरल्ड** (1809–63) के विचार इसके विपरीत थे। वे इस मान्यता के समर्थक थे कि, अनुवाद के पाठक को मूल भाषा पाठ के निकट लाने के स्थान पर मूलभाषा पाठ की सांस्कृतिक विशेषताओं को लक्ष्यभाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए कि, वह लक्ष्यभाषा का अपनी सजीव सम्पत्ति प्रतीत हो, तथा इस प्रक्रिया में मूलभाषा से अनुवाद की बढ़ी हुई दूरी की उपेक्षा कर दी जाए।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में दो–तीन अनुवाद चिन्तक उल्लेखनीय हैं। **क्रोचे** तथा **वेलरी** ने अनुवाद की सफलता, विशेष रूप से कविता के अनुवाद की सफलता, में सन्देह व्यक्त किये हैं। **मैथ्यू आर्नल्ड** ने **होमर** की कृतियों के अनुवाद में सरल, प्रत्यक्ष और उदात्त शैली को अपनाने पर बल दिया।

इस प्रकार आधुनिक भाषाविज्ञान के उदय से पूर्व की अवधि में अनुवाद चिन्तन प्रायः दो विरोधात्मक मान्यताओं के चारों ओर घूमता रहा। वो दो मान्यताएँ इस प्रकार हैं –

1. अनुवाद शब्दानुगामी हो या स्वतन्त्र हो,
2. अनुवाद अपनी आन्तरिक प्रकृति की दृष्टि से असम्भव है, परन्तु सामाजिक दृष्टि से नितान्त आवश्यक।

इस अवधि के अनुवाद चिन्तन में कुल मिलाकर संघटनात्मक तथा विभेदात्मक दृष्टियों का सन्तुलन देखा जाता रहा–संघटनात्मक दृष्टि से अनुवाद सिद्धान्त का ऐसा स्वरूप अभिप्रेत है, जो सामान्य कोटि का हो, तथा विभेदात्मक दृष्टि में पाठों की प्रकृतिगत विभिन्नता के आधार पर अनुवाद की प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन की चर्चा का अन्तर्भाव है। विद्वानों ने इस अवधि में अमूर्त चिन्तन तो किया परन्तु वे अनुवाद प्रणाली का सोदाहरण पल्लवन नहीं कर पाए। मूलपाठ के अन्तर्ज्ञानमूलक बोधन से वे विश्लेषणात्मक बोधन के लक्ष्य की ओर तो बढ़े परन्तु उसके पीछे सुनिश्चित सिद्धान्त की भूमिका नहीं रही। ऐसे चिन्तकों में अनुवादकों के अतिरिक्त साहित्यकार तथा साहित्य–समीक्षक ही अधिक थे,

भाषाविज्ञानी नहीं। इसके अतिरिक्त वे एक-दूसरे के चिन्तन से परिचित हों, ऐसा भी प्रतीत नहीं होता था।

आधुनिक भाषाविज्ञान का उदय यद्यपि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ, परन्तु अनुवाद सिद्धान्त की प्रासंगिकता की दृष्टि से उत्तरार्द्ध की अवधि का महत्त्व है। इस अवधि में भाषाविज्ञान से परिचित अनुवादकों तथा भाषाविज्ञनियों का ध्यान अनुवाद सिद्धान्त की ओर आकृष्ट हुआ। संरचनात्मक भाषाविज्ञान का विकास, अर्थविज्ञान की प्रगति, सम्प्रेषण सिद्धान्त तथा भाषाविज्ञान का समन्वय, तथा अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं—समाजभाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, प्रोक्ति विश्लेषण—का विकास, तथा संकेतविज्ञान, विशेषत: पाठ संकेतविज्ञान, का उदय ऐसी घटनाएँ मानी जाती हैं, जो अनुवाद सिद्धान्त को पुष्ट तथा विकसित करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती रही।

आंग्ल-अमरीकी धारा में एक विद्वान् **यूजेन नाइडा** भी माने जाते हैं। उन्होंने बाइबिल-अनुवाद के अनुभव के आधार पर अनुवाद सिद्धान्त और व्यवहार पर अपने विचार ग्रन्थों के रूप में प्रकट किए (1964-1969)। इनमें अनुवाद सिद्धान्त का विस्तृत, विशद तथा तर्कसंगत रूप देखने को मिलता है। नाइडा ने अनुवाद प्रक्रिया का विवरण देते हुए मूलभाषा पाठ के विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित भाषासिद्धान्त प्रस्तुत किया तथा लक्ष्यभाषा में संक्रान्त सन्देश के पुनर्गठन के विभिन्न आयाम निर्धारित किए। उन्होंने अनुवाद की स्थिति से सम्बद्ध दोनों भाषाओं के बीच विविधस्तरीय समायोजनों का विवरण प्रस्तुत किया।

अन्य विद्वान् **कैटफोर्ड** (1965) हैं, जिनके अनुवाद सिद्धान्त में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के अनुप्रयोग का उदाहरण मिलता है। उन्होंने शुद्ध भाषावैज्ञानिक आधार पर अनुवाद के प्रारूपों का निर्धारण किया, अनुवाद-परिवृत्ति का भाषा वैज्ञानिक विवरण दिया, तथा अनुवाद की सीमाओं पर विचार किया। तीसरे प्रभावशाली विद्वान् **पीटर न्युमार्क** (1981) हैं, जिन्होंने सुगठित और घनिष्ठ शैली में अनुवाद सिद्धान्त का तर्कसंगत तथा गहन विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। वे अपने विचारों को उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट करते चलते हैं। उन्होंने नाइडा के विपरीत, पाठ प्ररूपभेद के अनुसार विशिष्ट अनुवाद प्रणाली की मान्यता प्रस्तुत की। उनका अनुवाद सिद्धान्त को योगदान है कि, अनुवाद की अर्थकेन्द्रित (मूलभाषा पाठ केन्द्रित) तथा सम्प्रेषण केन्द्रित (अनुवाद के पाठक पर केन्द्रित) प्रणाली की संकल्पना। उन्होंने पाठ विश्लेषण, सन्देशान्तरण तथा

लक्ष्यभाषा में अभिव्यक्ति की स्थितियों में सम्बन्धित अनेक अनुवाद सूत्र प्रस्तुत किएय यह भी इनका एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य माना जाता है।

यूरोपीय परम्परा में जर्मन भाषा का लीपझिग स्कूल प्रभावशाली माना जाता है। इसकी मान्यता है कि, सब प्रकार के अनुभवों का अनुवाद सम्भव है। यह स्कूल पाठ के संज्ञानात्मक (विकल्पनरहित) तथा सन्दर्भपरक (विकल्पनशील) अंगों में अन्तर मानता है तथा रूपान्तरण व्याकरण और पाठसंकेतविज्ञान का भी उपयोग करता है। इस शाला ने साहित्येतर पाठों के अनुवाद पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया। वस्तुतः अनुवाद सिद्धान्त पर सबसे अधिक साहित्य जर्मन भाषा में मिलता है ऐसा माना जाता है। रूसी परम्परा में **फेदोरोव** अनुवाद सिद्धान्त को स्वतन्त्र भाषिक अनुशासन मानते हैं। **कोमिसारोव** ने अनुवाद सम्बन्धी समस्याओं की चर्चा निम्नलिखित शीर्षकों से की–

(क) अनुवाद सिद्धान्त का प्रतिपाद्य, उद्देश्य तथा अनुवाद प्रणाली,

(ख) अनुवाद का सामान्य सिद्धान्त,

(ग) अनुवादगत मूल्यसमता,

(घ) अनुवाद प्रक्रिया,

(ङ) अनुवादक की दृष्टि से भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण।

यान्त्रिक अनुवाद, आधुनिक युग की एक मुख्य गतिविधि है। यन्त्र की आवश्यकताओं के अनुसार भाषा के भाषावैज्ञानिक विश्लेषण के प्रारूप तैयार किए गए हैं, तथा विशेषतया प्रौद्योगिकीय पाठों के अनुवाद में संगणक से सहायता ली गई है। **भोलानाथ तिवारी** के अनुसार द्विभाषिक शब्द-संग्रह में तो संगणक बहुत सहायक है ही, अब अनुवाद के क्षेत्र में इसकी सम्भावनाएँ निरन्तर बढ़ती जा रही हैं।

अनुवाद की प्रक्रिया

सैद्धान्तिक दृष्टि से 'अनुवाद कैसे होता है' का निर्वैयक्तिक विवरण ही अनुवाद की प्रक्रिया है। भाषा व्यवहार की एक विशिष्ट विधा के रूप में अनुवाद प्रक्रिया का स्पष्टीकरण एक ऐसी दृष्टि की अपेक्षा रखता है, जिसमें अनुवाद कार्य सम्बन्धी बहिर्लक्षी परिस्थितियों और भाषा-संरचना एवं भाषा-प्रयोग सम्बन्धी अन्तर्लक्षी स्थितियों का सन्तुलन हो। उपर्युक्त परिस्थितियों से सम्बन्धित सैद्धान्तिक प्रारूपों के सन्दर्भ में यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना आधुनिक अनुवाद सिद्धान्त का वैशिष्ट्य माना जाता है। तदनुसार चिन्तन के अंग के रूप में अनुवाद

की इकाई, अनुवाद का पाठक, और कला, कौशल (या शिल्प) एवं विज्ञान की दृष्टि से अनुवाद के स्वरूप पर दृष्टिपात के साथ साथ अनुवाद की प्रक्रिया का विशद विवरण किया जाता है।

अनुवाद की इकाई

सामान्यत: सन्देश का अनुवाद किया जाता है–अत: अनुवाद की इकाई भी सन्देश को माना जाता है। विभिन्न प्रकार के अनुवादों में सन्देश की अभिव्यंजक भाषिक इकाई का आकार भी भिन्न-भिन्न रहता है। यान्त्रिक अनुवाद में एक रूप या पद अनुवाद की इकाई होता है, परन्तु मानव अनुवाद में इकाई का आकार अधिक विशाल होता है। इसी प्रकार आशु मौखिक अनुवाद (अनुभाषण) में यह इकाई एक वाक्य होती है, तो लिखित अनुवाद में इकाई का आकार वाक्य से बड़ा होता है (और क्रमिक मौखिक अनुवाद की इकाई भी एक वाक्य होती है, कभी एकाधिक वाक्यों का समुच्चय भी)।

लिखित माध्यम के मानव अनुवाद में, अनुवाद की इकाई एक पाठ को माना जाता है। अनुवादक पाठ स्तर के सन्देश का अनुवाद करते हैं। पाठ के आकार की सीमा एक वाक्य से लेकर एक सम्पूर्ण पुस्तक या पुस्तकों के एक विशिष्ट समूह पर्यन्त कुछ भी हो सकती है, परन्तु एक सन्देश उसमें अपनी पूर्णता में अभिव्यक्त हो जाता हो ये आवश्यक है। उदाहरण के लिए, किसी सार्वजनिक सूचना या निर्देश का एक वाक्य ही पूर्ण सन्देश बन सकता है। जैसे 'प्रवेश वर्जित' है। दूसरी ओर 'रंगभूमि' या 'कामायनी' की पूरी पुस्तक ही पाठ स्तर की हो सकती है। भौतिक सुविधा की दृष्टि से अनुवादक पाठ को तर्कसंगत खण्डों में बाँटकर अनुवाद कार्य करते हैं, ऐसे खण्डों को अनुवादक पाठांश कह सकते हैं अथवा तात्कालिक सन्दर्भ में उन्हें ही पाठ भी कहा जाता है। इन्हें अनुवादक अनुवाद की तात्कालिक इकाई कहते हैं तथा सम्पूर्ण पाठ को अनुवाद की पूर्ण इकाई।

पाठ की संरचना

पाठ की संरचना का ज्ञान, अनुवाद प्रक्रिया को समझने में विशेष सहायक माना जाता है। पाठ संरचना के तीन आयाम माने गये हैं–पाठगत, पाठसहवर्ती तथा अन्य पाठपरक। संकेतविज्ञान की मान्यता के अनुसार तीनों का समकालिक अस्तित्त्व होता है तथा ये तीनों अन्योन्याश्रित होते हैं।

पाठगत आयाम

पाठगत (पाठान्तर्वर्ती) आयाम पाठ का आन्तरिक आयाम है, जिसमें उसके भाषा पक्ष का ग्रहण होता है। दोनों ही स्थितियों में सुगठनात्मकता पाठ का आन्तरिक गुण है। पाठ की पाठगत संरचना के दो पक्ष हैं –

1. वाक्य के अन्तर्गत आने वाली इकाइयों का अधिक्रम,
2. भाषा-विश्लेषण के विभिन्न स्तरों पर, अनुभव होने वाली संसक्ति।

वाक्य की इकाइयाँ, वाक्य, उपवाक्य, पदबन्ध, पद और रूप (प्रत्यय) इस अधिक्रम में संयोजित होती हैं, परन्तु पाठ की दृष्टि से यह बात महत्त्वपूर्ण है कि एक से अधिक वाक्यों वाले पाठ के वाक्य अन्तरवाक्य योजकों द्वारा इस प्रकार समन्वित होते हैं कि, पूरे पाठ में संसक्ति का गुण अनुभव होने लगता है। परन्तु संसक्ति तत्पर्यन्त सीमित नहीं। उसे हम पाठ विश्लेषण के विभिन्न स्तरों पर भी अनुभव कर सकते हैं। तदनुसार सन्दर्भगत संसक्ति, शब्दगत संसक्ति, और व्याकरणिक संसक्ति की बात की जाती है।

पाठसहवर्ती आयाम

पाठसहवर्ती आयाम में पाठ की विषयवस्तु, उसकी विशिष्ट विधा, उसका सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष, पाठ के समय या लेखक का अभिव्यक्तिपरक विशिष्ट आशय, उद्दिष्ट पाठक का सामाजिक व्यक्तित्त्व और उसकी आवश्यकता आदि का अन्तर्भाव होता है। पाठसहवर्ती आयाम के उपर्युक्त पक्ष परस्पर इस प्रकार सुबद्ध रहते हैं कि सम्पूर्ण पाठ एकान्वित इकाई के रूप में अनुभव होता है। यह स्पष्टतया माना जाता है कि, पाठ में पाठगत आयाम से ही पाठसहवर्ती आयाम की अभिव्यक्ति होती है और पाठसहवर्ती आयाम से पाठगत आयाम अनुशासित होता है। इस प्रकार ये दोनों अन्योंन्याश्रित हैं। पाठभेद से सुगठनात्मकता की गहनता में भी अन्तर आ जाता है–अनुभवी पाठक अपने अभ्यासपुष्ट अन्तर्ज्ञान से ग्रहण करता है। तदनुसार, साहित्यिक रचना में सुगठनात्मकता की जो गहनता उपलब्ध होती है वह अन्तिम विवरण में अनुभूत नहीं होती।

पाठपरक आयाम

पाठ संरचना के अन्य पाठपरक आयाम में एक विशिष्ट पाठ की, उसके समान या भिन्न सन्दर्भ वाले अन्य पाठों से सम्बन्ध की चर्चा होती है। उदाहरण के लिए, एक वस्त्र के विज्ञापन की भाषा की, प्रसाधन सामग्री के विज्ञापन की

भाषा से प्रयोग शैली की दृष्टि से जो समानता होगी तथा बैंकिग सेवा के विज्ञापन से जो भिन्नता होगी वो सम्बन्ध पर चर्चा की जाती है।

विभिन्न प्रारूप

इस में अनुवाद प्रक्रिया के प्रमुख प्रारूपों की प्रक्रिया सम्बन्धी चिन्तन के विभिन्न पक्षों को जानने के लिये चर्चा होती है। प्रारूपकार प्रायः अपनी अनुवाद परिस्थितियों तथा तत्सम्बन्धी चिन्तन से प्रेरित होने के कारण प्रक्रिया के कुछ ही पक्षों पर विशेष बल दे पाते हैं। सर्वांगीणता में इस न्यूनता की पूर्ति इस रूप में हो जाती है कि, विवेचित पक्ष के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिल जाती है। इस दृष्टि से **बाथगेट** (1981) द्रष्टव्य है। अनुवाद प्रक्रिया के प्रारूपों की रचना के पीछे दो प्रेरक तत्त्व प्रधान रूप से माने जाते हैं–मानव अनुवादकों का प्रशिक्षण तथा यन्त्र अनुवाद का यान्त्रिक पक्ष। इन दोनों की आवश्यकताओं से प्रेरित होकर अनुवाद प्रक्रिया के सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए गए। बहुधा केवल मानव अनुवादकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता से प्रेरित अनुवाद प्रक्रिया प्रारूपों से होती है। अनुप्रयोगात्मक आयाम में इनकी उपयोगिता स्पष्ट की जाती है।

सामान्य सन्दर्भ

अनुवाद प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु है लक्ष्यभाषा में मूलभाषा पाठ के अनुवाद पर्याय प्रस्तुत करना। यह प्रक्रिया एकपक्षीय होती है–मूलभाषा से लक्ष्यभाषा में। परन्तु भाषाओं की यह स्थिति अन्तःपरिवर्त्य होती है–जो प्रथम बार में मूलभाषा है, वह द्वितीय बार में लक्ष्यभाषा हो सकती है। इस प्रक्रिया को सम्प्रेषण सिद्धान्त से समर्थित मानचित्र द्वारा भी समझाया जाता है, जो निम्न प्रकार से है (न्यूमार्क 1969)–

(1) वक्ता-लेखक का विचार , (2) मूलभाषा की अभिव्यक्ति रुढियाँ, (3) मूलभाषा पाठ, (4) प्रथम श्रोताध्पाठक की प्रतिक्रिया, (5) अनुवादक का अर्थबोध, (6) लक्ष्यभाषा की अभिव्यक्ति रुढियाँ, (7) लक्ष्यभाषा पाठ, (8) द्वितीय श्रोताध्पाठक की प्रतिक्रिया।

इस प्रारूप के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया के कुल आठ सोपान हो सकते हैं। लेखक या वक्ता के मन में उठने वाला विचार मूलभाषा की अभिव्यक्ति रूढ़ियों में बँधकर मूलभाषा के पाठ का आकार ग्रहण करता है, जिससे पहले (मूलभाषा के) श्रोता या पाठक के मन में वक्ता/लेखक के विचार के अनुरूप प्रतिक्रिया

प्रकट होती है। तत्पश्चात् अनुवादक अपनी प्रतिभा, भाषाज्ञान और विषयज्ञान के अनुसार मूलभाषा के पाठ का अर्थ समझकर लक्ष्यभाषा की अभिव्यक्ति रूढ़ियों का पालन करते हुए लक्ष्यभाषा के पाठ का सर्जन करता है, जिसे दूसरा (लक्ष्यभाषा का) पाठक ग्रहण करता है। इस व्याख्या से स्पष्ट होता है कि सं. 5, अर्थात् अनुवादक का सं. 3, 4 और 1 इन तीनों से सम्बन्ध है। वह मूलभाषा के पाठ का अर्थबोध करते हुए पहले पाठक के समान आचरण करता है, और मूलभाषा का पाठ क्योंकि वक्ता/लेखक के विचार का प्रतीक होता है, अतः अनुवादक उससे भी जुड़ जाता है।

इसी प्रारूप को विद्वानों ने प्रकारान्तर से भी प्रस्तुत किया है। उदहारण के लिये नाइडा, न्यूमार्क, और बाथगेट के अंशदानों की चर्चा की जाती है।

नाइडा का चिन्तन

नाइडा (1964) के अनुसार ये अनुवाद पर्याय जिस प्रक्रिया से निर्धारित होते हैं, उसके दो रूप हैं–प्रत्यक्ष और परोक्ष। इन दोनों में आधारभूत अन्तर है। प्रत्यक्ष प्रक्रिया के प्रारूप के अनुसार मूल पाठ की बाह्यतलीय संरचना के स्तर पर उपलब्ध भाषिक इकाइयों के लक्ष्यभाषा में अनुवाद पर्याय निश्चित होते हैं, और अनुवाद प्रक्रिया एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है, जिसमें मूल पाठ के प्रत्येक अंश का अनुवाद होता है। इस प्रक्रिया में एक मध्यवर्ती स्थिति भी होती है, जिसमें एक निर्विशेष और सार्वभौम भाषिक संरचना रहती है, इसका केवल सैद्धान्तिक महत्त्व है। इस प्रारूप की मान्यता के अनुसार, अनुवादक मूलभाषा पाठ के सन्देश को सीधे लक्ष्यभाषा में ले जाता है, वह इन दोनों स्थितियों में मूलभाषा पाठ और लक्ष्यभाषा पाठ की बाह्यतलीय संरचना के स्तर पर ही रहता है। अनुवाद-पर्यायों के चयन और प्रस्तुतीकरण का कार्य एक स्वचालित प्रक्रिया के समान होता है। नाइडा ने एक आरेख के द्वारा इसे स्पष्ट किया है–

क ---------- (क्ष) ---------- ख

इसमें 'क' मूलभाषा है, 'ख' लक्ष्यभाषा है, और '(क्ष)' वह मध्यवर्ती संरचना है, जो दोनों भाषाओं के लिए समान होती है और जो अनुवाद को सम्भव बनाती है, यहाँ दोनों भाषाएँ एक-दूसरे के साथ इस प्रकार सम्बद्ध हो जाती हैं कि उनका अपना वैशिष्ट्य कुछ समय के लिए लुप्त हो जाता है।

परोक्ष प्रक्रिया के प्रारूप में धारणा यह है कि अनुवादक पाठ की बाह्यतलीय संरचना पर्यन्त सीमित रहकर आवश्यकतानुसार, अपि तु प्रायः सदा,

पाठ की गहन संरचना में भी जाता है और फिर लक्ष्यभाषा में उपयुक्त अनुवाद पर्याय प्रस्तुत करता है। वस्तुत: इस प्रारूप में पूर्ववर्णित प्रत्यक्ष प्रक्रिया प्रारूप का अन्तर्भाव हो जाता है, दोनों में विरोध नहीं है। प्रत्यक्ष प्रक्रिया प्रारूप की यह नियम है कि अनुवाद कार्य बाह्यतलीय संरचना के स्तर पर ही हो जाता है, जबकि परोक्ष प्रक्रिया के अनुसार अनुवाद कार्य प्राय: पाठ की गहन संरचना के माध्यम से होता है, यद्यपि इस बात की सदा सम्भावना रहती है कि भाषा में मूलभाषा के अनेक अनुवाद पर्याय बाह्यतलीय संरचना के स्तर पर ही मिल जाएँ। नाइडा परोक्ष प्रक्रिया प्रारूप के समर्थक हैं। निम्नलिखित आरेख द्वारा वे इसे स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं –

क (मूलभाषा पाठ) ख (लक्ष्यभाषा पाठ)
। ?
॥
॥
? ?
(विश्लेषण) (पुनर्गठन)
॥
॥
? ?
य ---------- संक्रमण ---------- र

य = मूलभाषा का गहनस्तरीय विश्लेषित पाठ

र = लक्ष्यभाषा में संक्रान्त गहनस्तरीय (और समसंरचनात्मक) पाठ।

नाइडा के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया के वास्तव में तीन सोपान होते हैं–

(1) अनुवादक सर्वप्रथम मूलभाषा के पाठ का विश्लेषण करता है, पाठ की व्याकरणिक संरचना तथा शब्दों एवं शब्द शृंखलाओं का अर्थगत विश्लेषण कर वह मूलपाठ के सन्देश को ग्रहण करता है। इसके लिए वह भाषा-सिद्धान्त पर आधारित भाषा-विश्लेषण की तकनीकों का उपयुक्त रीति से अनुप्रयोग करता है। विशेषत: असामान्य रूप से जटिल तथा दीर्घ और अनेकार्थ वाक्यों और वाक्यांशों/पदबन्धों के अर्थबोधन में हो सकने वाली कठिनाइयों का हल करने में मूलपाठ का विश्लेषण सहायक रहता है।

(2) अर्थबोध हो जाने के पश्चात् सन्देश का लक्ष्यभाषा में संक्रमण होता है। यह प्रक्रिया अनुवादक के मस्तिष्क में होती है। इसमें मूलपाठ के

लक्ष्यभाषागत अनुवाद-पर्याय निर्धारित होते हैं तथा दोनों भाषाओं के मध्य विभिन्न स्तरों और श्रेणियों में सामंजस्य स्थापित होता है।

(3) अन्त में अनुवादक मूलभाषा के सन्देश को लक्ष्य भाषा में उसकी संरचना एवं प्रयोग नियमों तथा विधागत रूढ़ियों के अनुसार इस प्रकार पुनर्गठित करता है कि वह लक्ष्यभाषा के पाठक को स्वाभाविक प्रतीत होता है या कम से कम अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता।

विश्लेषण

अनुवाद प्रक्रिया के स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में नाइडा ने मूलपाठ के विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित भाषा सिद्धान्त तथा विश्लेषण की रूपरेखा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार भाषा के दो पक्षों का विश्लेषण अपेक्षित है–व्याकरण तथा शब्दार्थ। नाइडा व्याकरण को केवल वाक्य अथवा निम्नतर श्रेणियों–उपवाक्य, पदबन्ध आदि–के गठनात्मक विश्लेषण पर्यन्त सीमित नहीं मानते। उनके अनुसार व्याकरणिक गठन भी एक प्रकार से अर्थवान होता है। उदाहरण के लिए, कर्तृवाच्य संरचना और कर्मवाच्य, भाववाच्य संरचना में केवल गठनात्मक अन्तर ही नहीं, अपितु अर्थ का अन्तर भी है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अनेकार्थ संरचनाओं की ओर विशेष रूप से ध्यान खींचा है। उदाहरण के लिए, 'यह राम का चित्र है' इस वाक्य के निम्नलिखित तीन अर्थ हो सकते हैं–

1. यह चित्र राम ने बनाया है।
2. इस चित्र में राम अंकित है।
3. यह चित्र राम की सम्पत्ति है।

ये तीनों वाक्य, नाइडा के अनुसार, बीजवाक्य या उपबीजवाक्य हैं, जिनका निर्धारण अनुवर्ति रूपान्तरण की विधि से किया गया है। बाह्यस्तरीय संरचना पर इन तीनों वाक्यों का प्रत्यक्षीकरण 'यह राम का चित्र है' इस एक ही वाक्य के रूप में होता है। नाइडा ने उपर्युक्त रूपान्तरण विधि का विस्तार से वर्णन किया है। उनकी रूपान्तरण विषयक धारणा चाम्स्की के रूपान्तरण-प्रजनक व्याकरण की धारणा के समान कठोर तथा गठनबद्ध नहीं, अपितु अनुप्रयोग की प्रकृति तथा उसके उद्देश्य के अनुरूप लचीली तथा अन्तर्ज्ञानमूलक है। इसी प्रकार उन्होंने शब्दार्थ की दो कोटियों–वाच्यार्थ और लक्ष्य-व्यंग्यार्थ- का वर्णनात्मक विश्लेषण किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि, नाइडा ने विश्लेषण की उपर्युक्त प्रणाली को मूलभाषा पाठ के अर्थबोधन के साधन के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका

बल मूलपाठ के अर्थ का यथासम्भव पूर्ण और शुद्ध रीति से समझने पर रहा है। उनकी प्रणाली बाइबिल एवं उसके सदृश अन्य प्राचीन ग्रन्थों की भाषा के विश्लेषणात्मक अर्थबोधन के लिए उपयुक्त माना जाता है, यद्यपि उसका प्रयोग अन्य और आधुनिक भाषाभेदों के पाठों के अर्थबोधन के लिए भी किया जा सकता है।

संक्रमण

विश्लेषण की सहायता से हुए अर्थबोध का लक्ष्यभाषा में संक्रान्त अनुवाद-प्रक्रिया का केन्द्रस्थ सोपान है। अनुवादकार्य में अनुवादक को विश्लेषण और पुनर्गठन के दो ध्रुवों के मध्य गति करते रहना होता है, परन्तु यह गति संक्रमण मध्यवर्ती सोपान के मार्ग से होती है, जहाँ अनुवादक को (क्षण भर के लिए रुकते हुए) पुनर्गठन के सोपान के अंशो को और अधिक स्पष्टता से दर्शन होता है। संक्रमण की यह प्रक्रिया अनुवादक के मस्तिष्क में तथा अपनी प्रकृति से त्वरित तथा अन्तर्ज्ञानमूलक होती है। अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक के व्यक्तित्त्व की संगति इस सोपान पर है। विश्लेषण से प्राप्त भाषिक तथा सम्प्रेषण सम्बन्धी तथ्यों का, उपयुक्त अनुवाद-पर्याय स्थिर करने में, अनुवादक जैसा उपयोग करता है, उसी में उसकी कुशलता निहित होती है। विश्लेषण तथा पुनर्गठन के सोपानों पर एक अनुवादक अन्य व्यक्तियों से भी कभी कुछ सहायता ले सकता है, परन्तु संक्रमण के सोपान पर वह एकाकी ही होता है। संक्रमण के सोपान पर विचारणीय बातें दो हैं–अनुवादक का अपना व्यक्तित्त्व तथा मूलभाषा एवं लक्ष्यभाषा के बीच संक्रमणकालीन सामंजस्य। अनुवादक के व्यक्तित्त्व में उसका विषयज्ञान, भाषाज्ञान, प्रतिभा, तथा कल्पना इन चार की विशेष अपेक्षा होती है। तथापि प्रधानता की दृष्ट से प्रतिभा और कल्पना को विषयज्ञान तथा भाषाज्ञान से अधिक महत्त्व देना होता है, क्योंकि अनुवाद प्रधानतया एक व्यावहारिक और क्रियात्मक कार्य है। विषयज्ञान तथा भाषाज्ञान की कमी को अनुवादक दूसरों की सहायता से भी पूरा कर सकता है, परन्तु प्रतिभा और कल्पना की दृष्टि से अपने ऊपर ही निर्भर रहना होता है।

मूलभाषा एवं लक्ष्यभाषा के मध्य सामंजस्य स्थापित होना अनुवाद-प्रक्रिया की अनिवार्य एवं आन्तरिक आवश्यकता है। भाषान्तरण में सन्देश का प्रतिकूल रूप से प्रभावित होना सम्भावित रहता है। इस प्रतिकूलता के प्रभाव को यथासम्भव कम करने के लिए अर्थपक्ष और व्याकरण दोनों की दृष्टि से दोनों

भाषाओं के बीच सामंजस्य की स्थिति लानी होती है। मुहावरे एवं उनका लाक्षणिक प्रयोग, अनेकार्थकता, अर्थ की सामान्यता तथा विशिष्टता, आदि अनेक ऐसे मुद्दे हैं जिनका सामंजस्य करना होता है। व्याकरण की दृष्टि से प्रोक्ति-संरचना एवं प्रकार, वाक्य-संरचना एवं प्रकार तथा पद-संरचना एवं प्रकार सम्बन्धी अनेक ऐसी बातें हैं, जिनका समायोजन अपेक्षित होता है। उदाहरण के लिए, मूलपाठ में प्रयुक्त किसी विशेष अन्तरवाक्ययोजक के लिए लक्ष्यभाषा के पाठ में किसी अन्तरवाक्ययोजक का प्रयोग अपेक्षित न होना, मूलपाठ की कर्मवाच्य संरचना के लिए लक्ष्यभाषा में कर्तृवाच्य संरचना का उपयुक्त होना व्याकरणिक समायोजन के मुद्दे हैं।

संक्रमण का सोपान अनुवाद कार्य की दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण है, अनुवाद प्रक्रिया के स्पष्टीकरण में उसका अपेक्षाकृत स्वतन्त्र अस्तित्त्व शेष दो सोपानों की तुलना में उतना स्पष्ट नहीं। बहुधा संक्रमण तथा पुनर्गठन के सोपानों के अन्तर को प्रक्रिया के विशदीकरण में स्थापित करना कठिन हो जाता है। विश्लेषण और पुनर्गठन के सोपानों पर, अनुवादक का कर्तृत्व यदि अपेक्षाकृत स्वतन्त्र होता है, तो संक्रमण के सोपान पर वह कुछ अधीनता की स्थिति में रहता है। अधिक मुख्य बात यह है कि, अनुवादक को उन सब मुद्दों की चेतना हो जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। यदि अनुवाद-प्रशिक्षणार्थी के लिए ये प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी माने जाएँ, तो अभ्यस्त अनुवादक के अनुवाद-व्यवहार के ये स्वाभाविक अंग माने जा सकते हैं।

पुनर्गठन

मूलपाठ के सन्देश का अर्थबोध, संक्रमण के सोपान में से होते हुए लक्ष्यभाषा में पुनर्गठित होकर अनुवाद (अनुदित पाठ) का रूप धारण करता है। पुनर्गठन का सोपान लक्ष्यभाषा में मूर्त अभिव्यक्ति का सोपान है। अनुवाद प्रक्रिया की जानकारी के सम्बन्ध में अनुवादकों को पुनर्गठन के सोपान पर पाठ के जिन प्रमुख आयामों की उपयुक्तता पर ध्यान देना अभीष्ट है वे हैं -

1. व्याकरणिक संरचना तथा प्रकार,
2. शब्दक्रम,
3. सहप्रयोग,
4. भाषाभेद तथा शैलीगत प्रतिमान।

लक्ष्यभाषागत उपयुक्तता तथा स्वाभाविकता ही इन सबकी आधारभूत कसौटी है। इन गुणों की निष्पत्ति के लिए कई बार दोनों भाषाओं में समानता की स्थिति सहायक होती है, कई बार असमानता की। उदाहरण के लिए, यह आवश्यक नहीं कि, मूलभाषा के पदबन्ध के लिए लक्ष्यभाषा का उपयुक्त अनुवाद-पर्याय एक पदबन्ध ही होय यह संरचना एक समस्त पद भी हो सकती है, जैसे, Diploma in translation = अनुवाद डिप्लोमा। देखना यह होता है कि, लक्ष्यभाषा में सन्देश का पुनर्गठन उपर्युक्त घटकों की दृष्टि से उपयुक्तता तथा स्वाभाविकता की स्थिति की निष्पत्ति करें, वे घटक लक्ष्यभाषा की 'आत्मीयता' (जीनियस) तथा परम्परा के अनुरूप हों।

मूलभाषा में व्याकरणिक संरचना के कतिपय तथ्यों का लक्ष्यभाषा में स्वरूप बदल सकता है, यद्यपि यह सदा आवश्यक नहीं होता। उदाहरण के लिए, आङ्ग्रल मूलपाठ की कर्मवाच्य संरचना "Steps have been taken by the Government to meet the situation" को हिन्दी में कर्मवाच्य संरचना में भी प्रस्तुत किया जा सकता है, कर्तृवाच्य संरचना में भी–' स्थिति का सामना करने के लिए सरकार द्वारा कार्यवाही की गई हैं 'स्थिति का सामना करने के लिए सरकार ने कार्यवाही की हैं।' परन्तु 'The meeting was chaired by X' के लिए हिन्दी में कर्तृवाच्य संरचना 'क्ष ने बैठक की अध्यक्षता की', उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसे निर्णय पुनर्गठन के स्तर पर किए जाते हैं। यही बात सहप्रयोग के लिए है। सहप्रयोग प्रत्येक भाषा के अपने-अपने होते हैं। अंग्रेजी में to take a step कहते हैं, तो हिन्दी में 'कार्यवाही करना'। इस उदाहरण में जव जांम का अनुवाद 'उठाना' समझना भूल मानी जाएगी–ये दोनों अपनी-अपनी भाषा में ऐसे शाब्दिक इकाइयों के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें खण्डित नहीं किया जा सकता।

भाषाभेद के अन्तर्गत, कालगत, स्थानगत और प्रयोजनमूलक भाषाभेदों की गणना होती है। तथापि एक सुगठित पाठ के स्तर पर ये सब शैलीभेद के रूप में देखे जाते हैं। उदाहरण के लिए, पुरानी अंग्रेजी की रचना का हिन्दी में अनुवाद करते समय, पुनर्गठन के सोपान पर अनुवादक को यह निर्णय करना होगा कि, लक्ष्यभाषा के किस भाषाभेद के शैलीगत प्रभाव मूलभाषापाठ के शैलीगत प्रभावों के समकक्ष हो सकते हैं। इस दृष्टि से पुरानी अंग्रेजी के पाठ का पुरानी हिन्दी में भी अनुवाद उपयुक्त हो सकता है, आधुनिक हिन्दी में भी। शैलीगत प्रतिमान को विहंग दृष्टि से दो रूपों में समझाया जाता है–साहित्येतर शैली और साहित्यिक शैली।

साहित्येतर शैली में औपचारिक के विरुद्ध अनौपचारिक तथा तकनीकी के विरुद्ध गैर–तकनीकी, ये दो भेद प्रमुख रूप से मिलते हैं। साहित्यिक शैली में पाठ के विधागत भेदों–गद्य और पद्य, आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। इस दृष्टि से औपचारिक शैली के मूलपाठ को लक्ष्यभाषा में औपचारिक शैली में ही प्रस्तुत किया जाए, या मूल गद्य रचना को लक्ष्यभाषा में गद्य के रूप में ही प्रस्तुत किया जाए, यह निर्णय लक्ष्यभाषा की परम्परा पर आधारित उपयुक्तता के अनुसार करना होता है। उदाहरण के लिए, भारतीय भाषाओं में गद्य की तुलना में पद्य की परम्परा अधिक पुष्ट है, अतः उनमें मूल गद्य पाठ का यदि पद्यात्मक भाषान्तरण हो, तो वह भी उपयुक्त प्रतीत हो सकता है। सारांश यह कि लक्ष्यभाषा में जो स्वाभिक और उपयुक्त प्रतीत हो तथा जो लक्ष्यभाषा की परम्परा के अनुकूल हो–स्वाभाविकता, उपयुक्तता तथा परम्परानुवर्तिता, ये तीनों एक सीमा तक अन्योन्याश्रित हैं–उसके आधार पर लक्ष्यभाषा में सन्देश का पुनर्गठन होता है।

नाइडा की प्रणाली किस प्रकार काम करती है, उसे निम्न उदहारणों की सहायता से भी समझाया जाता है। सार्वजनिक सूचना के सन्दर्भ से एक उदाहरण इस प्रकार है।

(1)

क = No admission

य =Admission is not allowed

र = प्रवेश की अनुमति नहीं है।

ख = प्रवेश वर्जित है, अन्दर आना मना है।

उक्त अनुवाद के अनुसार, 'क' मूलभाषा का पाठ है, जो एक सार्वजनिक निर्देश की भाषा का उदाहरण है। यह एक अल्पांग (न्यूनीकृत) वाक्य है। इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विश्लेषण की विधि से अनुगामी रूपान्तरण द्वारा अनुवादक इसका बीजवाक्य निर्धारित करता है, यह बीजवाक्य 'य' है, इसी से 'क' व्युत्पन्न है। संक्रमण के सोपान पर 'य' समसंरचनात्मक और समानार्थक वाक्य 'र' है, जो पुरोगामी रूपान्तरण द्वारा पुनर्गठन के स्तर पर 'ख' का रूप धारण कर लेता है। 'ख' के दो भेद हैं, दोनों ही शुद्ध माने जाते हैं, उनमें अन्तर शैली की दृष्टि से है। 'प्रवेश वर्जित है' में औपचारिकता है तथा वह सुशिक्षित वर्ग के उपयुक्त है, 'अन्दर आना मना है' में अनौपचारिकता है और उसे सामान्य रूप से सभी के लिए और विशेष रूप से अल्पशिक्षित वर्ग के लिए उपयुक्त माना

जाता है, सूचनात्मकता तथा (निषेधात्मक) आदेशात्मकता दोनों में सुरक्षित है।

यहाँ प्रशासनिक अंग्रेजी का निम्नलिखित वाक्य है, जो मूलपाठ है और उक्त अनुवाद के अनुसार 'क' के स्तर पर है–

(2) It becomes very inconvenient to move to the section officer's table along with all the relevant papers a number of times during the day in connection with the above mentioned work-

अनुवाद की प्रक्रिया

(1) one moves to the section officer's table-

(2) one moves to the section officer's table, with all the relevant papers-

(3) one moves to the section officer's table, with all the relevant papers, a number of times during the day-

(4) one moves to the section officer's table with all the relevant papers, a number of times during the day, in connection will above mentioned work-

चित्र में इस वाक्य का विश्लेषण दो खण्डों में किया गया है। पहले खण्ड (अ) में इसे दो भागों में विभक्त किया गया है–उच्चतर वाक्य तथा निम्नतर वाक्य, जिन्हें स्थूल रूप से वाक्य रचना की परम्परागत कोटियों–मुख्य उपवाक्य और आश्रित उपवाक्यसमकक्ष माना जाता हैं।

दूसरे खण्ड (ब) में दोनों–उच्चतर तथा निम्नतर वाक्यों का विश्लेषण है। उच्चतर वाक्य के तीन अंग हैं, जिनमें पूरक का सम्बन्ध कर्ता से है, वह कर्ता का पूरक है। निम्नतर वाक्य में It का पूरक है to move और वह कर्ता के स्थान पर आने के कारण संज्ञापदबन्ध (=संप) है, क्योंकि कर्ता कोई संप ही हो सकता है। यह संप एक वाक्य से व्युत्पन्न है जिसकी आधारभूत संरचना में कर्ता, क्रिया तथा तीन क्रियाविशेषकों की शृंखला दिखाई पड़ती है (चित्र में इसे स्पष्ट किया गया है)। इस आधारभूत, निम्नतर वाक्य की संरचना का स्पष्टीकरण (1) से (4) पर्यन्त के उपवाक्यों में हुआ है। इसमें क्रियाविशेषकों का क्रमिक संयोजन स्पष्ट किया गया है। चित्र में प्रदर्शित नाइडा के मतानुसार यह प्रक्रिया का 'य' स्तर है।

तत्पश्चात् प्रत्यक्ष तथा परोक्ष अनुवाद प्रक्रिया प्रारूपों की तुलना की जाती है। प्रत्यक्ष प्रक्रिया प्रारूप के अनुसार उपर्युक्त वाक्य के निम्नलिखित अनुवाद किए जा सकते हैं (इन्हें 'र' स्तर पर माना जा सकता है)–

'उपर्युक्त कार्य के सम्बन्ध में सभी सम्बन्धित पत्रों को लेकर अनुभाग अधिकारी के पास दिन में अनेक बार जाना असुविधाजनक रहता है' अथवा 'यह असुविधाजनक है कि उपर्युक्त कार्य के सम्बन्ध में सभी सम्बन्धित पत्रों को लेकर अनुभाग अधिकारी के पास दिन में अनेक बार जाया जाए।' 'य' से 'र' पर आना संक्रमण का सोपान है, जिस पर मूलपाठ तथा लक्ष्यभाषा पाठ के मध्य ताल-मेल बैठाने के प्रयत्न के चिह्न भी मलते हैं। परन्तु परोक्ष प्रक्रिया प्रारूप के अनुसार अनुवादक उपर्युक्त विश्लेषण की विधि का उपयोग करते हैं, और तदनुसार प्रस्तुत वाक्य का उपयुक्त अनुवाद इस प्रकार हो सकता है -'उपर्युक्त काम के सम्बन्ध में सारे सम्बन्धित पत्रों के साथ अनुभाग अधिकारी के पास, जो दिन में कई बार जाना पड़ता है, उसमें बड़ी असुविधा होती है।' यह वाक्य 'ख' स्तर पर है तथा पुनर्गठन के सोपान से सम्बन्धित है। उक्त अनुवाद में क्रियाविशेषकों का संयोजन और मूलपाठ के निम्नतर वाक्य की पदबन्धात्मक संरचना–to move to the section officer's table–के स्थान पर अनुवाद में क्रियाविशेषण उपवाक्य की संरचना–'अनुभाग अधिकारी के पास जो दिन में कई बार जाना पड़ता है' का प्रयोग, ये दो बिन्दु ध्यान देने योग्य हैं, यह बात अनुवादक या अनुवाद प्रशिक्षणार्थी को स्पष्टता के लिये समझाई जाती है। फलस्वरूप, अनुवाद में स्पष्टता और स्वाभाविकता की निष्पत्ति की अपेक्षा होती है। साथ ही, मूलपाठ में मुख्य उपवाक्य (उच्चतर वाक्य) पर अर्थ की दृष्टि से जो बल अभीष्ट है, वह भी सुरक्षित रहता है।

इन दोनों वाक्यों का अनुवाद तथा विश्लेषण, मुख्य रूप से विश्लेषण की तकनीक तथा उसकी उपयोगिता के स्पष्टीकरण के लिए द्वारा किया गया है। इन दोनों में भाषाभेद तथा भाषा संरचना की अपनी विशेषताएँ हैं, जिन्हें अनुवाद-प्रशिक्षणार्थीओं को सैद्धान्तिक तथा प्रणालीवैज्ञानिक भूमिका पर समझाया जाता है और अनुवाद प्रक्रिया तथा अनुदित पाठ की उपयुक्तता की जानकारी के प्रति उसमें आत्मविश्वास की भावना का विकास हो सकता है, जो सफल अनुवादक बनने के लिए अपेक्षित माना जाता है।

न्यूमार्क का चिन्तन

न्यूमार्क (1976) के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया का प्रारूप निम्नलिखित आरेख के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है–

न्यूमार्क आरेख

नाइडा और न्यूमार्क द्वारा प्रस्तावित प्रक्रिया का विहंगावलोकन करने से पता चला है कि दोनों की अनुवाद-प्रक्रिया सम्बन्धी धारणा में कोई मौलिक अन्तर नहीं। बाइबिल अनुवादक होने के कारण नाइडा की दृष्टि प्राचीन पाठ के अनुवाद की समस्याओं से अधिक बँधी दिखी, अत: वे विश्लेषण, संक्रमण तथा पुनर्गठन के सोपानों की कल्पना करते हैं। प्राचीन रचना होने के कारण बाइबिल की भाषा में अर्थग्रहण की समस्या भाषा की व्याकरणिक संरचना से अधिक जुड़ी हुई है। अत: नाइडा के अनुवाद सम्बन्धी भाषा सिद्धान्त में व्याकरण को विशेष महत्त्व का स्थान प्राप्त होता है। व्याकरणिक गठन से सम्बन्धित अर्थग्रहण में 'विश्लेषण' विशेष सहायक माना जाता है, अत: नाइडा ने सोपान का नामकरण भी 'विश्लेषण' किया।

न्यूमार्क की दृष्टि आधुनिक तथा वैविध्यपूर्ण भाषाभेदों के अनुवाद कार्य की समस्याओं से अनुप्राणित मानी जाती है। अत: वे बोधन तथा अभिव्यक्ति के सोपानों की कल्पना करते हैं। परन्तु वे मूलभाषा पाठ को लक्ष्यभाषा पाठ से भी जोड़ते हैं, जिससे दोनों पाठों का अनुवाद-सम्बन्ध तुलना तथा व्यतिरेक के सन्दर्भ में स्पष्ट हो सके। न्यूमार्क भी बोधन के लिए विशिष्ट भाषा सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, जिसमें वे शब्दार्थविज्ञान को केन्द्रीय महत्त्व का स्थान देते हैं। अपने विभिन्न लेखों में उन्होंने (1981) अपनी सैद्धान्तिक स्थापना का विवरण प्रस्तुत किया है। एक उदाहरण के द्वारा उनके प्रारूप को स्पष्ट किया जाता है–

1. मूलभाषा पाठ–Judgment has been reserved

1.1 बोधन (तथा व्याख्या)–Judgment will not be announced immediately-

2. अभिव्यक्ति (तथा पुनस्सर्जन)–निर्णय अभी नहीं सुनाया जाएगा।

2.1 लक्ष्यभाषा पाठ–निर्णय पश्चात् सुनाया जाएगा।

3. शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद–निर्णय–(सुरक्षित) लिया गया है–सुरक्षित।

शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद से जहाँ दोनों भाषाओं के शब्दक्रम का अन्तर स्पष्ट होता है, वहाँ शब्दार्थ स्तर पर दोनों भाषाओं का सम्बन्ध भी प्रकट हो जाता है। अनुवादकों को ज्ञात हो जाता है कि reserved के लिए हिन्दी में 'सुरक्षित' या 'आरक्षित' सही शब्द है, परन्तु Judgement या 'निर्णय' के ऐसे सहप्रयोग में, जैसा कि उपर्युक्त वाक्य में दिखाई देता है, शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद करना उपयुक्त न होगा। इससे यह सैद्धान्तिक भी स्पष्ट हो जाता है कि, अनुवाद को दो भाषाओं के

मध्य का सम्बन्ध कहने की अपेक्षा दो विशिष्ट भाषा भेदों या दो विशिष्ट पाठों के मध्य का सम्बन्ध कहना अधिक उपयुक्त है, जिसमें अनुवाद की इकाई का आकार, सम्बन्धित भाषाभेद या पाठगत सन्देश की प्रकृति से निर्धारित होता है। प्रस्तुत वाक्य में सम्पूर्ण वाक्य ही अनुवाद की इकाई है, क्योंकि इसमें शब्दों का उपयुक्त अनुवाद अन्योन्याश्रय सम्बन्ध आधारित है। अनुवादक यह भी जान जाते हैं कि, उपर्युक्त वाक्य का हिन्दी समाचार में जो 'निर्णय सुरक्षित रख लिया गया है' यह अनुवाद प्रायः दिखाई देता है वह क्यों अस्वभाविक, अनुपयुक्त तथा असम्प्रेषणीय-वत् प्रतीत होता है। शब्दशः अनुवाद की उपर्युक्त प्रवृत्ति का प्रदर्शन करने वाले अनुवादों को 'अनुवादाभास' कहा जाता है।

वस्तुतः अनुवाद की प्रक्रिया में आवृत्ति का तत्त्व होता है, अर्थात् अनुवादक दो बार अनुवाद करते हैं। मूलपाठ के बोधन के लिए मूलभाषा में अनुवाद किया जाता है–No admission ? admission is not allowed; इसी प्रकार लक्ष्यभाषा में सन्देश के पुनर्गठन या अभिव्यक्ति को लक्ष्यभाषा पाठ का आकार देते हुए हम लक्ष्यभाषा में उसका पुनः अनुवाद करते हैं, 'प्रवेश की अनुमति नहीं है' घ 'अन्दर आना मना है'। इस प्रकार अन्यभाषिक अनुवाद में दोनों भाषाओं के स्तर पर समभाषिक अनुवाद की स्थिति आती है। इन्हें क्रमशः बोधनात्मक अनुवाद (डिकोडिंग ट्रांसलेशन) पुनरभिव्यक्तिमूलक अनुवाद (रि-इनकोडिंग ट्रांसलेशन) कहा जाता है।

बोधनात्मक अनुवाद साधन रूप है–मूलपाठ के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। पुनरभिव्यक्तिमूलक अनुवाद साध्य रूप है–वास्तविक अनुदित पाठ। यदि एक अभ्यस्त अनुवादक के यह अर्ध-औपचारिक या अनौपचारिक रूप में होता है, तो अनुवाद-प्रशिक्षणार्थी के लिए इसके औपचारिक प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता और उपयोगिता होती है जिससे वह अनुवाद-प्रक्रिया को (अनुभवस्तर के साथ-साथ) ज्ञान के स्तर पर भी आत्मसात् कर सके।

बाथगेट का चिन्तन

बाथगेट (1980) अपने प्रारूप को संक्रियात्मक प्रारूप कहते हैं, जो अनुवाद कार्य की व्यावहारिक प्रकृति से विशेष मेल खाने के साथ-साथ नाइडा और न्यूमार्क के प्रारूपों से अधिक व्यापक माना जाता है।

इसमें सात सोपानों की कल्पना की गई है, जिनमें से पर्यालोचन के सोपान के अतिरिक्त शेष सर्व में अतिव्याप्ति का अवकाश माना जाता है (जो असंगत

नहीं) परन्तु सैद्धान्तिक स्तर पर इनके अपेक्षाकृत स्वतन्त्र अस्तित्त्व को मान्यता प्रदान की गई है। मूलभाषा पाठ का मूल जानना और तदनुसार अपनी मानसिकता का मूलपाठ से तालमेल बैठाना समन्वयन है। यह सोपान मूलपाठ के सब पक्षों के धूमिल से अवबोधन पर आधारित मानसिक सज्जता का सोपान है, जो अनुवाद कार्य में प्रयुक्त होने की अभिप्रेरणा की व्याख्या करता है तथा अनुवाद की कार्यनीति के निर्धारण के लिए आवश्यक भूमिका निर्माण का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है।

विश्लेषण और बोधन के सोपान (नाइडा और न्यूमार्क-वत्) पूर्ववत् हैं। पारिभाषिक अभिव्यक्तियों के अन्तर्गत बाथगेट उन अंशों को लेते हैं, जो मूलपाठ के सन्देश की निष्पत्ति में अन्य अंशों की तुलना में विशेष महत्त्व के हैं और जिनके अनुवाद पर्यायों के निर्धारण में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता वो मानते है। पुनर्गठन भी पहले के ही समान है। पुनरीक्षण के अन्तर्गत अनुदित पाठ का सम्पूर्ण अन्वेषण आता है। हस्तलेखन या टंकण की त्रुटियों को दूर करने के अतिरिक्त अभिव्यक्ति में व्याकरणनिष्ठता, परिष्करण, श्रुतिमधुरता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, उपयुक्तता, सुरुचि, तथा आधुनिक प्रयोग रूढि की दृष्टि से अनुदित पाठ का आवश्यक संशोधन पुनरीक्षण है। यह कार्य प्रायः अनुवादक से भिन्न व्यक्ति, अनुवादक से यथोचित् सहायता लेते हुए, करता है। यदि स्वयं अनुवादक को यह कार्य करना हो तो अनुवाद कार्य तथा पुनरीक्षण कार्य में समय का इतना व्यवधान अवश्य हो कि अनुवादक अनुवाद कार्य कालीन स्मृति के पाश से मुक्तप्राय होकर अनुदित पाठ के प्रति तटस्थ और आलोचनात्मक दृष्टि अपना सके तथा इस प्रकार अनुवादक से भिन्न पुनरीक्षक के दायित्व का वहन कर सके। पर्यालोचन के सोपान में विषय विशेषज्ञ और अनुवादक के मध्य संवाद के द्वारा अनुदित पाठ की प्रामाणिकता की पुष्टि का प्रावधान है। जिन पाठों की विषयवस्तु प्रामाणिकता की अपेक्षा रखती है–जैसे विधि, प्रकृतिविज्ञान, समाज विज्ञान, प्रौद्योगिकी, आदि–उनमें पर्यलोचन की उपयोगिता स्पष्ट होती है।

एक उदाहरण के द्वारा बाथगेट के प्रारूप को स्पष्ट किया जाता है। मूलभाषा पाठ है किसी ट्रक पर लिखा हुआ सूचना वाक्यांश Public Carrier- इसके अनुवाद की मानसिक सज्जता करते समय अनुवादक को यह स्पष्ट होता है कि, इस वाक्यांश का उद्देश्य जनता को ट्रक की उपलब्धता के विषय में एक विशिष्ट सूचना देना है। इस वाक्यांश के सन्देश में जहाँ प्रभावपरक या सम्बोधनात्मक (श्रोता केन्द्रित) प्रकार्य की सत्ता है, वहाँ सूचनात्मक प्रकार्य भी इस दृष्टि से उपस्थित

है कि, उसका विधिक्षेत्रीय और प्रशासनिक पक्ष है–इन दोनों दृष्टियों से ऐसे ट्रक पर कुछ प्रतिबन्ध लागू होते हैं। अत: कुल मिलाकर यह वाक्यांश सम्प्रेषण केन्द्रित प्रणाली के द्वारा अनुदित होने योग्य है। विश्लेषण के सोपान पर अनुगामी रूपान्तरण के द्वारा अनुवादक इसका बोधनात्मक अनुवाद करते हुए बीजवाक्य या वाक्यांश निर्धारित करते हैं–It carries goods of the public ¾ Carrier of public goods- बोधन के सोपान पर अनुवादक को यह स्पष्ट होता है कि, It can be hired = 'इसे भाड़े पर लिया जा सकता है।' पारिभाषिक अभिव्यक्ति के सोपान पर अनुवादक इसे विधि-प्रशासनिक अभिव्यक्ति के रूप में पहचानते हैं, जिसके सन्देश के अनुवाद को सम्प्रेषणीय बनाते हुए अनुवादक को उसकी विशुद्धता को भी यथोचित् रूप से सुरक्षित रखना है। पुनर्गठन के सोपान पर अनुवादक के सामने इस वाक्यांश के दो अनुवाद हैं–'लोकवाहन' (उत्तर प्रदेश में प्रचलित) और 'भाडे का ट्रक' (बिहार में प्रचलित)। पिछले सोपानों की भूमिका पर अनुवादक के सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि–'लोकवाहन' में सन्देश का वैधानिक पक्ष भले सुरक्षित हो परन्तु यह सम्प्रेषण के उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाता। इस अभिव्यक्ति से साधारण पढ़े-लिखे को यह तुरन्त पता नहीं चलता कि लोकवाहन का उसके लिए क्या उपयोग है। इसको सम्प्रेषणीय बनाने के लिए इसका पुनरभिव्यक्तिमूलक (समभाषिक) अनुवाद अपेक्षित है–'भाड़े का ट्रक'–जिससे जनता को यह स्पष्ट हो जाता है कि, इस ट्रक का उसके लिए क्या उपयोग है। मूल अभिव्यक्ति इतनी छोटी तथा उसकी स्वीकृत अनुवाद 'भाड़े का ट्रक' इतना स्पष्ट है कि, इसके सम्बन्ध में पुनरीक्षण तथा पर्यालोचन के सोपान अपेक्षित नहीं, ऐसा कहा जाता है।

निष्कर्ष

अनुवाद प्रक्रिया के विभिन्न प्रारूपों के विवेचन से निष्कर्षस्वरूप दो बातें स्पष्टत: मानी जाती हैं। पहली, अनुवाद प्रक्रिया एक क्रमिक प्रक्रिया है, जिसमें तीन स्थितियाँ बनती हैं -

(क) अनुवादपूर्व स्थिति–अनुवाद कार्य के सन्दर्भ को समझना। किस पाठसामग्री का, किस उद्देश्य से, किस कोटि के पाठक के लिए, किस माध्यम में, अनुवाद करना है, आदि इसके अन्तर्गत है।

(ख) अनुवाद कार्य की स्थिति–मूलभाषा पाठ का बोधन, संक्रमण, लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति।

(ग) अनुवादोत्तर स्थिति–अनुदित पाठ का पुनरीक्षण–सम्पादन तथा इस प्रकार अन्ततः 'सुरचित' पाठ की निष्पत्ति।

दूसरी बात यह है कि अनुवाद, मूलपाठ के बोधन तथा लक्ष्यभाषा में अभिव्यक्ति, इन दो ध्रुवों के मध्य निरन्तर होते रहने वाली प्रक्रिया है, जो सीधी और प्रत्यक्ष न होकर घुमावदार तथा परोक्ष है। वह मध्यवर्ती स्थिति जिसके जरिए यह प्रक्रिया सम्पन्न होती है, एक वैचारिक संज्ञानात्मक संरचना है, जो मूलपाठ के बोधन (जिसके लिए आवश्यकतानुसार विश्लेषण की सहायता लेनी होती है) से निष्पन्न होती है तथा जिसमें लक्ष्यभाषागत अभिव्यक्ति के भी बीज निहित रहते हैं। यह भाषा विशेष सापेक्ष शब्दों के बन्धन से मुक्त शुद्ध अर्थमयी सत्ता है। इस मध्यवर्ती संरचना का अधिष्ठान अनुवादक का मस्तिष्क होता है।

सांस्कृतिक–संरचनात्मक दृष्टि से अपेक्षाकृत निकट भाषाओं में इस वैचारिक संरचना की सत्ता की चेतना अपेक्षाकृत स्पष्ट होती है। वैचारिक स्तर पर स्थित होने के कारण इसकी भौतिक सत्ता नहीं होती–भाषिक अभिव्यक्ति के स्तर पर यह यथातथ रूप में एक यथार्थ का रूप ग्रहण नहीं करती, यदि अनुवादक भाषिक स्तर पर इसे अभिव्यक्त भी करते हैं, तो केवल सैद्धान्तिक आवश्यकता की दृष्टि से, जिसमें विश्लेषण के रूप में कुछ वाक्यों तथा वाक्यांशों का पुनर्लेखन अन्तर्भूत होता है। परन्तु यह भी सत्य है कि यही वह संरचना है, जो अनुदित होकर लक्ष्यभाषा पाठ में परिणत होती है। इस बात को अन्य शब्दो में भी कहा जाता है कि, अनुवादक मूलभाषापाठ की वैचारिक संरचना का अनुवाद करता है, परन्तु अनुवाद की प्रक्रिया की यह आन्तरिक विशेषता है कि जो सरंचना अन्ततोगत्वा लक्ष्य भाषा में अनुदित होती है, वह है मध्यवर्ती वैचारिक संरचना जो मूलपाठ की वैचारिक संरचना के अनुवादक कृत बोध से निष्पन्न है !

अनुवाद प्रक्रिया के इस निरूपण से सैद्धान्तिक स्तर पर दो बातों का स्पष्टीकरण होता है। एक, मूलभाषापाठ के अनुवादकीय बोध से निष्पन्न वैचारिक संरचना ही क्योंकि लक्ष्यभाषापाठ का रूप ग्रहण करती है, अतः अनुवादक भेद से अनुवाद भेद दिखाई पड़ता है। दूसरे, उपर्युक्त वैचारिक संरचना विशिष्ट भाषा निरपेक्ष (या उभय भाषा सापेक्ष) होती है–उसमें दोनों भाषाओं (मूल तथा लक्ष्य) के माध्यम से यथासम्भव समान तथा निकटतम रूप में अभिव्यक्त होने की संभाव्यता होती है। मूलभाषापाठ का सन्देश जो अनुदित हो जाता है उसकी यह व्याख्या है।

अनुवाद प्रक्रिया की प्रकृति

अनुवाद प्रक्रिया के उपर्युक्त विवरण के आधार पर अनुवाद प्रक्रिया की प्रकृति के परस्पर सम्बद्ध तीन मूलतत्त्व निर्धारित किए जाते हैं–सममूल्यता, द्वन्द्वात्मकता, और अनुवाद परिवृत्ति।

सममूल्यता

अनुवाद कार्य में अनुवादक मूलभाषापाठ के लक्ष्यभाषागत पर्यायों से जिस समानता की बात करता है, वह मूल्य (वैल्यू) की दृष्टि से होती है। यह मूल्य का तत्त्व भाषा के शब्दार्थ तथा व्याकरण के तथ्यों तक सीमित नहीं होता, अपितु प्रायः उनसे कुछ अधिक तथा भाषाप्रयोग के सन्दर्भ से (आन्तरिक और बाह्य दोनों) से उद्भूत होता है। वस्तुतः यह एक पाठसंकेतवैज्ञानिक संकल्पना है तथा सन्देश स्तर की समानता से जुड़ी है। भाषा के भाषावैज्ञानिक विश्लेषण में अर्थ के स्तर पर पर्यायत्ता या अन्ययांतर सम्बन्ध पर आधारित होते हुए भी सममूल्यता सन्देश का गुण है, जिसमें पाठ का उसकी समग्रता में ग्रहण होता है। यह अवश्य है कि सममूल्यता के निर्धारण में पाठ्संकेतविज्ञान के तीन घटकों के अधिक्रम का योगदान रहता है–वाक्यस्तरीय सममूल्यता पर अर्थस्तरीय सममूल्यता को प्राधान्य मिलता है तथा अर्थस्तरीय सममूल्यता पर सन्दर्भस्तरीय सममूल्यता को मान्यता दी जाती है। दूसरे शब्दों में, यदि दोनों भाषाओं में वाक्यरचना के स्तर पर सममूल्यता स्थापित न हो तो अर्थस्तरीय सममूल्यता निर्धारित करनी होगी, और यदि अर्थस्तरीय सममूल्यता निर्धारित न हो सके, तो सन्दर्भस्तरीय सममूल्यता को मान्यता देनी होगी। उदाहरण के लिए, The meeting was chaired by X' (कर्मवाच्य) के हिन्दी अनुवाद "क्ष ने बैठक की अध्यक्षता की' (कर्तृवाच्य) में सममूल्यता का निर्धारण वाक्य स्तर से ऊपर अर्थ स्तर पर हुआ है, क्योंकि दोनों की वाक्यरचनाओं में वाच्य की दृष्टि से असमानता है। इसी प्रकार, What time is it? के हिन्दी अनुवाद 'कितने बजे हैं ?' (न कि समय क्या है, जो हिन्दी का सहज प्रयोग न होकर अंग्रेजी का शाब्दिक अनुवाद ही अधिक प्रतीत होता है) के बीच सममूल्यता का निर्धारण अर्थस्तर से ऊपर सन्दर्भ–समय पूछना, जो एक दैनिक सामाजिक व्यवहार का सन्दर्भ है–के स्तर पर हुआ है। इस प्रकार सममूल्यता की स्थिति पाठसंकेत के संघटनात्मक पक्ष में होने के साथ-साथ सम्प्रेषणात्मक पक्ष में भी होती है, जिसमें सम्प्रेषणात्मक पक्ष का स्थान संघटनात्मक पक्ष से ऊपर होता है।

सममूल्यता को पाठसंकेतवैज्ञानिक संकल्पना मानने से व्यवहार में जो छूट मिलती है, वह सम्प्रेषण की मान्यता पर आधारित अनुवाद कार्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ है। मूलभाषा का पाठ किस भाषाभेद (प्रयुक्ति) से सम्बन्धित है, उसका उद्दिष्ट/सम्भावित पाठक कौन है (उसका शैक्षिक-सांस्कृतिक स्तर क्या है), अनुवाद करने का उद्देश्य क्या है—इन तथ्यों के आधार पर अनुवाद सममूल्यों का निर्धारण होता है। इस प्रक्रिया में वे यदि कभी शब्दार्थगत पर्यायों तथा गठनात्मक संरचनाओं की सम्वादिता से कभी-कभी भिन्न हो सकते हैं, तो कुछ प्रसंगों में उनसे अभिन्न, अत एव तद्रूप होने की सम्भावना को नकारा भी नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि भाषाएँ संरचना, शैलीय प्रतिमान आदि की दृष्टि से अंशत: असमान होती हैं और यह भी ठीक है कि वे अंशत: समान भी होती हैं, मुख्य बात यह है कि उन समान तथा असमान बिन्दुओं को पहचाना जाए। सम्प्रेषण के सन्दर्भ में समानता एक लचीली स्थिति बन जाती है। अनुवाद में मूल्यगत समानता ही उपलब्ध करनी होती है। अनुवादगत सममूल्यता लक्ष्य भाषापाठ की दृष्टि से यथासम्भव स्वाभाविक तथा मूलभाषापाठ के यथासम्भव निकटतम होती है। इसका एक उल्लेखनीय गुण है। गत्यात्मकता, जिसका तात्पर्य यह है कि अनुवाद के पाठक की अनुवाद सममूल्यों के प्रति वही स्वीकार्यता है, जो मूल के पाठकों की मूल की सम्बद्ध अभिव्यक्तियों के प्रति है। स्वीकार्यता या प्रतिक्रिया की यह समानता उभयपक्षीय होने से गतिशील है, और यही अनुवाद सममूल्यता की गत्यात्मकता है।

द्वन्द्वात्मकता

अनुवाद का सम्बन्ध दो स्थितियों के साथ है। इसे अनुवादक द्वन्द्वात्मकता कहते हैं। यह द्वन्द्वात्मकता केवल भाषा के आयाम तक सीमित नहीं, अपितु समस्त अनुवाद परिस्थिति में व्याप्त है। इसकी मूल विशेषता है सन्तुलन, सामंजस्य या समझौता। एक प्रक्रिया, सम्बन्ध, और निष्पत्ति के रूप में अनुवाद की द्वन्द्वात्मकता के विभिन्न आयामों को इस प्रकार निरूपित किया जाता है—

(क) अनुवाद का बाह्य सन्दर्भ

1. अनुवाद में, मूल लेखक तथा दूसरे पाठक (अनुवाद का पाठक) के बीच सम्पर्क स्थापित होता है। मूल लेखक और दूसरे पाठक के बीच देश या काल या दोनों की दृष्टि से दूरी या निकटता से द्वन्द्वात्मकता के स्वरूप

में अन्तर आता है। स्थान की दृष्टि से मूल लेखक तथा पाठक दोनों ही विदेशी हो सकते हैं, स्वदेशी हो सकते हैं, या इनमें से एक विदेशी और एक स्वदेशी हो सकता है। काल की दृष्टि से दोनों अतीतकालीन हो सकते हैं, दोनों समकालीन हो सकते हैं, या लेखक अतीत का और पाठक समसामयिक हो सकता है। इन सब स्थितियों से अनुवाद प्रक्रिया प्रभावित होती है।

2. अनुवाद में, मूल लेखक और अनुवादक में सन्तुलन अपेक्षित होता है। अनुवादक को मूल लेखक की चिन्तन पद्धति और अभिव्यक्ति पद्धति के साथ अपनी चिन्तन पद्धति तथा अभिव्यक्ति पद्धति का सामंजस्य स्थापित करना होता है।
3. अनुवाद में, अनुवादक तथा अनुवाद के पाठक के मध्य अनुबन्ध होता है। अनुवादक का अनुवाद करने का उद्देश्य वही हो जो अनुवाद के पाठक का अनुवाद पढ़ने के सम्बन्ध में है। अनुवादक के लिए आवश्यक है कि, वह अपने भाषा प्रयोग को अनुवाद के सम्भावित पाठक की बोधनक्षमता के अनुसार ढाले।
4. अनुवाद में, अनुवादक की व्यक्तिगत रुचि (अनुवाद कार्य तथा अनुवाद सामग्री दोनों की दृष्टि से) तथा उसकी व्यावसायिक आवश्यकता का समन्वय अपेक्षित है।
5. अपनी प्रकृति की दृष्टि से पूर्ण अनुवाद असम्भव है तथा अनुदित रचना मूल रचना के पूर्णतया समान नहीं हो सकती, परन्तु सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक-आर्थिक दृष्टि से अनुवाद कार्य न केवल महत्त्वपूर्ण है अपितु आवश्यक और सुसंगत भी। एक सफल अनुवाद में उक्त दोनों स्थितियों का सन्तुलन होता है।

(ख) अनुवाद का आन्तरिक सन्दर्भ

1. अनुवाद में, दो भाषाओं के मध्य सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में, एक और भाषा-संरचना (सन्दर्भरहित) तथा भाषा-प्रयोग (सन्दर्भसहित) के मध्य द्वन्दात्मक सम्बन्ध स्पष्ट होता है, तो दूसरी ओर भाषा-प्रयोग के सामान्य पक्ष और विशिष्ट पक्ष के मध्य सन्तुलन की स्थिति उभरकर सामने आती है।
2. अनुवाद में, दो भाषाओं की विशिष्ट प्रयुक्तियों के दो विशिष्ट पाठों के मध्य विभिन्न स्तरों और आयामों पर समायोजन अपेक्षित होता है। ये

स्तर/आयाम हैं–व्याकरणिक गठन, शब्दकोश के स्तर, शब्दक्रम की व्यवस्था, सहप्रयोग, शब्दार्थ, व्यवस्था, भाषाशैली की रूढ़ियाँ, भाषा-प्रकार्य, पाठ प्रकार, साहित्यिक सामाजिक-सांस्कृतिक रूढ़ियाँ।

3. गुणात्मक दृष्टि से अनुवाद में विविध प्रकार के सन्तुलन दिखाई देते हैं। किसी भी पाठ का सब स्तरों/आयामों पर पूर्ण अनुवाद असम्भव है, परन्तु सब प्रकार के पाठों का अनुवाद सम्भव है। एक सफल अनुवाद में निम्नलिखित युग्मों के घटक सन्तुलन की स्थिति में दिखाई देते हैं–विशुद्धता और सम्प्रेषणीयता, रूपनिष्ठता और प्रकार्यात्मकता, शाब्दिकता और स्वतन्त्रता, मूलनिष्ठता और सुन्दरता (रोचकता), और उद्रिक्तता तथा सामासिकता। तदनुसार एक सफल अनुवाद जितना सम्भव हो, उतना विशुद्ध, रूपनिष्ठ, शाब्दिक, और मूलनिष्ठ होता है तथा जितना आवश्यक हो उतना सम्प्रेषणीय प्रकार्यात्मक, स्वतन्त्र, और सुन्दर (रोचक) होता है। इसी प्रकार एक सफल अनुवाद में उद्रिक्तता (सूचना की दृष्टि से मूलपाठ की अपेक्षा लम्बा होना) की प्रवृत्ति है, परन्तु लक्ष्यभाषा प्रयोग के कौशल की दृष्टि से उसका संक्षिप्त होना वांछित होता है।

4. कार्यप्रणाली की दृष्टि से, क्षतिपूर्ति के नियम के अनुसार अनुवाद में मुख्यतया निम्नलिखित युग्मों के घटकों में सह-अस्तित्त्व दिखाई देता है–छूटना-जुड़ना (सूचना के स्तर पर) और आलंकारिकता-सुबोधता (अभिव्यक्ति के स्तर पर)। लक्ष्यभाषा में व्यक्त सन्देश के सौष्ठवपूर्ण पुनर्गठन के लिए मूल पाठ में से कुछ छूटना तथा लक्ष्यभाषा पाठ में कुछ जुड़ना अवश्यम्भावी है। यदि कुछ छूटेगा तो कुछ जुड़ेगा भी, विशेष बात यह है कि न छूटने लायक यथासम्भव छूटे नहीं तथा न जुड़ने लायक जुड़े नहीं। मूलपाठ की कुछ आलंकारिक अभिव्यक्तियाँ, जैसे रूपक, अनुवाद में जब लक्ष्यभाषा में संक्रान्त नहीं हो पातीं तो अनलंकृत अभिव्यक्तियों का प्रयोग करना होता है–अलंकार की प्रभावोत्पादकता का स्थान सामान्य कथन की सुबोधता ले लेती है। यही बात विपरीत ढंग से भी हो सकती है–मूल की सुबोध अभिव्यक्ति के लिए लक्ष्यभाषा में एक अलंकृत अभिव्यक्ति का चयन कर लिया जाता है, परन्तु वह लक्ष्यभाषा की बहुप्रचलित रूढि हो जो प्रभावोत्पादक होने के साथ-साथ सुबोध भी हो ये अत्यावश्यक होता है।

द्वन्द्वात्मकता के विभिन्न आयामों के विवेचन से अनुवादसापेक्ष सम्प्रेषण की प्रकृति पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। यह सन्तुलन जितना स्वीकार्य होता है, अनुवाद उतना ही सफल प्रतीत होता है।

अनुवाद परिवृत्ति

अनुवाद कार्य में अनुवाद परिवृत्ति एक अवश्यम्भावी तथा वांछनीय एवं स्वाभाविक स्थिति है। परिवृत्ति से अभिप्राय है दोनों भाषाओं के मध्य विभिन्न स्तरीय सम्वादिता से विचलन। विचलन की दो स्थितियाँ हो सकती हैं–अनिवार्य तथा ऐच्छिक। अनिवार्य विचलन भाषा की शब्दार्थगत एवं व्याकरणिक संरचना का अन्तरंग है, उदाहरण के लिए मराठी नपुंसक लिंग संज्ञा हिन्दी में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग संज्ञा के रूप में ही अनुदित होगी। कुछ इसी प्रकार की बात अंग्रेजी वाक्य I have fever के हिन्दी अनुवाद 'मुझे ज्वर है' के लिए कही जा सकती है, क्योंकि 'मैं ज्वर रखता हूँ' हिन्दी में सम्प्रेषणात्मक तथ्य के रूप में स्वीकृत नहीं। ऐच्छिक विचलन में विकल्प की व्यवस्था होती है। अंग्रेजी 'The rule states that' को हिन्दी में दो रूपों में कहा जा सकता है–"इस नियम में यह व्यवस्था है कि, कहा गया है कि' या 'यह नियम कहता है कि '। इन दोनों में पहला वाक्य हिन्दी में स्वाभाविक प्रतीत होता है, उतना दूसरा नहीं यद्यपि अब यह भी अधिक प्रचलित माना जाता है। एक उपयुक्त अनुवाद में पहले अनुवाद को प्राथमिकता मिलेगी। अनुवाद के सन्दर्भ में ऐच्छिक विचलन की विशेष प्रासंगिकता इस दृष्टि से है कि, इससे अनुवाद को स्वाभाविक बनाने में सहायता मिलती है। अनिवार्य विचलन, तुलनात्मक–व्यतिरेकी भाषा विश्लेषण का एक सामान्य तथ्य है, जिसमें अनुवाद का प्रयोग एक उपकरण के रूप में किया जाता है।

अनुवाद-परिवृत्ति की संकल्पना

अनुवाद–परिवृत्ति की संकल्पना का सम्बन्ध प्रधान रूप से व्याकरण के साथ माना गया है। यह दो रूपों में दिखाई देता है–व्याकरणिक शब्दों की परिवृत्ति तथा व्याकरणिक कोटियों की परिवृत्ति।

व्याकरणिक शब्दों की परिवृत्ति

व्याकरणिक शब्दों की परिवृत्ति का एक उदाहरण उपर्युक्त वाक्ययुग्म में दिखाई देता है। अंग्रेजी का निर्धारक या निश्चयत्मक आर्टिकल जीम हिन्दी में

(सार्वनामिक) संकेतवाचक विशेषण 'यह-इस' हो गया है, यद्यपि यह अनिवार्य विचलन के अन्तर्गत है।

व्याकरणिक कोटियों की परिवृत्ति

व्याकरणिक कोटियों की परिवृत्ति में अनुवादक दो भेदों की ओर विशेष ध्यान देते हैं–व्याकरणिक कोटियों की परिवृत्ति तथा श्रेणी-परिवृत्ति। वाक्य में व्याकरणिक कोटियों की विन्यासक्रमात्मक संरचना में परिवृत्ति का उदाहरण है अंग्रेजी के सकर्मक वाक्य में प्रकार्यात्मक कोटियों के क्रम, कर्ता, क्रिया, कर्म, का हिन्दी में बदलकर कर्ता, कर्म, क्रिया हो जाना। यह परिवृत्ति के अनिवार्य विचलन के अन्तर्गत है, अत: व्यतिरेक है। श्रेणी परिवृत्ति का प्रसिद्ध उदाहरण है मूलभाषा के पदबन्ध का लक्ष्यभाषा में उपवाक्य हो जाना या उपवाक्य का पदबन्ध हो जाना। अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद में इस प्रकार की परिवृत्ति के उदाहरण प्राय: मिल जाते हैं -भारतीय रेलों में सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशावली के अंग्रेजी पाठ का शीर्षक है–'Travel safely' (उपवाक्य) और हिन्दी पाठ का शीर्षक है–'सुरक्षा के उपाय' (पदबन्ध), जबकि अंग्रेजी में भी एक पदबन्ध हो सकता है–'Measures of safety-' इसी प्रकार पदस्तरीय, विशेषत: समस्त पद के स्तर की, इकाई का एक पदबन्ध के रूप में अनुदित होने के उदाहरण भी प्राय: मिल जाते हैं–अंग्रेजी "She is a good natured girl" = 'वह अच्छे स्वभाव की लड़की है' (वह एक सुशील लड़की है' में परिवृत्ति नहीं है)। श्रेणी परिवृत्ति के दोनों उदाहरण ऐच्छिक विचलन के अन्तर्गत हैं। अंग्रेजी से हिन्दी के अनुवाद के सन्दर्भ में, विशेषतया प्रशासनिक पाठों के अनुवाद के सन्दर्भ में, पाई जाने वाली प्रमुख अनुवाद परिवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–(1) अं. निर्जीव कर्ता युक्त सकर्मक संरचना = हि. अकर्मकीकृत संरचना–

The rule states that = इस नियम में यह व्यवस्था है कि।

(2) अं. कर्मवाच्य/कर्तृवाच्य = हि. कर्तृवाच्य/कर्मवाच्य :

The meeting was chaired by X = क्ष ने बैठक की अध्यक्षता की।

I cannot drink milk now = मुझसे अब दूध नहीं पिया जाएगा।

(3) अं0 पूर्वसर्गयुक्तध्वर्तमानकालिक कृदन्त पदबन्ध = हि. उपवाक्य रू

(They are further requested) to issue instructions = (उनसे अनुरोध है कि) वे अनुदेश जारी करें।

(4) अं. उपवाक्य = हि. पदबन्ध रू

(This may be kept pending) till a decision is taken on the main file = मुख्य मिसिल पर निर्णय होने तक (इसे रोक रखिए)।

अनुवादक एवं इंटरप्रेटर

अनुवाद एक लिखित विधा है, जिसे करने के लिए कई साधनों की जरूरत पड़ती है। शब्दकोश, संदर्भ ग्रंथ, विषय विशेषज्ञ या मार्गदर्शक की मदद से अनुवाद कार्य को पूरा किया जाता है। इसकी कोई समय सीमा नहीं होती। अपनी इच्छानुसार अनुवादक इसे कई बार शुद्धीकरण के बाद पूरा कर सकता है। इंटरप्रेटशन यानी भाषांतरण एक भाषा का दूसरी भाषा में मौखिक रूपांतरण है। इसे करने वाला इंटरप्रेटर कहलाता है। इंटरप्रेटर का काम तात्कालिक है। वह किसी भाषा को सुन कर, समझ कर दूसरी भाषा में तुरंत उसका मौखिक तौर पर रूपांतरण करता है। इसे मूल भाषा के साथ मौखिक तौर पर आधा मिनट पीछे रहते हुए किया जाता है। बहुत कुछ यांत्रिक ढंग का भी होता है।

अनुवाद के प्रकार

साहित्यिक अनुवाद,
तकनीकी अनुवाद,
चिकित्सकीय अनुवाद,
अनुवाद की तकनीकें,
मशीनी अनुवाद।

कम्प्यूटर और साफ्टवेयर की क्षमताओं में अत्यधिक विकास के कारण आजकल अनेक भाषाओं का दूसरी भाषाओं में मशीनी अनुवाद सम्भव हो गया है। यद्यपि इन अनुवादों की गुणवता अभी भी संतोषप्रद नहीं कही जा सकती, तथापि अपने इस रूप में भी यह मशीनी अनुवाद कई अर्थों में और अनेक दृष्टियों से बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। जहाँ कोई चारा न हो, वहाँ मशीनी अनुवाद से कुछ न कुछ अर्थ तो समझ में आ ही जाता है।

अनुवाद के प्रकार और प्रकृति

अनुवाद की प्रकृति (अर्थात् अनुवाद-क्रिया कला के अन्तर्गत आता है या विज्ञान के या शिल्प के) के साथ-साथ अनुवाद के विविध प्रकार एवं प्रभेद की भी चर्चा की जा रही है।

अनुवाद के प्रकार

गद्य-पद्य पर आधारित प्रभेद

गद्यानुवाद–गद्यानुवाद सामान्यत: गद्य में किए जाने वाले अनुवाद को कहते हैं। किसी भी गद्य रचना का गद्य में ही किया जाने वाला अनुवाद गद्यानुवाद कहलाता है। किन्तु कुछ विशेष कृतियों का पद्य से गद्य में भी अनुवाद किया जाता है। जैसे 'मेघदूतम्' का हिन्दी कवि **नागार्जुन** द्वारा किया गद्यानुवाद।

पद्यानुवाद–पद्य का पद्य में ही किया गया अनुवाद पद्यानुवाद की श्रेणी में आता है। दुनिया भर में विभिन्न भाषाओं में लिखे गए काव्यों एवं महाकाव्यों के अनुवादों की संख्या अत्यन्त विशाल है। **इलियट** के 'वेस्टलैण्ड', कालिदास के 'मेघदूतम्' एवं 'कुमारसंभवम्' तथा **टैगोर** की 'गीतांजलि' का विभिन्न भाषाओं में पद्यानुवाद किया गया है। साधारणत: पद्यानुवाद करते समयस्रोत-भाषा में व्यवहृत छन्दों का ही लक्ष्य-भाषा में व्यवहार किया जाता है।

छन्दमुक्तानुवाद–इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक को स्रोत-भाषा में व्यवहार किए गए छन्दों को अपनाने की बाध्यता नहीं होती। अनुवादक विषयके अनुरूप लक्ष्य-भाषा का कोई भी छन्द चुन सकता है। साहित्य में ऐसे अनुवाद विपुल संख्या में उपलब्ध हैं।

साहित्य विधा पर आधारित प्रभेद

काव्यानुवाद–स्रोत-भाषा में लिखे गए काव्य का लक्ष्य-भाषा में रूपान्तरण काव्यानुवाद कहलाता है। यह आवश्यकतानुसार गद्य, पद्य एवं मुक्त छन्द में किया जा सकता है। होमर के महाकाव्य 'इलियड' एवंकालिदास के 'मेघदूतम्' एवं 'ऋतुसंहार' इसके उदाहरण हैं।

नाट्यानुवाद–किसी भी नाट्य कृति का नाटक के रूप में ही अनुवाद करना नाट्यानुवाद कहलाता है। नाटक रंगमंचीय आवश्यकताओं एवं दर्शकों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है। अत: इसके अनुवाद के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। संस्कृत के नाटकों के हिन्दी अनुवाद तथा शेक्सपियर के नाटकों के अन्य भाषाओं में किए गए अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

कथा अनुवाद–कथा अनुवाद के अन्तर्गत कहानियों एवं उपन्यासों का कहानियों एवं उपन्यासों के रूप में ही अनुवाद किया जाता है। विश्व प्रसिद्ध उपन्यासों एवं कहानियों के अनुवाद काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय हैं। **मोपासाँ**

एवं **प्रेमचन्द** की कहानियों का दुनिया की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ है। रूसी उपन्यास 'माँ', अंग्रेजी उपन्यास 'लैडी चैटर्ली का प्रेमी' तथा हिन्दी के 'गोदान', 'त्यागपत्र' तथा 'नदी के द्वीप' के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

अन्य साहित्यिक विधाओं के अनुवाद–अन्य साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत रेखाचित्र, निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी एवं आत्मकथा आदि के अनुवाद आते हैं। पं. जवाहर लाल नेहरू की कृति 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया तथा **महात्मा गांधी** एवं **हरिवंशराय बच्चन** की आत्मकथाओं के विभिन्न भाषाओंमें किए गए अनुवाद इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

विषय आधारित प्रभेद

ललित साहित्यानुवाद–ललित साहित्यानुवाद के अन्तर्गत साहित्यिक विधाओं को रखा जाता है। कविता, ललित निबन्ध, कहानी, डायरी, आत्मकथा, उपन्यास आदि। इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

धार्मिक-पौराणिक साहित्यानुवाद–जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हैधार्मिक–पौराणिक साहित्यानुवाद में विभिन्न धर्मों के मानक धर्मग्रंथों, गीता,भागवत, कुरआन, बाइबिल आदि का अनुवाद किया जाता है। वेद, उपनिषद आदि भी इसके साथ शामिल हैं।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी सामग्री के अनुवाद–वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद में विषय मुख्य है और शैली गौण। साहित्यिक अनुवाद में प्रायः 'क्यों' से ज्यादा 'कैसे' का महत्त्व होता है, जबकि वैज्ञानिक अनुवाद में 'कैसे' से ज्यादा 'क्या' का महत्त्व होता है। इसमें भावानुवाद त्याज्य है और प्रायः शब्दानुवाद अपेक्षित है। इसमें पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अपेक्षित है, ध्वन्यात्मक या व्यंग्यात्मक शब्दावली का नहीं। कुल मिलाकर इस प्रकार के अनुवाद में सूचना, संकल्पना तथा तथ्य महत्त्वपूर्ण होते हैं। सबसे जरूरी बात यह कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद में अनुवादक विषय का सम्यक्‌जानकार हो और साथ ही प्रशिक्षित भी, तभी वह अनुवाद के साथ न्याय कर पाएगा।

विधि का अनुवाद–इसमें एक भाषा की विधि सम्बन्धी अर्थात् कानून की सामग्री को दूसरी भाषा में अनुवाद किया जाता है। कानून की किताबें,अदालत के मुकद्दमे, तत्सम्बन्धी विभिन्न आवेदन–पत्र, कानूनी संहिताएँ,नियम–अधिनियम, संशोधित अधिनियम आदि कानूनी अनुवाद के प्रमुख हिस्से हैं। इस प्रकार के अनुवाद में प्रत्येक शब्द का अपना विशेष महत्त्व होता है। इसमें भावार्थ नहीं

शब्दार्थ महत्त्वपूर्ण होता है। इसके प्रत्येक शब्द का अर्थस्पष्ट होता है। एक शब्द का एक ही अर्थ अपेक्षित होता है। इस प्रकार के अनुवाद की भाषा पूरी तरह तकनीकी प्रकृति की होती है।

प्रशासनिक अनुवाद–प्रशासनिक अनुवाद से तात्पर्य है वह अनुवाद जिसमें एक भाषा की प्रशासन सम्बन्धी सामग्री को दूसरी भाषा में परिवर्तित किया जाता है। प्रशासनिक अनुवाद का सम्बन्ध सरकारी कार्यालयों से होने के कारण इसे कार्यालयी अनुवाद भी कहा जाता है। इस अनुवाद के अन्तर्गत प्रशासन के सभी कागजात, सरकारी पत्र, परिपत्र, सूचनाएँ-अधिसूचनाएँ,नियम-अधिनियम, प्रेस विज्ञप्तियाँ आदि आते हैं। केन्द्र सरकार, राज्य सरकार,संसद, विभिन्न मंत्रालय आदि में द्विभाषी तथा बहुभाषी स्थिति के कारण प्रशासनिक अनुवाद के बिना काम नहीं चलता। यहाँ भी पारिभाषिक शब्दावली का सहारा लिया जाता है। प्रशासनिक अनुवाद में 'कथ्य' अर्थात् 'कही गई बात' महत्त्वपूर्ण होती है।

मानविकी एवं समाजशास्त्र का अनुवाद–मानविकी एवं समाजशास्त्र से सम्बन्धित सामग्रियों के अनुवाद के लिए अनुवादक का विषय ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इस तरह का अनुवाद अनुसंधान, सर्वेक्षण, परियोजना एवं शैक्षिक आवश्यकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है। इस तरह के अनुवाद में सरलता एवं स्पष्टता अपेक्षित होती है।

संचार माध्यमों की सामग्री का अनुवाद–वर्तमान युग के संचार माध्यमों ने मानव-विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। संचार माध्यमों के जरिए ही वह देश-विदेश और समग्र दुनिया की जानकारी हासिल करता है। किन्तु विविध देशों में विविध भाषाएँ होने के कारण संचार माध्यम की सामग्री का अनुवाद महत्त्वपूर्ण बना हुआ है। इस अनुवाद के अन्तर्गत मुख्यत: दैनिक समाचार, सभी प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी आदि क्षेत्रों की सामग्री के अनुवाद आते हैं। इन सम्पर्क माध्यमों में दुनिया के सारे ज्ञान-विज्ञान की सामग्री समाहित होती है। इसमें राजनीति, व्यापार, खेल, विज्ञान, साहित्य आदि की अर्थात् जीवन से सम्बन्धित सभी विषय-क्षेत्रों की सामग्री होती है।

उपर्युक्त प्रकारों के अलावा विषयाधारित अनुवाद में संगीत, ज्योतिष, पर्यावरण, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अभिलेखों, गजेटियरों आदि की सामग्री,वाणिज्यानुवाद, काव्यशास्त्र, भाषाविज्ञान सम्बन्धी अनेकानेक विषयों को शामिल किया जा सकता है।

अनुवाद की अन्य प्रकृति पर आधारित प्रभेद

मूलनिष्ठ–मूलनिष्ठ अनुवाद कथ्य और शैली दोनों की दृष्टि से मूल काअनुगमन करता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक का प्रयास रहता है कि अनुदित विचार या कृति स्रोत-भाषा के विचारों एवं अभिव्यक्ति के निकट रहे।

मूलमुक्त–मूलमुक्त अनुवाद को डा. भोलानाथ तिवारी ने मूलाधारित अथवा मूलाधृत अनुवाद भी कहा है। वैसे तो मूलमुक्त का अर्थ ही होता है मूल से हटकर, किन्तु किसी भी अनुवाद में विचारों के स्तर पर परिवर्तन की गुँजाइश नहीं होती। अत: यहाँ मूल से भिन्न का अर्थ है शैलीगत भिन्नता तथा कहावतों एवं उपमानों का देशीकरण करने की अनुवादक की स्वतंत्रता।

अनुवाद के कुछ अन्य प्रभेद

शब्दानुवाद–स्रोत-भाषा के शब्द एवं शब्द क्रम को उसी प्रकार लक्ष्य-भाषा में रूपान्तरित करना शब्दानुवाद कहलाता है। यहाँ अनुवादक का लक्ष्य मूल-भाषा के विचारों को रूपान्तरित करने से अधिक शब्दों का यथावत् अनुवाद करने से होता है। शब्द एवं शब्द क्रम की प्रकृति हर भाषा में भिन्न होती है। अत: यांत्रिक ढंग से उनका यथावत अनुवाद करते जाना काफी कृत्रिम, दुर्बोध्य एवं निष्प्राण हो सकता है। शब्दानुवाद उच्च कोटि के अनुवाद की श्रेणी में नहीं आता।

भावानुवाद–साहित्यिक कृतियों के सन्दर्भ में भावानुवाद का विशेष महत्त्वहोता है। इस प्रकार के अनुवाद में मूल-भाषा के भावों, विचारों एवं सन्देशोंको लक्ष्य-भाषा में रूपान्तरित किया जाता है। इस सन्दर्भ में डा. भोलानाथतिवारी का कहना है–'मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है तो उसका भावानुवाद करते हैं।' भावानुवाद में सम्प्रेषणीयता सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। इसमें अनुवादक का लक्ष्य स्रोत-भाषा में अभिव्यक्त भावों, विचारों एवं अर्थों का लक्ष्य-भाषा में अन्तरण करना होता है। संस्कृत साहित्य में लिखे गए कुछ ललित निबन्धों के हिन्दी अनुवाद बहुत ही सफल सिद्ध हुए हैं।

छायानुवाद–अनुवाद सिद्धान्त में छाया शब्द का प्रयोग अति प्राचीन है। इसमें मूल-पाठ की अर्थ छाया को ग्रहण कर अनुवाद किया जाता है। छायानुवाद में शब्दों, भावों तथा संकल्पनाओं के संकलित प्रभाव को लक्ष्य-भाषा में रूपान्तरित किया जाता है। संस्कृत में लिखे गए भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्'

एवं कालिदास के नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् के हिन्दी अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

सारानुवाद–सारानुवाद का अर्थ होता है किसी भी विस्तृत विचार अथवासामग्री का संक्षेप में अनुवाद प्रस्तुत करना। लम्बी रचनाओं, राजनैतिक भाषणों, प्रतिवेदनों आदि व्यावहारिक कार्य के अनुवाद के लिए सारानुवादकाफी उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार के अनुवाद में मूल-भाषा के कथ्यको सुरक्षित रखते हुए लक्ष्य-भाषा में उसका रूपान्तरण कर दिया जाता है।सारानुवाद का प्रयोग मुख्यत: दुभाषिये, समाचार पत्रों एवं दूरदर्शन केसंवाददाता तथा संसद एवं विधान मण्डलों के रिकार्डकर्तृता करते हैं।

व्याख्यानुवाद–व्याख्यानुवाद को भाष्यानुवाद भी कहते हैं। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल सामग्री के साथ-साथ उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। व्याख्यानुवाद में अनुवादक का व्यक्तित्त्व महत्त्वपूर्ण होता है। और कई जगहों में तो अनुवादक का व्यक्तित्त्व एवं विचार मूल रचना पर हावी हो जाता है। **बाल गंगाधर तिलक** द्वारा किया गया 'गीता' का अनुवाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

आशु अनुवाद–आशु अनुवाद को वार्तानुवाद भी कहते हैं। दो भिन्नभाषाओं, भावों एवं विचारों का तात्कालिक अनुवाद आशु अनुवाद कहलाता है। आज जैसे विभिन्न देश एक दूसरे के परस्पर समीप आ रहे हैं, इस प्रकार केतात्कालिक अनुवाद का महत्त्व बढ़ रहा है। विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों एवं देशों के बीच राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के क्षेत्रों में आशुअनुवाद का सहारा लिया जाता है।

आदर्श अनुवाद–आदर्श अनुवाद को सटीक अनुवाद भी कहा जाता है। इसमें अनुवादक आचार्य की भूमिका निभाता है तथा स्रोत-भाषा की मूलसामग्री का अनुवाद अर्थ एवं अभिव्यक्ति सहित लक्ष्य-भाषा में निकटतम एवं स्वाभाविक समानार्थों द्वारा करता है। आदर्श अनुवाद में अनुवादक तटस्थ रहता है तथा उसके भावों एवं विचारों की छाया अनुदित सामग्री पर नहीं पड़ती। रामचरितमानस, भगवद्गीता, कुरआन आदि धार्मिक ग्रन्थों के सटीक अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

रूपान्तरण–आधुनिक युग में रूपान्तरण का महत्त्व बढ़ रहा है। रूपान्तरण में स्रोत-भाषा की किसी रचना का अन्य विधा (साहित्य रूप) में रूपान्तरण कर दिया जाता है। संचार माध्यमों के बढ़ते हुए प्रभाव एवं उसकी लोकप्रियता को

देखते हुए कविता, कहानी आदि साहित्य रूपों का नाट्यानुवाद विशेष रूप से प्रचलित हो रहा है। ऐसे अनुवादों में अनुवादक की अपनी रुचि एवं कृति की लोकप्रियता महत्त्वपूर्ण होती है। **जैनेन्द्र**,**कमलेश्वर**, **अमृता प्रीतम**, **भीष्म साहनी** आदि की कहानियों के रेडियो रूपान्तर प्रस्तुत किए जा चुके हैं। 'कामायनी' महाकाव्य का नाट्य रूपान्तर काफी चर्चित हुआ है।

अनुवाद की प्रकृति

'अनुवाद' एक कर्म के रूप में बेहद जटिल क्रिया है और एक विधा के रूप में बहुत संश्लिष्ट। यही कारण है कोई इसे 'अनुवाद कला' कहता है, कोई 'अनुवाद शिल्प', तो कोई 'अनुवाद विज्ञान'। अनुवाद कर्म के मर्म को समझने के लिए अनुवाद की प्रकृति और अनुवाद के प्रभेद को जानना-समझना बहुत जरूरी है। चर्चा की शुरुआत अनुवाद की प्रकृति से करते हैं।

अनुवाद सिद्धान्त एवं व्यवहार पर उपलब्ध पुस्तकों के शीर्षकों को देखने से मन में यह प्रश्न स्वतः उठता है कि आखिर अनुवाद की प्रकृति क्या है ? विद्वानों का एक वर्ग इसे 'कला' मानता आया है तो दूसरा वर्ग इसके विपरीत इसे 'विज्ञान' की श्रेणी में रखना पसन्द करता है। एक वर्ग ऐसा भी है, जो अनुवाद को कला या विज्ञान की श्रेणी से अलग 'शिल्प' की कोटि में रखता है। ऐसे में अनुवाद की प्रकृति पर विचार करना जरूरी हो जाता है। पहले हम इसके विज्ञान पक्ष पर विचार करते हैं।

अनुवाद का वैज्ञानिक पक्ष

विज्ञान का साधारण अर्थ होता है 'विशिष्ट ज्ञान'। मगर आज 'विज्ञान' शब्द केवल 'विशिष्ट ज्ञान' तक सीमित न रह कर समूचे वैज्ञानिक व तकनीक चिन्तन, अनुशासनों, यथा- भौतिकी, रसायन, गणित, जीवविज्ञान, कम्प्यूटर आदि को अपने में समाहित कर चुका है, जिसमें पूर्ण सार्वभौमिक सत्यता (universal truth) विद्यमान होती है। इसे सार्वभौमिक सत्यता इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सामान्यतः स्थान, समय व परिवेश से प्रभावित नहीं होती। इसमें हमेशा 2+2=4 या H2+0=H20 होता है। परन्तु अनुवाद में ऐसी सार्वभौमिक सत्यता नहीं होती। हर अनुवादक से उसे एक नया रूप मिलता है। फिर अनुवाद में अनिवार्यतः अनुवादक के युग, समाज, भौगोलिक परिवेश आदि का प्रभाव भी मौजूद रहता है। अनुवाद को उस अर्थ में विज्ञान नहीं कहा जा सकता, जिस अर्थ

में भौतिकी, रसायन, गणित, जीवविज्ञान आदि को विज्ञान कहा जाता है। अनुवाद को विज्ञान मानने के पीछे कारण यह है कि अनुवाद की प्रकिया में विज्ञान की भाँति ही विश्लेषण, तुलना, निरीक्षण, अनुशीलन आदि सोपान होते हैं।

डार्टेस्ट ने अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied Linguistics) की एक शाखा के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है कि अनुवाद, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें विशेषत: एक प्रतिमानित प्रतीक समूह से दूसरे प्रतिमानित प्रतीक समूह में अर्थ को अन्तरित करने की समस्या या तत्सम्बन्धी तथ्यों पर विचार-विमर्श किया जाता है।

अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत शामिल करने का कारण यह है कि अनुवाद कर्म में स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा तक पहुँचने में हम जिन प्रक्रियाओं से होकर गुजरते हैं, उसका वैज्ञानिक विश्लेषण (scientific analysis) किया जा सकता है। भाषा विज्ञानियों का मानना है कि अनुवाद क्रिया में पहले स्रोत-भाषा का विकोडीकरण (decoding of Source Language) होता है, जिसका बाद में लक्ष्य-भाषा में पुन:कोडीकरण (encoding of Target Language) किया जाता है। अत: अनुवाद कर्म में विज्ञान का कुछ गुण अवश्य है, परन्तु इतने भर से इसको पूर्णत: वैज्ञानिक विधा नहीं माना जा सकता।

अनुवाद का कला पक्ष

कला एक प्रकार की सर्जना (creation) है। शायद यही कारण है कि सृजनात्मक साहित्य को कला की श्रेणी में रखा जाता है। जब सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद किया जाता है तो वह मात्र शाब्दिक प्रतिस्थापन नहीं होता, बल्कि अनुवादक को मूल लेखक के उस महान् जीवन क्षण को फिर से जीना होता है, जिससे अभिभूत होकर कवि या रचनाकार ने उस रचना को अंजाम दिया। इसलिए आग्निस गेर्गली ने कहा है–Translation must find and reproduce the impulse of the original work- हमेशा सहज समतुल्यता की खोज में अनुवादक को अक्सर पुन:सृजन करना पड़ता है, जिसमें अनुवादक के सौन्दर्यबोध एवं सृजनशील प्रतिभा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शैली के शब्दों में कहें तो सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद एक प्रकार से कलात्मक प्रक्रिया है। साहित्यिक अनुवाद का पुनर्सृजित रूप निम्नलिखित दो अनुवादों से स्पष्ट हो जाएगा–

उदाहरण–1 मूल–लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि।
पीछैं ही पछिताहुगे, यह तन जैहै छूटि।। –कबीर

अनुवाद–Rejoice O KabirIn this great feastof Love !Once deathknocks at your door, This golden momentwill be goneFor ever ! &Translated by Sahdev Kumar

उदाहरण–2 मूल–One Moment inAnnihilation's Waste, One Moment, of the Well of Life to tasteThe Stars are setting and the Caravan, Starts for the dawn of Nothing& oh, make haste! -Rubaiyat (Fitzgerald)

अनुवाद–अरे, यह विस्मृति का मरु देश एक विस्तृत है, जिसके बीच
खिंची लघु जीवन–जल की रेख, मुसाफिर ले होठों को सींच।
एक क्षण, जल्दी कर, ले देख बुझे नभ–दीप, किधर पर भोर कारवाँ मानव का कर कूच बढ़ चला शून्य उषा की ओर ! –खैयाम की मधुशाला हिन्दी अनुवाद–हरिवंशराय बच्चन

उपर्युक्त दोनों अनुवाद मूल के आधार पर नई रचनाएँ बन गई हैं। ये अनुवाद नहीं बल्कि मूल का 'अनुसृजन' है। इसमें मूल लेखक की भाँति अनुवादक की सृजनशील प्रतिभा की स्पष्ट झलक देखने को मिल रही है। **राजशेखर दास** ने ठीक ही कहा है–'कविता का अनुवाद कितना ही सुन्दर क्यों न हो, वह केवल मूल विचारों पर आधृत एक नई कविता ही हो सकती है।' यही कारण है कि साहित्यिक अनुवाद को एक कलात्मक प्रक्रिया माना गया है।

अनुवाद का शिल्प पक्ष

कई भाषाविज्ञानियों का मानना है कि अनुवाद–कार्य एक शिल्प–कर्म है। उनका तर्क है कि स्रोत–भाषा में व्यक्त सन्देश को लक्ष्य–भाषा में प्रस्तुत करने में अनुवादक के कौशल, उसके भाषा–चातुर्य की अहम् भूमिका होती है। यह शिल्प शब्द अंग्रेजी का skill o craft के निकट पड़ता है। न्यूमार्क ने अनुवाद कर्म को 'शिल्प' स्वीकारा है–'अनुवाद एक शिल्प है, जिसमें एक भाषा में लिखित सन्देश को दूसरी भाषा में उसी सन्देश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है।' फिर अनुवाद में जितना अधिक अभ्यास किया जाएगा या प्रशिक्षण लिया जाएगा, अनुवाद उतना ही सुन्दर होता जाएगा। इसके अलावा कला और

शिल्प का अभिन्न सम्बन्ध भी रहा है। जहाँ कला होगी वहाँ निश्चय ही शिल्प होगा और इसके विपरीत जहाँ शिल्प होगा वहाँ अनिवार्यत: कला होगी। अत: अनुवाद में अंशत: शिल्प का तत्त्व भी समाहित है।

अनुवाद में कला-विज्ञान-शिल्प के तीनों तत्त्व

नाइडा द्वारा प्रस्तावित अनुवाद प्रक्रिया में तीन सोपानों का उल्लेख है–

1. विश्लेषण,
2. अन्तरण,
3. पुनर्गठन।

दरअसल ये तीनों चरण क्रमानुसार विज्ञान, शिल्प और कला के ही तीनों सोपान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अनुवाद-प्रक्रिया का पहला चरण है मूल-पाठ का 'वैज्ञानिक विश्लेषण', दूसरा सोपान है मूल-पाठ के सन्देश व शिल्प का 'अन्तरण कौशल' तथा तीसरा सोपान है लक्ष्य-भाषा में उसका 'कलात्मक पुनर्गठन'। मगर अनुवाद में ये तीनों (कला, विज्ञान और कौशल) का अनुपात सदैव समान नहीं रहता। इन तीनों का अनुपात अनुद्य सामग्री की प्रकृति पर निर्भर रहता है। सृजनात्मक सामग्री में कला तत्त्व का प्राधान्य होने के कारण इसके अनुवादक में भी सृजनात्मक प्रतिभा का होना अपरिहार्य माना गया है। यही कारण है कि साहित्यिक अनुवादक अनुवाद को कलात्मक क्रिया मानते आए हैं। इसके विपरीत तकनीकी या वैज्ञानिक सामग्री के अनुवादक को अनुद्य विषय का सम्यक ज्ञान होना जरूरी है। अनुवादक का विषय ज्ञान जितना अधिक होगा अनुवाद उतना सटीक होगा। अन्यथा 'woody portion' का अनुवाद 'काष्ठमय अंश' हो जाने में देर नहीं लगती। इसके अलावा तकनीकी-वैज्ञानिक सामग्री के अनुवाद में हमें कुछ नियमों का अनुसरण भी करना पड़ता है। इसीलिए तकनीकी विषय के अनुवाद में अनुवादक का कौशल बखूबी काम करता है। इस सन्दर्भ में नाइडा का कथन है–'Translation is far more than a Science] it is also a Skill and in the ultimate analysis fully satisfactory translation is always anArt-' अर्थात् अनुवाद विज्ञान से बढ़कर है, वह कौशल भी है और अन्तिम विश्लेषण में पूर्णत: सन्तोषजनक अनुवाद हमेशा एक कला रहा है। परन्तु **डॉ. नगेन्द्र** अनुवाद को एक स्वतंत्र विधा मानते हैं। उनका कहना है–'अनुवाद पारिभाषिक अर्थ में न विज्ञान है और न कला। इसके अतिरिक्त उसे निश्चित रूप से शिल्प भी कहना तर्कसंगत नहीं होगा। वास्तविक स्थिति यह है कि

आधार विषय के अनुसार अनुवाद में इन तीनों के ही तत्त्वों का यथानुपात समावेश रहता है। साहित्यिक अनुवाद विशेष रूप से काव्यानुवाद का अन्तर्भाव जहाँ कला की परिधि में ही हो जाता है, वहाँ वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय अनुवाद में विज्ञान के आधार तत्त्वों का प्राधान्य रहता है जबकि शिल्प का प्रयोग प्रायः सर्वत्र ही मिलता है। इस प्रकार अनुवाद एक स्वतंत्र विधा है।' निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अनुवाद में कला, विज्ञान और शिल्प तीनों विधाओं के तत्त्व अंशतः विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में, अनुवाद के विश्लेषण में वैज्ञानिकता है, उसकी सिद्धि में कलात्मकता जिसके लिए आवश्यकता होती है शिल्पगत कौशल की।

मशीनी अनुवाद की दिशा में आने वाले दिनों में काफी प्रगति होने वाली है। मशीनी अनुवाद के कारण दुनिया में एक नयी क्रान्ति आयेगी।

संगणक सहायित अनुवाद

20 भाषाएँ जिनसे, जिनमें सर्वाधिक अनुवाद होते हैं–

किससे	**किसको**
अंग्रेजी	जर्मन
फ्रांसिसी	स्पैनिश
जर्मन	फ्रांसिसी
रूसी	जापानी
इतालवी	अंग्रेजी
स्पैनिश	डच
स्वीडिश	पुर्तगाली
लातिन	पोलिश
डैनिश	रूसी
डच	डैनिश
चेक	इतालवी
प्राचीन यूनानी	चेक
जापानी	हंगेरियन
पोलिश	फिनिश
हंगेरियन	नार्वेजियन
अरबी	स्वीडिश

नार्वेजियन	यूनानी
पुर्तगाली	बुल्गारियाई
हिब्रू	कोरियाई
चीनी	स्लोवाक

संगणक सहायित अनुवाद (ComputerAssisted Translation@CAT) किसी व्यक्ति द्वारा किया गया ऐसा अनुवाद है, जिसमें कम्प्यूटर प्रोग्रामों की भी सहायता ली जाती है। इससे भिन्न मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया में सम्पूर्ण अनुवाद प्रक्रिया में मानव का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। कुछ उन्नत प्रकार के मशीन सहायित अनुवादों में नियंत्रित मशीन अनुवाद का सहारा लिया जाता है।

विभिन्न रूपों में संगणक-सहायित-अनुवाद

संगणक सहायित अनुवाद एक विस्तृत एवं अस्पष्ट संज्ञा है। बहुत सरल उपकरणों (प्रोग्राम) से लेकर बहुत जटिल सॉफ्टवेयर इसका उपयोग कर सकते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं-

वर्तनी जाँचक,
व्याकरण जाँचक,
शब्दावली प्रबन्धक,
सी-डी रॉम पर शब्दकोश (एकभाषिक या बहुभाषिक),
शब्दावली का डेटाबेस–सीडी रॉम पर या इन्टरनेट पर),
पूर्ण-पाठ खोजी उपकरण (Full-text search tools) या इंडेक्सर्स
कांकार्डैंसर्स Cncordancers
द्विपाठ (Bitexts)–इसका प्रचलन अभी हाल में आया है।

परियोजना प्रबन्धन के सॉफ्टवेयर

अनुवाद स्मृति प्रबन्धक (Translation memory managers (TMM))
औजार

ऐसे अनुवाद तंत्र, जो लगभग स्वचालित हैं, किन्तु संदिग्ध अनुवाद की स्थितियों में वे मानव अनुवादक द्वारा निर्णय का विकल्प भी प्रदान करते हैं।

अनुवाद एवं भाषाविज्ञान

अनुवाद एक भाषिक कला है। सामान्य अर्थ में, एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में कहना 'अनुवाद' है। यहाँ कथन या अभिव्यक्ति का माध्यम है 'भाषा'। स्पष्ट है कि अनुवाद क्रिया पूर्णतः भाषा पर आधारित है। कदाचित इसीलिए भोलानाथ तिवारी जी ने अनुवाद को 'भाषान्तर' कहा है। एक भाषिक क्रिया होने के नाते अनुवाद का भाषा से ही नहीं, भाषाविज्ञान से भी गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि भाषाविज्ञान में 'भाषा' का वैज्ञानिक अध्ययन होता है। भाषा की संरचना में ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ, वाक्य आदि कई स्तर होते हैं। इनके आधार पर भाषाविज्ञान के अन्तर्गत ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान, वाक्यविज्ञान आदि का विधिवत् व वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। अनुवाद में भी ध्वनि, शब्द, रूप आदि की दृष्टि से स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की तुलना करनी होती है। इन विविध स्तरों पर दो भाषाओं की प्रकृति, संरचना, शैली आदि में जो अन्तर होते हैं, वे समान प्रतीत होने वाले प्रसंगों में भी अलग-अलग अर्थ भर देते हैं। अनुवाद में भाषान्तरण के बावजूद अर्थ की रक्षा अपरिहार्य होती है। अतः अनुवादक को स्रोत-भाषा तथालक्ष्य-भाषा की प्रकृति, संरचना, विविध भाषिक तथा व्याकरणिक स्तरों, विभिन्न शैलियों तथा इन तमाम पक्षों से सम्बद्ध अर्थ व्यंजनाओं का सम्पूर्णज्ञान होना चाहिए।

भाषा का अनुवाद और अनुवाद की भाषा

भारतवर्ष विभिन्न भाषाओं एवं उपभाषाओं रूपी सरिताओं का संगम है। यहाँ एक ओर संस्कृति की पावन गंगा प्रवाहित है जिसने अमृत वांग्मय से समस्त क्षेत्रीय भाषाओं को भी अनुप्राणित किया है, दूसरी ओर हमारी संस्कृति की अंतःसलिला सरस्वती है, जो विविधि वेशभूषा, रीतिरिवाजों के बाह्य भेदों की विद्यमानता के बावजूद समस्त भारत को रागात्मकता के एक सूत्र में बाँधे हुए हैं। भाषा ही वह जीवन-ज्योति है, जो मानव को मानव से जोड़ती है। यह विचारों के आदान-प्रदान में सहायक होने के साथ-साथ परम्पराओं, संस्कृतियों और मान्यताओं एवं विश्वासों को समझने का सशक्त माध्यम भी है। किसी भी देश की धड़कन उसकी भाषा में ही निहित होती है। जहाँ भाषा विचारों की संवाहिका है, वहीं अनुवाद विविध भाषाओं एवं विविध संस्कृतियों से साक्षात्कार कराने वाला साधन। अनुवादक अपने भागीरथ प्रयास से दो भिन्न एवं अपरिचित

संस्कृतियों, परिवेशों एवं भाषाओं की सौन्दर्य चेतना को अभिन्न और परिचित बता देता है।

अनुवाद उतना ही प्राचीन है जितनी कि भाषा। हमारा भारत भाषाओं और उनके बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से यूरोप से बहुत बड़ा है। और सच तो यह है कि भाषाओं के मामले में हम दुनिया के सिरमौर हैं। दुनिया की पचास बड़ी भाषाओं में से एक तिहाई भारत की भाषाएँ हैं। अनादि काल से वे मनुष्य जाति के पारस्परिक आदान-प्रदान का सशक्त माध्यम रही हैं। भाषा और साहित्य हमारी संस्कृति के उद्‌गाता और संवाहक रहे हैं।

भाषा और अनुवाद का भविष्य परस्पर अन्योन्याश्रित है। भाषा का भविष्य अनुवाद का भी भविष्य है। वर्तमान भाषा के रूप को पहचानते हुए भविष्य की कल्पना की जाती है। आज कई प्रकार के भाषा-रूप हैं, जैसे बोलचाल की भाषा, साहित्यिक भाषा, माध्यम भाषा, सम्पर्क भाषा, जनसंचार माध्यम की भाषा इत्यादि। बोलचाल की भाषा में व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता नहीं, जबकि साहित्यिक भाषा में रचनाधर्मिता प्रकट होने के कारण व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। माध्यम भाषा के द्वारा शिक्षण प्राप्त करते हैं। जनसंचार की भाषा के प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दो अलग प्रकार के माध्यम हैं। इसका मुख्य उद्देश्य जनता को सूचना देना, प्रशिक्षण, प्रबोधन,अभिप्रेरण, प्रोत्साहन तथा मनोरंजन करना है। इसी कारण इस माध्यम में भाषा को रोचक रूप में प्रस्तुत करने का विशेष प्रयास रहता है।

यह अलग बात है कि बाजारवाद के चलते आज भाषा का व्यावसायीकरण हो गया है। इंटरनेट, कंप्यूटर आदि के कारण दैनन्दिन जीवन की आवश्यकताओं में प्रयोग होने वाली भाषा पर विस्तार देने का प्रयास होने लगा है। भाषा में दिनोंदिन परिष्कार हो रहा है, जिससे शब्दों में निखार आता जा रहा है। पहले 'Public Latrine' शब्द लिए 'संडास' शब्द का प्रयोग किया जाता था, जो सुनने और बोलने में बड़ा अरुचिकर लगता था, परन्तु धीरे-धीरे इसके स्थान पर प्रसाधन, सुलभ शौचालय, जनसुविधाएँ आदि शब्द आए, ये शब्द ज्यादा गरिमा मंडित हैं।

भाषा की सबसे बड़ी शक्ति उसकी ग्रहण क्षमता है, जिस भाषा में यह गुण नहीं, वह भाषा दम तोड़ देती है। किसी भी भाषा से अनुवाद करते समय अनुवाद के सरलीकरण का प्रयास रहना चाहिए। यदि अनुवाद को जटिल बनाने का प्रयास किया गया तो स्थिति बिगड़ने की संभावना रहती है। संप्रेषण ग्राह्यता

जब तक भाषा में नहीं होगी, वह अनुवाद या भाषा जनसम्पर्क का माध्यम नहीं बन सकती। भाषा भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ चिन्तन का भी माध्यम है। हर शब्द की व्यंजना, प्रकृति, प्रवृत्ति, संस्कृति, इतिहास अलग होता है। अतः अनुवाद करते समय इसे समझना होगा। भाषा और शब्द की प्रकृति से भलीभाँति परिचित होना होगा।

अनुवाद और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

आधुनिक युग को अनुवाद का युग कहेंगे अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि अनुवाद-अध्ययन और अनुसंधान आधुनिक युग की पुकार है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक युग में जीवन के अनेक क्षेत्रों के विकास के साथ-साथ भाषायी स्तर पर, संप्रेषण-व्यापार हेतु अनुवाद एक अहम् आवश्यकता के रूप में उभरकर सामने आया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब हम किसी एक भाषा में अभिव्यक्त भाव या विचारों के लिखित रूप को किसी अन्य भाषा-भाषी समुदाय के संप्रेषणार्थ, दूसरी भाषा में यथा साध्य मूलनिष्ठ किन्तु बोधगम्य रूपमें परिवर्तित करते हैं तो यह भाव या विचारों के सोद्देश्यपूर्ण भाषान्तर-प्रक्रिया 'अनुवाद' कहलाती है।

आधुनिक भाषाविज्ञान में भाषा के अनुप्रायोगिक पक्ष पर भी चिन्तन हुआ है। 'भाषा का सैद्धान्तिक विश्लेषण और वाक्य, रूपिम, स्वनिम आदि उसके व्याकरणिक स्तरों का वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान का सिद्धान्त कहलाता है, जबकि सौद्धान्तिक भाषाविज्ञान के नियमों सिद्धान्तों, तथ्यों और निष्कर्षों का किसी अन्य विषय में अनुप्रयोग करने की प्रक्रिया ओर क्रियाकलाप का विज्ञान ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied Linguistics) है। 'बकौल **कृष्णकुमार गोस्वामी** अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान प्रायोगिक एवं कार्योन्मुख एक ऐसी वैज्ञानिक विधा है, जो मानव कार्य-व्यापार में उठने वाली भाषागत समस्याओं का समाधान ढूँढती है। भाषिक क्षमता एवं भाषिक व्यवहार के सन्दर्भ में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का सम्बन्ध प्रत्यक्षतः व्यवहार पक्ष से जुड़ा हुआ है। यदि भाषाविज्ञान प्रत्येक 'क्या' का उत्तर देता है अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान प्रत्येक 'कैसे' तथा 'क्यों' का उत्तर देता है। यह उपभोक्ता सापेक्ष होता है, जिसमें भाषा के उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित लक्ष्य के सन्दर्भ में भाषा-सिद्धान्तों का अनुप्रयोग होता है। वास्तव में भाषा से हम क्या-क्या काम ले सकते हैं, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान उस दिशा में काम करता है। इसलिए जैसे-जैसे इसकी उपयोगिता बढ़ती गई, देश एवं काल के अनुसार उसे भिन्न-भिन्न विधाओं से सम्बद्ध किया

जाता रहा है, यथा भाषा-शिक्षण, अनुवाद, कोशविज्ञान, शैलीविज्ञान, कंप्यूटर भाषाविज्ञान, समाज भाषाविज्ञान।

सामान्यतः अनुवाद से अभिप्राय एक भाषाई संरचना के प्रतीकों केद्वारा सम्प्रेष्य अर्थ को दूसरी भाषा की संरचना के प्रतीकों में परिवर्तित करने से लिया जाता है। **डार्टेस्ट** ने अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है कि, अनुवाद, अनुप्रयुक्तभाषाविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें विशेषतः एक प्रतिमानित प्रतीक समूह से दूसरे प्रतिमानित प्रतीक समूह में अर्थ को अन्तरित करने की समस्या या तत्सम्बन्धी तथ्यों पर विचार-विमर्श किया जाता है–

अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत शामिल करने का कारण यह है कि अनुवाद कर्म में स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा तक पहुँचने में हम जिन प्रक्रियाओं से होकर गुजरते हैं उसका वैज्ञानिक विश्लेषण (scientific analysis) किया जा सकता है। भाषा विज्ञानियों का मानना है कि अनुवाद क्रिया में पहले स्रोत-भाषा का विकोडीकरण (Decoding ofSource Language) होता है जिसका बाद में लक्ष्य-भाषा में पुनःकोडीकरण (Encoding of Target Language) किया जाता है। क्रम को देखें–

स्रोत-भाषा (Encoding of Source Language)

स्रोत-भाषाका कोडीकृत संदेश (Encoded message S-L-)

अन्तरणअर्थात् स्रोत-भाषा का विकोडीकरण (Decoding of S-L-)

लक्ष्य-भाषा का कोडीकृत संदेश (Encoded message ofTarget Language)

लक्ष्य-भाषा (Encoding of T-L-)

इसे आरेख से सहज ही समझा जा सकता है–

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के कार्यक्षेत्र का अध्ययन करते हुए उसके तीन सन्दर्भ बताए हैं–

ज्ञान-क्षेत्र का सन्दर्भ,

विधा-क्षेत्र का सन्दर्भ,

भाषा शिक्षण का सन्दर्भ।

ज्ञान-क्षेत्र में भाषाविज्ञान और उसके सिद्धान्तों का अनुप्रयोग ज्ञान केअन्य क्षेत्रों को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। जैसे मनो-भाषाविज्ञान, समाज भाषाविज्ञान, कंप्यूटर भाषाविज्ञान आदि।

विधा-क्षेत्र में भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुप्रयोग विशेष विधाओं में किया जाता है। शैली विज्ञान, अनुवाद विज्ञान, कोश विज्ञान, वाक्चिकित्सा विज्ञान आदि।

जहाँ तक भाषा शिक्षण का प्रश्न है, दूसरी भाषा-शिक्षण (Second Language Teaching) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में दूसरी भाषा' पद एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसकी एक निश्चित संकल्पना है। मातृभाषा हमारी प्रथमभाषा होती है। दूसरी भाषा को सीखने में माध्यम बनती है मातृभाषा। दूसरी भाषा के रूप में जब वह कोई अन्य भाषा पढ़ता है तब उसके सोचने-समझने में मातृभाषा उसकी व्यावहारिक भाषा रहती है क्योंकि वह व्यक्ति की जीवन पद्धति, आचार-विचार और व्यवहार की भाषा होती है। दूसरी भाषा शिक्षण में अनुवाद की प्रक्रिया को भाषा सीखने की प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाता है। अनुवाद भाषा-शिक्षण की परम्परागत और सिद्ध पद्धति है। मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा का जो संरचनागत ढाँचा व्यक्ति के मस्तिष्क में व्यावहारिक स्तर पर विद्यमान होता है, उसका उपयोग इस पद्धति से दूसरी भाषा सिखाने में कर लिया जात है और व्यक्ति धीरे-धीरे सुविधाजनक ढंग से दूसरी भाषा व्यवहार में दक्षता अर्जित कर लेता है। अनुवाद-प्रक्रिया की भाँति उसे अपनी भाषा (स्रोत-भाषा) की शब्दावली के पर्याय दूसरी भाषा में खोजकर याद करने होते हैं, इन शब्दों के विभिन्नरूपों से परिचय प्राप्त करना होता है तथा भाषा के संरचनागत (व्याकरणसंबंधी) नियमों की जानकारी हासिल करनी होती है। इन शब्दों का प्रयोग करते हुए वाक्त-रचना करते समय वह नियमों का सतर्कतापूर्वक पालन करता है। ऐसा करते समय वह अपनी भाषा में सोचता है, फिर उस बात को उस भाषा में पढ़ता है, उस पाठ के पर्याय अपनी भाषा में तलाशता है और कथ्य को दूसरी भाषा(लक्ष्य-भाषा) में प्रस्तुत करता है। अनुवाद के माध्यम से दूसरी भाषा-शिक्षण दुनिया भर में बहुत समय से प्रचलित रहा है। सदियों से लोग इस पद्धति से भाषा सीखते रहे हैं।

अनुवाद और भाषाविज्ञान का अन्तर्सम्बन्ध

भाषाविज्ञान एवं अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

भाषा का विधिवत् एवं वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान सिद्धान्त कहलाता है जबकि सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों, तथ्यों और निष्कर्षों का किसी अन्य विषय में अनुप्रयोग करने की प्रक्रिया और क्रिया-कलाप का विज्ञान ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान है। दूसरे शब्दों में कहें तो, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में

भाषाविज्ञान से प्राप्त सैद्धान्तिक जानकारी का विभिन्न क्षेत्रों में अनुप्रयोग करते हैं। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञानी अपने ज्ञान भंडार के विवेचनात्मक परीक्षण के पश्चात् उसका अनुप्रयोग उन क्षेत्रों में करता है, जहाँ मानव-भाषा एक केन्द्रीय घटक होती है, जिससे उन क्षेत्रों की कार्यक्षमता का संवर्द्धन किया जा सकता है।

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान एक ऐसी प्रायोगिक, कार्योन्मुख वैज्ञानिक विधा है, जो मानव कार्य-व्यापार में उठने वाली भाषागत समस्याओं का समाधान ढूँढ़ती है। भाषिक क्षमता एवं भाषिक व्यवहार के सन्दर्भ में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का सम्बन्ध प्रत्यक्षत: व्यवहार पक्ष से जुड़ा हुआ है। यदि भाषाविज्ञान प्रत्येक 'क्या' का उत्तर देता है तो अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान प्रत्येक'कैसे' तथा 'क्यों' का उत्तर देता है। चूँकि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का सम्बन्ध विशेष विधाओं से है, अत: इसमें भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों का जो अनुप्रयोग किया जाता है उसका लक्ष्य संक्रियात्मक होता है। संक्रियात्मक रूप मेंशैलीविज्ञान, अनुवादविज्ञान, कोशविज्ञान, वाक्चिकित्सा विज्ञान आदि विषयों में भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुप्रयोग अनिवार्यत: होता है। क्योंकि ये मुख्यत: भाषा से सम्बद्ध हैं। इन विधाओं को एक निश्चित सैद्धान्तिक सन्दर्भ देने में और उसके अध्ययन-विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित वैज्ञानिक तकनीक विकसित करने में भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त एवं प्रणाली के अनुप्रयोग का सर्वाधिक योगदान है।

अनुवाद एवं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

'व्यतिरेक' का अर्थ है 'असमानता' या 'विरोध'। 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान में दो भाषाओं की तुलना करके दोनों की असमानताओं का पता लगाया जाता है। अनुवाद के सन्दर्भ में कहें तो व्यतिरेकी विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य रूपात्मक तुलनात्मकता और उस तुलनात्मकता के आधार पर स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा में विद्यमान असमानताओं की व्याख्या करना है। इस प्रकार व्यतिरेकी तकनीक के रूप में अनुवाद में स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के बीच व्याप्त असमानताओं के प्रति भाषायी सजगता पैदा करना है।

उदाहरण के लिए हिन्दी में तीन मध्यम पुरुष–तू, तुम, आप हैं जबकि अंग्रेजी में केवल 'लवन'। इस प्रकार निम्नलिखित वाक्यों में अंग्रेजी के 'mall' शब्द के समानान्तर हिन्दी में 'छोटा', 'छोटी', 'छोटे' तीनों का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण–SmalI boy–छोटा लड़का SmalI girl–छोटी लड़की ैउंसप इवले–छोटे लड़के।

एकाध और उदाहरणों पर विचार करें : हिन्दी के 'गानेवाली' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद सन्दर्भानुसार 'singer' और 'about to sing' होगा। इस प्रकार 'टोपीवाला' का अनुवाद 'wearing cap' और 'cap seller' होगा। अत: कहा जा सकता है कि अनुवाद का सीधा सम्बन्ध व्यतिरेकी विश्लेषण से है।

अनुवाद एवं ध्वनिविज्ञान

'ध्वनि' भाषा की मूलभूत इकाई होती है तथा हर भाषा की अपनी अलग ध्वनि व्यवस्था होती है। दो भाषाओं के बीच कुछ समान, कुछ लगभग समान और कुछ भिन्न ध्वनियाँ होती हैं। यहाँ अंग्रेजी और हिन्दी भाषा की समान ध्वनियों की तुलना करते हैं–

हिन्दी–क ग ज ट न प फ ब म र ल व श स

अंग्रेजी–ा ह र ज द च ि इ उ त स अ ी ं

तुलना से स्पष्ट है कि अंग्रेजी में हिन्दी की 'अ' ध्वनि नहीं है तो 'अ' और 'W' का सूक्ष्म अन्तर हिन्दी में नहीं है। ऐसे और कई उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया, भाषा की मूलभूत इकाई है 'ध्वनि' और सार्थक ध्वनियों से 'शब्द' का निर्माण होता है। यह शब्द जब वाक्य में प्रयुक्त होता है तब वह 'रूप' बन जाता है। अनुवाद कर्म में हमेशा दो भाषाओं के बीच स्थित समानार्थक शब्दों की तलाश रहती है। मगर यह जरूरी नहीं कि एक भाषा की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति किसी दूसरी भाषा में उपलब्ध हो। हर भाषा में कुछ ऐसे शब्द होते हैं, जिसके समानार्थक शब्द दूसरी भाषा में उपलब्ध नहीं होते, जैसे पारिभाषिक शब्द, मिथ–विशेष से जुड़े शब्द, सांस्कृतिक शब्द आदि। ऐसे में हम मूल शब्द का अनुवाद न कर उसे लक्ष्य–भाषा की लिपि में परिवर्तित कर ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेते हैं। इसके लिए हमें लिप्यंतरण या Transliteration का सहारा लेना पड़ता है और लिप्यन्तरण में ध्वनिविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। कुछ शब्दों का लिप्यन्तरण द्रष्टव्य है–

Bureau- ब्यूरो, Voucher- वाउचर, Macbath- मैकबेथ आदि।

अनुवाद एवं अनुलेखन

अनुलेखन का अर्थ है स्रोत–भाषा के शब्द की वर्तनी पर ध्यान न देकर उसके उच्चारण को आधार मान कर लक्ष्य–भाषा में उस उच्चारण के अनुरूप

लिखना। अनुलेखन को प्रतिलेखन भी कहा जाता है। अनुवाद प्रक्रिया के दौरान अनुद्य सामग्री में हमें दो प्रकार के शब्द मिलते हैं–1- जिनका अनुवाद किया जाना है और 2- जिनका अनुवाद न कर थोड़े-बहुत रूपान्तर के साथ प्रायः मूल रूप में ही लक्ष्य-भाषा में लिख दिया जाता है। अनुलेखन में स्रोत-भाषा के ऐसे शब्दों को लक्ष्य-भाषा में लिखने की समस्या पर विचार किया जाता है, जिसका सम्बन्ध लिपिविज्ञान से है। डा. भोलानाथ तिवारी इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि अनुवाद में ऐसी समस्या दो रूपों में आती है। यदि अनुवादक किसी से कोई बात सुनकर उसका अनुवाद करके लिख रहा है तो वह स्रोत-भाषा की ध्वनि को पहले लक्ष्य-भाषा की ध्वनि में परिवर्तित करता है और फिर लक्ष्य-भाषा की उन ध्वनियों को प्रतिनिधि लिपि-चिह्नों में उन्हें लिखता है-

स्रोत-भाषा ध्वनि, लक्ष्य-भाषा ध्वनि, लक्ष्य-भाषा लिपिचिह्न

किन्तु यदि वह किसी लिखित सामग्री से अनुवाद कर रहा हो तो इस क्रम में वृद्धि हो जाती है-

1. स्रोत-भाषा लिपि चिह्न, 2. स्रोत-भाषा ध्वनि, 3. लक्ष्य-भाषा ध्वनि, 4. लक्ष्य-भाषा लिपिचिह्न।

अनुवाद में स्रोत-भाषा लिपि चिह्न से सीधे लक्ष्य-भाषा लिपिचिह्नतक पहुँचने की प्रक्रिया सही नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि लिपि चिह्नों के आधार पर 'Jesperson' का अनुवाद 'जेस्पर्सन' कर दिया जाए तो गलत होगा क्योंकि इसका सही अनुवाद तो 'येस्पर्सन' है। ऐसे ही 'Rousseau' और 'Meillet' का अनुवाद क्रमानुसार 'रूसो' और 'मेइये' होगा, न कि 'राउस्सेअउ' तथा 'मेइल्लेत'।

अनुवाद एवं रूपविज्ञान

रूपविज्ञान के अन्तर्गत भाषा की रूप-रचना का अध्ययन होता है। रूप-रचना में व्याकरणिक नियमों का आकलन एवं निर्धारण किया जाता है। इसके अध्ययन का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। चूँकि भाषा के रूप-विन्यास पर ही मूल का आशय छिपा रहता है, इसीलिए अनुवादक को स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा, दोनों की रूप-रचना, व्याकरणिक नियमों आदि से भलीभाँति परिचित होना चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के दो वाक्यों का गलत और सही अनुवाद द्रष्टव्य है–

उदाहरण–1 Prima has a pair of scissors-d– प्रीमा के पास एक जोड़ी कैंची हैं। (–गलत अनुवाद)ख– प्रीमा के पास एक कैंची है। (–सही अनुवाद)

उदाहरण–2 Her hair is beautiful-d– उसका सुन्दर बाल है। (–गलत अनुवाद)ख– उसके बाल सुन्दर हैं। (–सही अनुवाद)

कहने की जरूरत नहीं कि अंग्रेजी में 'a pair of scissors', 'a pair of trousers' आदि का प्रयोग होता है, मगर हिन्दी में उसे 'एक जोड़ी कैंची' या 'एक जोड़ी पायजामा' न कहकर सिर्फ 'एक कैंची' या 'एक पायजामा' कहा जाता है। ऐसे ही अंग्रेजी में 'hair' शब्द एकवचन के रूप में प्रयोग होता है, जबकि हिन्दी में 'बाल' बहुवचन में।

अनुवाद एवं शब्दविज्ञान

किसी भाषा की सार्थक ध्वनियों के समुच्चय को शब्द कहते हैं। शब्दविज्ञान में शब्दों को परिभाषित करके विभिन्न आधारों पर उनका वर्गीकरण किया जाता है। अनुवाद में शब्दों के मूल अर्थ का स्रोत या प्रयोगसन्दर्भ को जानने के लिए शब्द का वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्गीकरण करनापड़ता है। उदाहरण के लिए 'पानी' शब्द को लीजिए–

पानी

1. जल
2. वारि
3. नीर
4. अम्बु
5. सलिल
6. अंभ
7. तोय
8. उदक
9. घनसार
10. तृसाह
11. प्रजाहित
12. सर

निश्चय ही इन समानार्थी शब्दों का प्रयोग भी कुछ हद तक निश्चित ही है और अनुवादक को सन्दर्भानुसार इन शब्दों में से एक ही प्रतिशब्द को ग्रहण करना पड़ता है। जैसे रुक- गंगा जल (गंगा नीर या गंगा पानी नहीं)ख- पीने का पानी (पीने का नीर या जल नहीं)ग- नीर ढलना (जल या पानी ढलना नहीं) (नीर ढलना = आँसू बहाना)।

अनुवाद एवं अर्थविज्ञान

अर्थविज्ञान में भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन किया जाता है। चूँकि अनुवाद में शब्द का नहीं अर्थ का प्रतिस्थापन होता है, इसीलिए अनुवाद में अर्थविज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ ही अनुवाद कर्म में अनुवादक केवल अभिधार्थ के सहारे आगे नहीं बढ़ता, बल्कि निहितार्थ (लक्षणा और व्यंजना) को भी बराबर साथ लिए चलता है। उदाहरण के लिए एक पक्षी के सन्दर्भ में 'वह उल्लू है' कहना साधारण अर्थ का बोध कराता है, मगर एक व्यक्ति के सन्दर्भ में जब 'वह उल्लू है' कहा जाता है तो व्यंग्यार्थ का बोध कराता है। फिर जो 'उल्लू' हिन्दी में मूर्ख का प्रतीक है, वही 'Owl' अंग्रेजी में 'विद्वान' का प्रतीक है। इतना ही नहीं, कुछ शब्दों के कई अर्थ होते हैं। जैसे 'वारि' शब्द की तीन अर्थ छवियों को देखिए–

वारि

1- जल 2- सरस्वती 3- हाथी बाँधने की जंजीर

अनुवादक को सन्दर्भानुसार इन अर्थ छायाओं में से एक अर्थ को ग्रहण करना पड़ता है।

अनुवाद एवं वाक्यविज्ञान

अनुवाद में वाक्यविज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वाक्य विज्ञान में भाषा विशेष के सन्दर्भ में वाक्य रचना और इसके विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया जाता है। अनुवाद में भी लक्ष्य-भाषा की प्रकृति, व्याकरणिक नियम आदि का ध्यान रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए 'वह भोजन कर रहा है' का अंग्रेजी अनुवाद 'He is doing meal-' न होकर 'He is tkaingmeal.' होगा। यहाँ 'भोजन करना' हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल है और 'taking meal' अंग्रेजी भाषा की प्रकृति के। ऐसे ही 'घोंघा धीरे-धीरे चल रहा है' का अंग्रेजी अनुवाद 'Snail is slowly slowly creeping-' न होकर 'Snail is creeping

slowly' होगा। कहने की जरूरत नहीं कि हिन्दी वारिभाषा की संरचना 'कर्ता, कर्म, क्रिया विशेषण क्रिया' नियम पर आधारित होती है, जबकि अंग्रेजी भाषा की संरचना 'कर्ता. कर्म. क्रिया. क्रिया विशेषण' नियम पर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद का भाषाविज्ञान, खासकर अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान एवं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान से बहुत गहरा सम्बन्ध है। हर अनुवादक को भाषविज्ञान के इन नियमों की जानकारी होना जरूरी है,अन्यथा वह सही और सार्थक अनुवाद कर ही नहीं सकता।

अनुवाद की महत्ता एवं आवश्यकता

उत्तर-आधुनिक युग में अनुवाद की महत्ता व उपादेयता को विश्वभर में स्वीकारा जा चुका है। वैदिक युग के 'पुनः कथन' से लेकर आज के 'ट्रांसलेशन' तक आते-आते अनुवाद अपने स्वरूप और अर्थ में बदलाव लाने के साथ-साथ अपने बहुमुखी व बहुआयामी प्रयोजन को सिद्ध कर चुका है।

प्राचीन काल में 'स्वांतः सुखाय' माना जाने वाला अनुवाद कर्म आज संगठित व्यवसाय का मुख्य आधार बन गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो अनुवाद प्राचीन काल की व्यक्ति परिधि से निकलकर आधुनिक युग की समष्टि परिधि में समा गया है। आज विश्वभर में अनुवाद की आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में किसी-न-किसी रूप में अवश्य महसूस की जा रही है। और इस तरहअनुवाद आज के जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है।

बीसवीं शताब्दी के अवसान और इक्कीसवीं सदी के स्वागत के बीच आज जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ पर हम चिन्तन और व्यवहारके स्तर पर अनुवाद के आग्रही न हों। भारत में अनुवाद की परम्परा पुरानी है किन्तु अनुवाद को जो महत्त्व 21वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्राप्त हुआ वह पहले नहीं हुआ था। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् देश की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया। विश्व के अन्य देशों के साथ भारत के आर्थिक एवं राजनीतिक समीकरण बदले। राजनैतिक और आर्थिक कारणों के साथ विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी का विकास भी इस युग की प्रमुख घटना है जिसके फलस्वरूप विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों में सम्पर्क की स्थिति उभर कर सामने आयी। आज विश्व के अधिकांश बड़े देशों में एक प्रमुख भाषा के साथ-साथ अन्य कई भाषाएँ भी गौण भाषा के रूप में समान्तर चल रही हैं। अतएव एक ही भौगोलिक सीमा की राजनैतिक, प्रशासनिक इकाई के अन्तर्गत भाषायी

बहुसंख्यक भी रहते हैं और भाषायी अल्पसंख्यक भी। अत: विभिन्न भाषाभाषियों के बीच उन्हीं की अपनी भाषा में सम्पर्क स्थापित कर लोकतंत्र में सबकी हिस्सेदारी सुनिश्चित की जा सकती है। वस्तुत: अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के बीच राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बढ़ती हुई आदान-प्रदान की अनिवार्यता ने अनुवाद एवं अनुवाद कार्य के महत्त्व को बढ़ा दिया है।

हमारे देश में अनुवाद का महत्त्व प्राचीन काल से ही स्वीकृत है। **प्रो. जी. गोपीनाथन** ने ठीक ही लक्ष्य किया था कि अनुवाद आज व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकता बन गया है। आज के सिमटते हुए संसार में सम्प्रेषण माध्यम के रूप में अनुवाद भी अपना निश्चित योगदान दे रहा है। भारत जैसे बहुभाषी देश में अनुवाद की उपादेयता स्वयं सिद्ध है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के साहित्य में निहित मूलभूत एकता के स्वरूप को निखारने के लिए अनुवाद ही एक मात्र अचूक साधन है। इस तरह अनुवाद द्वारा मानव की एकता को रोकनेवाली भौगोलिक और भाषायी दीवारों को ढहाकर विश्वमैत्री को और सुदृढ़ बना सकते हैं।

21वीं सदी में अनुवाद की महत्ता

21वीं शताब्दी के मौजूदा दौर में अनुवाद एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश के जन-समुदायों के बीच अंत:संप्रेषण के संवाहक के रूप में अनुवाद का बहुआयामी प्रयोजन सर्वविदित है। यदि आज के इस युग को 'अनुवाद का युग' कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि आज जीवन के हर क्षेत्र में अनुवाद की उपादेयता को सहज ही सिद्ध किया जा सकता है। धर्म-दर्शन,साहित्य-शिक्षा, विज्ञान-तकनीकी, वाणिज्य व्यवसाय, राजनीति-कूटनीति,आदि सभी क्षेत्रों से अनुवाद का अभिन्न संबंध रहा है। अत: चिंतन औरव्यवहार के प्रत्येक स्तर पर आज मनुष्य अनुवाद पर आश्रित है। इतना ही नहीं विश्व-संस्कृति के विकास में भी अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। विश्व के विभिन्न प्रदेशों की जनता के बीच अंत:संप्रेषण की प्रक्रिया के रूप में, उनके बीच भावात्मक एकता को कायम रखने में, देश-विदेश के नवीन ज्ञान-विज्ञान, शोध-चिंतन को दुनिया के हर कोने तक ही नहीं, आम जनता तक भी पहुँचाने में तथा दो भिन्न संस्कृतियों को नजदीक लाकर एक सूत्र में पिरोने में अनुवाद की महती भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। प्रो. जी. गोपीनाथन

के शब्दों में, 'अनुवाद मानव की मूलभूत एकता की व्यक्ति-चेतना एवं विश्व-चेतना के अद्वैत का प्रत्यक्ष प्रमाण है'। अतः मौजूदा शताब्दी में अनुवाद ने अपनी संकुचित साहित्यिक परिधि को लाँघकर प्रशासन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, तकनीकी, चिकित्सा, कला, संस्कृति, अनुसंधान, पत्रकारिता,जनसंचार, दूरस्थ शिक्षा, प्रतिरक्षा, विधि, व्यवसाय आदि हर क्षेत्र में प्रवेश कर यह साबित कर दिया है कि अनुवाद समकालीन जीवन की अनिवार्यता है।

हिन्दी अब बाजार-तंत्र की, व्यवसाय-व्यापार की, संचार-तंत्र की तथा शासकीय व्यवस्था की भाषा बन रही है। हिन्दी भाषा में और हिन्दी भाषा से अनुवाद की परम्परा अब सुदीर्घ होने के साथ-साथ पुख्ता और उल्लेखनीय भी होती जा रही है। **लोठार लुत्से** की बात पर गोर करें तो हमें हिन्दी,मराठी, बांग्ला, तमिल, तेलुगू या कन्नड़ लेखकों को उनकी भाषा के नहीं,भारतीय लेखक के रूप में देखना चाहिए। तभी भारतीय भाषाएँ भारत में और फिर विश्व में प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगी। उड़िया का लेखक सारे ओड़िशा में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ले तो यह कोई छोटी बात नहीं होगी, लेकिन यदि वह पूरे भारत में प्रतिष्ठा हासिल करे तो यह उससे भी बड़ी बात होगी और उसके लिए चुनौती भी। जो लेखक इस चुनौती को स्वीकार कर उसमें खरे उतरते हैं, वे सचमुच बड़े, बहुत बड़े लेखक सिद्ध होते हैं। इसके लिए जरूरी है कि भारतीय भाषाओं में अनुवाद की प्रक्रिया को तेज किया जाए। अनुवाद के बिना हमारा कोई भी लेखक यूरोप-अमेरिका तो दूर अपने ही देश में भारतीय लेखक के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए **फकीर मोहन सेनापति**, **प्रतिभा राय**, **सीताकान्त महापात्र** आदि अगर हिन्दी में अनुदित न होते तो क्या भारतीय लेखक के रूप में इतने बड़े पैमाने पर देश और दुनिया में स्वीकार्य हो सकते थे ? निश्चय ही नहीं। अनुवाद की ताकत पाकर ही कोई बड़ा लेखक और भी बड़ा सिद्ध होता और अपनी सामर्थ्य को दिग-दिगंत तक फैला पाता है। अनुवाद के बगैर वह, वह सिद्ध नहीं हो सकता, जो दरअसल वह होता है और यह काम अनुवादक ही कर सकता है। ऐसे में अनुवाद की महत्ता को जन-जन तक पहुँचाना और अनुवादकों को सम्मानजनक स्थान दिलाना जरूरी हो गया है ताकि भारतीय साहित्य और मनीषा को दूसरों तक पहुँचा कर राष्ट्रीय सेतु का निर्माण किया जा सके।

अनुवाद आज के व्यावसायिक युग की अपेक्षा ही नहीं अनिवार्यता भी बन गया है। यह एक सेतु है। सांस्कृतिक सेतु। सांस्कृतिक एकता, परस्पर आदान-प्रदान तथा 'विश्वकुटुम्बकम्' के स्वप्न को साकार करने की दृष्टि से अनुवाद की

भूमिका उल्लेखनीय रही है। इस प्रकार वर्तमान युग में अनुवाद की महत्ता और उपयोगिता केवल भाषा और साहित्य तक ही सीमित नहीं है,वह हमारी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय संहति और ऐक्य का माध्यम है, जो भाषायी सीमाओं को पार करके भारतीय चिन्तन और साहित्य की सर्जनात्मक चेतना की समरूपता के साथ-साथ, वर्तमान तकनीकी और वैज्ञानिक युग की अपेक्षाओं की पूर्तिकर हमारे ज्ञान-विज्ञान के आयामों को देश-विदेश में संपृक्त करती है। दूसरे शब्दों में, अनुवाद विश्व-संस्कृति,विश्व-बंधुत्व, एकता और समरसता स्थापित करने का एक ऐसा सेतु है जिसके माध्यम से विश्व ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में क्षेत्रीयतावाद के संकुचित एवंसीमित दायरे से बाहर निकल कर मानवीय एवं भावात्मक एकता के केन्द्र बिन्दु तक पहुँच सकता है और यही अनुवाद की आवश्यकता और उपयोगिता का सशस्त एवं प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आज जब सारा विश्व सामाजिक पुनर्व्यवस्था पर एक नये सिरे से विचार कर रहा है और व्यक्ति तथा समाज को एक नव्य स्वतंत्र दृष्टि मिली है, वहीं हम भी व्यक्ति और देश को विश्व के परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में अनुवाद का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। किसी समाज और देश की अभिव्यक्ति भाषा की सीमा के कारण एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रह जाए और दूसरों तक न पहुँच पाए तो विश्व स्तर पर एक नव्य सामाजिक पुनर्व्यवस्था की बात सार्थक कैसे हो सकती है!

अनुवाद की आवश्यकता

बीसवीं शताब्दी में देशों के बीच की दूरियाँ कम होने के परिणामस्वरूप विभिन्न वैचारिक धरातलों और आर्थिक, औद्योगिक स्तरों पर पारस्परिक भाषिक विनिमय बढ़ा है और इस विनिमय के साथ-साथ अनुवाद का प्रयोग और अधिक किया जाने लगा है। आज के वैज्ञानिक युग में अनुवाद बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। यदि हमें दूसरे देशों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना है तो हमें उनके यहाँ विज्ञान के क्षेत्र में, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में हुई प्रगति की जानकारी होनी चाहिए और यह जानकारी हमें अनुवाद के माध्यम से मिलती है। विश्व की कुछ श्रेष्ठ कृतियों को अनुवाद के कारण ही सम्मान मिला। **रवीन्द्रनाथ टैगोर** की 'गीतांजलि' को नोबेल पुरस्कार उनके द्वारा किए गए अनुवाद कार्य पर ही मिला। **शेक्सपियर**, **बर्नाड शा**, **अरस्तू**, **मार्क्स**, **गोर्की** आदि जैसे विश्व के महान् साहित्यकारों एवं दर्शनशास्त्रियों को हम अनुवाद के

माध्यम से ही जानते हैं। बहुत पहले हमारे राष्ट्रकवि **मैथिलीशरण गुप्त** ने 'अनुवाद की आवश्यकता' पर बल देते हुए स्पष्ट कर दिया था–

''सज्जनो, भगीरथ प्रयत्न फलें आपके
ले जा सकते हैं यहाँ गंगा से प्रवाह को।
आप अनुवाद की ही योजनाएँ कर दें
तो कह सकें हम सगर्व विश्व–भर के
वाङ्मय में जो है वह चुन लिया हमने
और जो हमारा अपना है, अतिरिक्त है।''

आधुनिक युग में जैसे–जैसे स्थान और समय की दूरियाँ कम होती गई वैसे–वैसे द्विभाषिकता की स्थितियों और मात्रा में वृद्धि हुई और इसके साथ–साथ अनुवाद में भी। अन्य भाषा–शिक्षण में अनुवाद विधि का प्रयोग न केवल पश्चिमी देशों में वरन् पूर्वी देशों में भी निरन्तर किया जाता रहा है। हम यहाँ जीवन और समाज के कुछ प्रमुख क्षेत्रों में अनुवाद की आवश्यकता की चर्चा करेंगे।

राष्ट्रीय एकता में अनुवाद की आवश्यकता

भारत जैसे विशाल राष्ट्र की एकता के प्रसंग में अनुवाद की आवश्यकता असंदिग्ध है। भारत की भौगोलिक सीमाएँ न केवल कश्मीर से कन्याकुमारी तक बिखरी हुई हैं बल्कि इस विशाल भूखण्ड में विभिन्न विश्वासों एवं सम्प्रदायों के लोग रहते हैं, जिनकी भाषाएँ एवं बोलियाँ एक–दूसरे से भिन्न हैं। भारत की अनेकता में एकता इन्हीं अर्थों में है कि विभिन्न भाषाओं, विभिन्न जातियों, विभिन्न सम्प्रदायों एवं विभिन्न विश्वासों के देश में भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता कहीं भी बाधित नहीं होती। एक समय में महाराष्ट्र का जो व्यक्ति सोचता है वही हिमाचल का निवासी भी चिन्तन करता है। भारत के हजारों वर्षों के अद्यतन इतिहास चिन्तन ने इस धारणा को पुष्ट किया है कि मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन से लेकर आज के प्रगतिशील आन्दोलन तक भारतीय साहित्य की दिशा एक रही है। यह बात अनुवाद के द्वारा ही सम्भव हो सकी कि जिस समय गोस्वामी **तुलसीदास** राम के चरित्र पर महाकाव्य लिख रहे थे, हिन्दी के समानान्तर उड़िया में **बलराम**, बांग्ला में **कृत्तिवास**, तेलुगु में **पोतना**, तमिल में **कम्बन** तथा हरियाणवी में **अहमदबख्श** अपने–अपने साहित्य में राम के चरित्र को नया रूप दे रहे थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में जिस साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरोध

की चिंगारी सुलगी थी उसका उत्कर्ष छायावादी दौर की विभिन्न भारतीय भाषाओं की कविता में मिलता है।

संस्कृति के विकास में अनुवाद की आवश्यकता

दुनिया के जिन देशों में विभिन्न जातियों एवं संस्कृतियों का मिलन हुआ है वहाँ सामासिक संस्कृति के निर्माण में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अनुवाद की परम्परा के अध्ययन से पता चलता है कि ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व रोमन लोगों का ग्रीक के लोगों से सम्पर्क हुआ जिसके फलस्वरूप ग्रीक से लैटिन में अनुवाद हुए। इसी प्रकार ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दी में स्पेन के लोग इस्लाम के सम्पर्क में आए और बड़े पैमाने पर योर पीय भाषाओं में अरबी का अनुवाद हुआ। भारत में भी विभिन्न जातियों एवं विश्वासों के लोग आए। आज की भारतीय संस्कृति, जिसे हम सामासिक संस्कृति कहते हैं, उसके निर्माण में हजारों वर्षों के विभिन्न धर्मों, मतों एवं विश्वासों की साधना छिपी हुई है। इन सभी मतों एवं विश्वासों को आत्मसात कर जिस भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है उसके पीछे अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका असंदिग्ध है।

साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की आवश्यकता

साहित्य के अध्ययन में अनुवाद का महत्त्व आज व्यापक हो गया है। साहित्य यदि जीवन और समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करता है तो विभिन्न भाषाओं के साहित्य के सामूहिक अध्ययन से किसी भी समाज, देश या विश्व की चिन्तन-धारा एवं संस्कृति की जानकारी मिलती है। अनुवाद का महत्त्व निम्नलिखित साहित्यों के अध्ययन में सहायक है-

भारतीय साहित्य का अध्ययन,

अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य का अध्ययन,

तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन।

भारतीय साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि विभिन्न साहित्यक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आन्दोलनों में हिन्दी एवं हिन्दीतर भाषा के साहित्यकारों का स्वर प्रायः एक जैसा रहा है। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन, स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा नक्सलबाड़ी आन्दोलनों को प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है।

अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के अनुवाद से ही यह तथ्य प्रकाश में आया कि दुनिया के विभिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य में ज्ञान का विपुल भण्डार छिपा हुआ है। भारत में अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य का अनुवाद तो भारत में सूफियों के दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रचलन के साथ ही शुरू हो गया था, किन्तु इसे व्यवस्थित स्वरूप आधुनिक युग में ही प्राप्त हुआ। **शेक्सपियर**, **डी.एच. लॉरेंस**, **मोपासाँ** तथा **सार्त्र** जैसे चिन्तकों की रचनाओं के अनुवाद से भारतीय जनमानस का साक्षात्कार हुआ एवं **कालिदास**, **रवीन्द्रनाथ टैगोर** एवं **प्रेमचन्द** की रचनाओं से विश्व प्रभावित हुआ।

दुनिया की विभिन्न भाषाओं के अनुवाद द्वारा ही तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में सहायता मिलती है। तुलनात्मक साहित्य द्वारा इस बात का पता लगाया जाता है कि देश, काल और समय की भिन्नता के बावजूद विभिन्न भाषाओं के रचनाकारों के साहित्य में साम्य और वैषम्य क्यों है ? अनुवाद के द्वारा ही जो तुलनीय है वह तुलनात्मक अध्ययन का विषय बनता है। प्रेमचन्द और गोर्की, निराला और इलियट तथा राजकमल चौधरी एवं मोपासाँ के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन अनुवाद के फलस्वरूप ही सम्भव हो सका।

व्यवसाय के रूप में अनुवाद की आवश्यकता

वर्तमान युग में अनुवाद ज्ञान की ऐसी शाखा के रूप में विकसित हुआ है जहाँ इज्जत, शोहरत एवं पैसा तीनों हैं। आज अनुवादक दूसरे दर्जे का साहित्यकार नहीं बल्कि उसकी अपनी मौलिक पहचान है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तेजी से हुए विकास के साथ भारतीय परिदृश्य में कृषि, उद्योग, चिकित्सा, अभियान्त्रिकी और व्यापार के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तनहुआ है। इन क्षेत्रों में प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली का भारतीयकरण कर इन्हें लोकोन्मुख करने में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध रोजगार के क्षेत्र में अनुवाद को महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन करता है। संविधान में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिए जाने के पश्चात् केन्द्र सरकार के कार्यालयों, सार्वजनिक उपक्रमों, संस्थानों और प्रतिष्ठानों में राजभाषा प्रभाग की स्थापना हुई, जहाँ अनुवाद कार्य में प्रशिक्षित हिन्दी अनुवादक एवं हिन्दी अधिकारी कार्य करते हैं। आज रोजगार के क्षेत्र में अनुवाद सबसे आगे है। प्रति सप्ताह अनुवाद से सम्बन्धित जितने पद यहाँ विज्ञापित होते हैं अन्य किसी भी क्षेत्र में नहीं।

नव्यतम ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में अनुवाद की आवश्यकता

औद्योगीकरण एवं जनसंचार के माध्यमों में हुए अत्याधुनिक विकास ने विश्व की दिशा ही बदल दी है। औद्योगिक उत्पादन, वितरण तथा आर्थिक नियन्त्रण की विभिन्न प्रणालियों पर पूरे विश्व में अनुसंधान हो रहा है। नई खोज और नई तकनीक का विकास कर पूरे विश्व में औद्योगिक क्रान्ति मची हुई है। इस क्षेत्र में होने वाले अद्यतन विकास को विभिन्न भाषा-भाषी राष्ट्रों तक पहुँचाने में भाषा एवं अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों को तीव्र गति से पूरे विश्व में पहुँचा देने का श्रेय नव्यतम विकसित जनसंचार के माध्यमों को है। आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, कृषि तथा व्यवसाय आदि सभी क्षेत्रों में जो कुछ भी नया होता है वह कुछ ही पलों में टेलीफोन, टेलेक्स तथा फैक्स जैसी तकनीकों के माध्यम से पूरे विश्व में प्रचारित एवं प्रसारित हो जाता है। आज जनसंचार के माध्यमों में होने वाले विकास ने हिन्दी भाषा के प्रयुक्ति-क्षेत्रों को विस्तृत कर दिया है। विज्ञान, व्यवसाय, खेलकूद एवं विज्ञापनों की अपनी अलग शब्दावली हैं। संचार माध्यमों में गतिशीलता बढ़ाने का कार्य अनुवाद द्वारा ही सम्भव हो सका है तथा गाँव से लेकर महानगरों तक जो भी अद्यतन सूचनाएँ हैं वे अनुवाद के माध्यम से एक साथ सबों तक पहुँच रही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि अनुवाद ने आज पूरे विश्व को एक सूत्र में पिरो दिया है।

अनुवाद की प्रक्रिया, स्वरूप एवं सीमाएँ

अनुवाद के स्वरूप, अनुवाद-प्रक्रिया एवं अनुवाद की सीमाओं के बारे में की चर्चा की जा रही है। सबसे महत्त्वपूर्ण है- 'अनुवाद की प्रक्रिया'। अनुवाद के व्यावहारिक पहलु को जानने के लिए अनुवाद-प्रक्रिया को समझना जरूरी है। इसलिए प्रस्तुत अध्याय में **नाइडा**, **न्यूमार्क** और **बाथगेट**- तीनों विद्वानों द्वाराप्रतिपादित अनुवाद-प्रक्रिया को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

अनुवाद के स्वरूप

अनुवाद के स्वरूप के सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वज्जन अनुवाद की प्रकृति को ही अनुवाद का स्वरूप मानते हैं, जब कि कुछ भाषाविज्ञानी अनुवाद के प्रकार को ही उसके स्वरूप के अन्तर्गत स्वीकारते हैं। इस सम्बन्ध में **डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव** का मत ग्रहणीय है। उन्होंने अनुवाद

के स्वरूप को सीमित और व्यापक के आधार पर दो वर्गों में बाँटा है। इसी आधार पर अनुवाद के सीमित स्वरूप और व्यापक स्वरूप की चर्चा की जा रही है।

अनुवाद का सीमित स्वरूप

अनुवाद के स्वरूप को दो संदर्भों में बाँटा जा सकता है-

अनुवाद का सीमित स्वरूप तथा

अनुवाद का व्यापक स्वरूप।

अनुवाद की साधारण परिभाषा के अंतर्गत पूर्व में कहा गया है कि अनुवाद में एक भाषा के निहित अर्थ को दूसरी भाषा में परिवर्तित किया जाता है और यही अनुवाद का सीमित स्वरूप है। सीमित स्वरूप (भाषांतरण संदर्भ)में अनुवाद को दो भाषाओं के मध्य होने वाला 'अर्थ' का अंतरण माना जाता है। इस सीमित स्वरूप में अनुवाद के दो आयाम होते हैं-

पाठधर्मी आयाम तथा,

प्रभावधर्मी आयाम।

पाठधर्मी आयाम के अंतर्गत अनुवाद में स्रोत-भाषा पाठ केंद्र में रहता है, जो तकनीकी एवं सूचना प्रधान सामग्रियों पर लागू होता है। जबकि प्रभावधर्मी अनुवाद में स्रोत-भाषा पाठ की संरचना तथा बुनावट की अपेक्षा उस प्रभाव को पकड़ने की कोशिश की जाती है, जो स्रोत-भाषा के पाठकों पर पड़ा है। इस प्रकार का अनुवाद सृजनात्मक साहित्य और विशेषकर कविता के अनुवाद में लागू होता है।

अनुवाद का व्यापक स्वरूप

अनुवाद के व्यापक स्वरूप (प्रतीकांतरण संदर्भ) में अनुवाद को दो भिन्न प्रतीक व्यवस्थाओं के मध्य होने वाला 'अर्थ' का अंतरण माना जाता है। ये प्रतीकांतरण तीन वर्गों में बाँटे गए हैं-

अंत:भाषिक अनुवाद (अन्वयांतर),

अंतर भाषिक (भाषांतर),

अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद (प्रतीकांतर)।

'अंत:भाषिक' का अर्थ है एक ही भाषा के अंतर्गत। अर्थात् अंत:भाषिक अनुवाद में हम एक भाषा के दो भिन्न प्रतीकों के मध्य अनुवाद करते हैं।

उदाहरणार्थ, हिन्दी की किसी कविता का अनुवाद हिन्दी गद्य में करते हैं या हिन्दी की किसी कहानी को हिन्दी कविता में बदलते हैं तो उसे अंत:भाषिक अनुवाद कहा जाएगा। इसके विपरीत अंतर भाषिक अनुवाद में हम दो भिन्न-भिन्न भाषाओं के भिन्न-भिन्न प्रतीकों के बीच अनुवाद करते हैं।

अंतर भाषिक अनुवाद में अनुवाद को न केवल स्रोत-भाषा में लक्ष्य-भाषा की संरचनाओं, उनकी प्रकृतियों से परिचित होना होता है, वरन् उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं आदिकी सम्यक् जानकारी भी उसके लिए बहुत जरूरी है। अन्यथा वह अनुवाद के साथ न्याय नहीं कर पाएगा। अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद में किसी भाषा की प्रतीक व्यवस्था से किसी अन्य भाषेत्तर प्रतीक व्यवस्था में अनुवाद किया जाता है।

अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद में प्रतीक-1 का संबंध तो भाषा से ही होता है, जबकि प्रतीक-2 का संबंध किसी दृश्य माध्यम से होता है। उदाहरण के लिए अमृता प्रीतम के 'पिंजर' उपन्यास को हिन्दी फिल्म 'पिंजर' में बदला जाना अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद है।

अनुवाद-प्रक्रिया

'प्रक्रिया' शब्द अंग्रेजी के 'process' का पर्याय है, जो 'प्रक्रिया' के संयोग से बनकर 'विशिष्ट क्रिया' का बोध कराता है। किसी कार्य की प्रक्रिया या विशिष्ट क्रिया को जानने का अर्थ होता है, कार्य को कैसे सम्पादित किया जाए। इस अर्थ में अनुवाद कर्म में हम स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा तक पहुँचने के लिए जिन क्रमबद्ध सोपानों से होकर गुजरते हैं, उन सुनिश्चित व सोद्देश्य सोपानों को 'अनुवाद-प्रक्रिया' कहा जाता है। अनुवाद प्रक्रिया की चर्चा की शुरुआत ख्यात भाषाविज्ञानी नोअ मचॉमस्की (Noam Chomsky) के निष्पादक व्याकरण (GenerativeGrammar) से करते हैं।

नोअम चॉमस्की (Noam Chomsky) की गहन संरचना एवं तल संरचना

चॉमस्की अपने निष्पादक व्याकरण द्वारा वाक्य के संरचनात्मक विवरण को निर्धारित करते हैं, जिसे आरेख के द्वारा समझा जा सकता है–

अनुवाद–स्वरूप, प्रक्रिया एवं सीमाएँ

उनके अनुसार संरचना की दृष्टि से भाषा के दो तत्त्व होते हैं–

तल संरचना और,

गहन संरचना

तल संरचना से तात्पर्य है भाषा की बाहरी स्वन प्रक्रिया तथा गहनसंरचना से आशय है तल संरचना में निहित अर्थ तत्त्व। चॉमस्की गहन संरचना को एक नैसर्गिक अवयव मानते हुए भाषाओं के बीच अन्तर को केवल तल संरचना का अन्तर मानते हैं। चॉमस्की ने यहाँ जो आधार से गहन संरचना और पुनः गहन संरचना से तल संरचना की दोहरी गतिविधि की विवेचना की है, वह अनुवाद-प्रक्रिया में स्रोत-भाषा के विकोडीकरण तथा लक्ष्य-भाषा में उसके पुनः कोडीकरण को समझने में सहायक है। अतः ऊपर के आरेख को अनुवाद की प्रक्रिया में निम्नलिखितानुसार बदला जा सकताहै–

अनुवाद–स्वरूप, **प्रक्रिया एवं सीमाएँ**

नाइडा (Nida) **द्वारा प्रतिस्थापित अनुवाद-प्रक्रिया**

नाइडा ने चॉमस्की के 'गहन संरचना' एवं 'तल संरचना' के आधार पर अनुवाद-प्रक्रिया में निम्नलिखित तीन सोपानों का उल्लेख किया है–

विश्लेषण (Analysis),

अन्तरण (Transference),

पुनर्गठन (Restructuring)।

नाइडा द्वारा प्रतिस्थापित अनुवाद-प्रक्रिया को निम्नलिखित आरेख के माध्यम से भलीभाँति समझा जा सकता है–

नाइडा द्वारा प्रतिस्थापित अनुवाद-प्रक्रिया

नाइडा द्वारा प्रतिस्थापित अनुवाद-प्रक्रिया का मूल आधार भाषा विश्लेषण के सिद्धान्त है। उनके मतानुसार पहले सोपान में अनुवादक मूल-पाठ या स्रोत-भाषा का विश्लेषण करता है। नाइडा मूल-पाठ के विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित भाषा सिद्धान्त की बात करते हैं। यह विश्लेषण भाषा के दोनों स्तर, बाह्य संरचना पक्ष तथा आभ्यन्तर अर्थपक्ष पर होता है, जिसमें मूल-पाठ का शाब्दिक अनुवाद तैयार हो जाता है। विश्लेषण से प्राप्त अर्थबोध का लक्ष्य-भाषा में अन्तरण अनुवाद का दूसरा सोपान होता है। यह अन्तरण सोपान में स्रोत-भाषा के सन्देश को लक्ष्य-भाषा की भाषिक अभिव्यक्ति में पुनर्विन्यस्त किया जाता है। तीसरे और अन्तिम सोपान में लक्ष्य-भाषा की अभिव्यक्ति प्रणाली और कथन रीति के अनुसार उसका निर्माण होता है। नाइडा के मतानुसार अनुवादक को

'स्रोत-भाषा पाठ में निहित अर्थ या सन्देश के विश्लेषण तथा लक्ष्य-भाषा में उसके पुनर्गठन' दोध्रुवों के मध्य निरन्तर सम्यक् और सटीक तालमेल बिठाना होता है।

न्यूमार्क (New mark) द्वारा प्रतिस्थापित अनुवाद प्रक्रिया

न्यूमार्क द्वारा प्रतिस्थापित अनुवाद-प्रक्रिया नाइडा के सोपानों से मिलती जुलती अवश्य है, किन्तु वह नाइडा के चिन्तन से अधिक व्यापक है। नीचे दिए गए आरेख से यह बात स्पष्ट हो जाएगी :21 3Ñ- अन्तरक्रमिक अनुवाद ÑÑ-(आरेख–5)न्यूमार्क अनुवाद-प्रक्रिया को दो स्तरों पर आँकते हैं :1- पहला स्तर है–अन्तरक्रमिक अनुवाद, जिसे खंडित रेखा द्वारा जोड़ा गया है, क्योंकि अन्तरक्रमिक अनुवाद शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद होता है, जो कि भ्रामक है। 2- दूसरा स्तर है–मूल पाठ का अर्थ बोधन और लक्ष्य-भाषा में उस अर्थ का अभिव्यक्तिकरण। न्यूमार्क द्वारा प्रस्तावित बोधन की प्रक्रिया, नाइडा के विश्लेषण की प्रक्रिया से इस दृष्टि से भिन्न है कि इसमें विश्लेषण से प्राप्त अर्थ के साथ-साथ अनुवादक द्वारा मूल-पाठ की व्याख्या का भाव भी सम्मिलित है।

बाथगेट (Bathgate) का चिन्तन

अनुवाद-प्रक्रिया के सम्बन्ध में बाथगेट का चिन्तन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। बाथगेट ने अनुवाद-प्रक्रिया में जिन सोपानों की परिकल्पना की है, वह सुचिन्तित, आधुनिक एवं वैज्ञानिक हैं। ये सोपान हैं–

स्रोत-भाषा,
समन्वयन,
विश्लेषण,
समझबोधन,
अभिव्यक्तिकरण,
स्रोत-भाषा,
पारिभाषिक अभिव्यक्ति,
पुनर्गठन,
पुनरीक्षण,
पर्यालोचन,
लक्ष्य-भाषा।

कहने की जरूरत नहीं कि ये सभी सोपान नाइडा और न्यूमार्क द्वारा प्रस्तावित सोपानों से अधिक संगत और वैज्ञानिक हैं। परन्तु इसमें दिया गया पहला सोपान 'समन्वयन' और अन्तिम सोपान 'पर्यालोचन', दोनों को अवान्तर परिकल्पना कहा जा सकता है, क्योंकि न तो स्रोत-भाषा पाठ के समन्वयनकी जरूरत है न ही पुनरीक्षण के बाद पर्यालोचन की आवश्यकता। 'पुनरीक्षण' ही एक प्रकार का 'पर्यालोचन' है।

अनुवाद-प्रक्रिया में नाइडा, न्यूमार्क और बाथगेट

अनुवाद-प्रक्रिया एक आन्तरिक प्रक्रिया है, जो अनुवादक के मन-मस्तिष्क में घटित होती है। इसे शब्दबद्ध करने के पीछे यह बतलाना है कि अनुवाद कर्म में सामान्यत: अनुवादक को कौन-कौन से चरण से होकर गुजरना होता है। साधारणत: अनुवाद कर्म में निम्नलिखित पाँच सोपान होते हैं–

स्रोत-भाषा,
विश्लेषण,
बोधन,
भाषिक अन्तरण,
पुनर्गठन,
पुनरीक्षण,
लक्ष्य-भाषा।

उपर्युक्त प्रक्रिया में न्यूमार्क, नाइडा एवं बाथगेट द्वारा प्रस्तावित सोपानों को शामिल किया गया है। अब अनुवाद के इन सोपानों के व्यावहारिक प्रयोग के लिए 'होरी की गाय अभी नहीं आई है' का अंग्रेजी अनुवाद करते हैं। यह पंक्ति प्रेमचन्द की महान् कृति 'गोदान' का निचोड़ है, जो भारतीय किसान की तत्कालीन व वर्तमान स्थिति को दर्शाती है। 'गोदान की विषय-वस्तु से परिचित अनुवादकों के लिए इस पंक्ति का अनुवाद करना आसान होगा जबकि इसके विपरीत 'गोदान' से अपरिचित अनुवादक के लिए अपेक्षाकृत कठिन हो सकता है। वह निहित सन्दर्भ को न समझकर, इसका शाब्दिक अनुवाद कर देगा–'Hori's cow has not come yet.' जो कि सही अनुवाद नहीं है। मगर 'गोदान' की विषय वस्तु से परिचित अनुवादक जब इसका अनुवाद करेगा, तो वह निम्नलिखित सोपानों से होकर गुजरेगा–

स्रोत-भाषा

होरी की गाय अभी नहीं आई है।

1. विश्लेषण–Hori's cow has not come yet-

2. बोधन–Hori* dream has not fulfilled yet-

3. भाषिक अन्तरण–Hori, i-e-Indian farmers are still there where they were-

4. पुनर्गठन–No change occured in Indian farmers' status-

5. पुनरीक्षण–Status of Indian farmers has not been changed yet-

लक्ष्य-भाषा

Status of Indian farmers has not been changed yet-

क्योंकि 'होरी की गाय अभी नहीं आई है' इस पंक्ति के माध्यम से किसानों की दुर्दशा, उनकी मजबूरी और त्रासदी को अभिव्यक्त किया गया है। आज भी हजारों किसान लाचारी की जिंदगी जीने को विवश हैं। अनुवाद में यही विवशता व लाचारी झलकनी चाहिए।

उपर्युक्त प्रस्तावित प्रक्रिया अनुवाद कर्म में निहित भाषिक अन्तरण की प्रक्रिया को समझने में जरूर सहायक हैं, मगर जरूरी नहीं कि हर अनुवादक अनुवाद के दौरान इन सब प्रक्रियाओं से होकर गुजरे। यह अनुवादक के ज्ञान, कौशल और अनुभव पर निर्भर करता है और हो सकता है कि कोई अनुभवी अनुवादक इन सोपानों को एक छलांग में पार कर ले। दुभाषिया इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। दरअसल अनुवाद का चिन्तन क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इसे किसी यंत्रवत् प्रक्रिया की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

अनुवाद की सीमाएँ

अनुवाद और अनुवाद-प्रक्रिया की जिन विलक्षणताओं को अनुवाद विज्ञानियों ने बार-बार रेखांकित किया है, उन्हीं के परिपार्श्व से हिन्दी अनुवाद की अनेकानेक समस्याएँ भी उभरी हैं। बकौल प्रो. बालेन्दु शेखर तिवारी हिन्दी के उचित दाय की संप्राप्ति में जिन बहुत सारी समस्याओं को राह का पत्थर समझा जा रहा है उनमें अनुवाद की समस्याएँ अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं।

अनुवाद से भाषा का संस्कार होता है, उसका आधुनिकीकरण होता है। वह दो भिन्न संस्कृतियों को जोड़ने वाला संप्रेषण सेतु है। एक भाषा को दूसरी भाषा में अन्तरण की प्रक्रिया में अनुवादक दो भिन्न संस्कृति में स्थित समतुल्यता की खोज करता है। एतदर्थ उसे पर्यायवाची शब्दों के विविध रूपों से जूझना पड़ता है। इसी खोज और संतुलन बनाने की प्रक्रिया में कभी-कभीएक ऐसा भी मोड़ आता है जहाँ अनुवादक को निराश होना पड़ता है। समतुल्यता या पर्यायवाची शब्द हाथ न लगने की निराशा। अननुवाद्यता (untranslatability) की यही स्थिति अनुवाद की सीमा है। जरूरी नहीं कि हर भाषा और संस्कृति का पर्यायवाची दूसरी भाषा और संस्कृति में उपलब्ध हो। प्रत्येक शब्द की अपनी सत्ता और सन्दर्भ होता है। कहा तो यह भी जाता है कोई शब्द किसी का पर्यायवाची नहीं होता। प्रत्येक शब्द एवं रूप का अपना-अपना प्रयोग गत अर्थ-सन्दर्भ सुरक्षित है। इस दृष्टि से एक शब्द को दूसरे की जगह रख देना भी एक समस्या है। स्पष्ट है कि हर रूप की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं और इन समस्याओं के कारण अनुवाद की सीमाएँ बनी हुई हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए **कैटफोर्ड** ने अनुवाद की सीमाएँ दो प्रकार की बतायी हैं-

भाषापरक सीमाएँ और

सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ।

भाषापरक सीमा से अभिप्राय यह है स्रोत-भाषा के शब्द, वाक्यरचना आदि का पर्यायवाची रूप लक्ष्य-भाषा में न मिलना। सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के अन्तरण में भी काफी सीमाओं का सामना करना पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक भाषा का सम्बन्ध अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। परन्तु **पोपोविच** का कहना है कि भाषापरक समस्या दोनों भाषाओं की भिन्न संरचनाओं के कारण उठ सकती है, किन्तु सामाजिक-सांस्कृतिक समस्या सर्वाधिक जटिल होती है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि भाषापरक और सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ एक-दूसरे के साथ गुँथी हुई हैं, अतः इसका विवेचन एक-दूसरे को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। बहरहाल, इस चर्चा से यह स्पष्ट हो गया कि अनुवाद की सीमाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

भाषापरक सीमाएँ,

सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ और

पाठ-प्रकृतिपरक सीमाएँ।

अनुवाद की भाषापरक सीमाएँ

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना एवं प्रकृति होती है। इसीलिए स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के भाषिकरूपों में समान अर्थ मिलने की स्थिति बहुत कम होती है। कई बार स्रोत-भाषा के समान वाक्यों में सूक्ष्म अर्थ की प्राप्ति होती है, लेकिन उनका अन्तरण लक्ष्य-भाषा में कर पाना सम्भव नहीं होता। उदाहरणार्थ इन दोनों वाक्यों को देखें–'लकड़ी कट रही है' और 'लकड़ी काटी जा रही है'। सूक्ष्मअर्थ भेद के कारण इन दोनों का अलग-अलग अंग्रेजी अनुवाद संभव नहीं होगा। फिर किसी कृति में अंचल-विशेष या क्षेत्र-विशेष के जन-जीवन का समग्र चित्रण अपनी क्षेत्रीय भाषा या बोली में जितना स्वाभाविक या सटीक हो पाता है उतना भाषा के अन्य रूप में नहीं। जैसे कि **फणीश्वरनाथ रेणु** का 'मैला आँचल'। इस उपन्यास में अंचल विशेष के लोगों की जो सहज अभिव्यक्ति मिलती है उसे दूसरी भाषा में अनुवाद करना बहुत कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त भाषा की विभिन्न बोलियाँ अपने क्षेत्रों की विशिष्टता को अपने भीतर समेटे होती हैं। यह प्रवृत्ति ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि के स्तरों पर देखी जा सकती है। जैसे चीनी, जापानी आदि भाषाएँ ध्वन्यात्मक न होने के कारण उनमें तकनीकी शब्दों को अनुदित करना श्रम साध्य होता है। अनुवाद करते समय नामों के अनुवाद की समस्या भी सामने आती है। लिप्यन्तरण करने पर उनके उच्चारण में बहुत अन्तर आ जाता है। स्थान विशेष भी भाषा को बहुत प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए एस्किमो भाषा में बर्फ के ग्यारह नाम हैं, जिसे दूसरी भाषा में अनुवाद करना सम्भव नहीं है।

वास्तव में हिन्दी में अनुवाद की समस्याएँ इस भाषा के मूलभूत चरित्रकी न्यूनताओं और विशिष्टताओं से जुड़ी हुई हैं। वस्तुतः हिन्दी जैसी विशालहृदय भाषा में अनुवाद की समस्याएँ अपनी अलग पहचान रखती हैं। भिन्नार्थकता, न्यूनार्थकता, आधिकारिकता, पदाग्रह, भिन्नाशयता और शब्दविकृति जैसे दोष ही हिन्दी में अनुवाद कार्य के पथबाधक नहीं हैं, बल्कि हिन्दी के अनुवादक को अपनी रचना की संप्रेषणीयता की समस्या से भीजूझना पड़ता है। निम्नलिखित आरेख से बातें स्पष्ट हो जाएगीं-

अनुवाद की भाषापरक सीमाएँ,
अनुवाद की सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ,
अनुवाद की सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ।

उपर्युक्त संस्कृति-चक्र से स्पष्ट है कि भाषा और संस्कृति का अटूट सम्बन्ध होता है। अनुवाद तो दो भिन्न संस्कृतियों को जोड़ने वाला संप्रेषण-सांस्कृतिक सेतु है। एक भाषा को दूसरी भाषा में अन्तरण की प्रक्रिया में अनुवादक दो भिन्न संस्कृति में स्थित समतुल्यता की खोज करता है। वास्तव में मानव अभिव्यक्ति के एक भाषा रूप में भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्वों का समावेश हो जाता है, जो एक भाषा से दूसरी भाषा में भिन्न होते हैं। अतः स्रोत-भाषा के कथ्य को लक्ष्य-भाषा में पूर्णतया संयोजित करने में अनुवादक को कई बार असमर्थता का सामाना करना पड़ता है। यह बात अवश्य है कि समसांस्कृतिक भाषाओं की अपेक्षा विषम सांस्कृतिक भाषाओं के परस्पर अनुवाद में कुछ हद तक अधिक समस्याएँ रहती हैं। 'देवर-भाभी', 'जीजा-साली' का अनुवाद यरोपीय भाषा में नहीं हो सकता क्योंकि भाव की दृष्टि से इसमें जो सामाजिक सूचना निहित है वह शब्द के स्तर पर नहीं आँकी जा सकती। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के 'कर्म' का अर्थ न तो 'action' हो सकता है और न ही 'performance' क्योंकि 'कर्म' से यहाँ पुनर्जन्म निर्धारित होता है जबकि 'action' और 'performance' में ऐसा भाव नहीं मिलता।

अनुवाद की पाठ-प्रकृतिपरक सीमाएँ

अनुवाद की आवश्यकता का अनुभव हिन्दी में इसी कारण तीव्रता से किया गया कि भाषाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान से हिन्दी को समृद्ध होने में सहायता मिलेगी और भाषा के वैचारिक तथा अभिव्यंजनामूलक स्वरूप में परिवर्तन आएगा। हिन्दी में अनुवाद के महत्त्व को मध्यकालीन टीकाकारों ने पांडित्य के धरातल पर स्वीकार किया था, लेकिन यूरोपीय सम्पर्क के पश्चात्हिन्दी को अनुवाद की शक्ति से परिचित होने का वृहत्तर अनुभव मिला। हिन्दी में अनुवाद की परम्परा भले ही अनुकरण से प्रारम्भ हुई, लेकिन आज ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अनुवाद की विभिन्न समस्याओं ने हिन्दी का रास्ता रोक रखा है। विभिन्न विषयों तथा कार्यक्षेत्रों की भाषा विशिष्ट प्रकार की होती है। प्रशासनिक क्षेत्र में कई बार 'sanction' और 'approval'का अर्थ सन्दर्भ के अनुसार एक जैसा लगता है, अतः वहाँ दोनों शब्दों में भेद कर पाना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार जीवविज्ञान में 'poison' और 'venom' शब्दों का अर्थ एक है, किन्तु ये अपने विशिष्ट गुणों के कारण भिन्न हो जाते हैं। अतः पाठ की प्रकृति के अनुसार पाठ का विन्यास करना पड़ता है। जब तक पाठ की

प्रकृति और उसके पाठक का निर्धारण नहीं हो पाता तब तक उसका अनुवाद कर पाना सम्भव नहीं हो पाता।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हर भाषा की अपनी संरचनात्मक व्यवस्था और सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा होती है। इसके साथ-साथ विभिन्न प्रयोजनों में प्रयुक्त होने के कारण उसका अपना स्वरूप भी होता है। यही कारण है कि अनुवाद की प्रक्रिया में स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की समतुल्यता के बदले उसका न्यूनानुवाद या अधिअनुवाद ही हो पाता है।

2

पत्रकारिता और अनुवाद

पत्रकारिता में अनुवाद की समस्या से परिचय कराने की दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय 'पत्रकारिता और अनुवाद' में समाचार माध्यमों के लिए लिखे जाने वाले समाचारों के अनुवाद की समस्या की चर्चा की गई है। इसके साथ ही पत्रकारिता की भाषा के अनुवाद, शैली, शीर्षक-उपशीर्षक, मुहावरे एवं लाक्षणिक पदबंधों, पारिभाषिक शब्दावली के अनुवाद की समस्या और उसके समाधान पर विस्तार से समझा गया है। साथ ही पत्रकारिता में पारिभाषिक शब्दावली के अनुवाद की समस्या और उसके समाधान एवं पारिभाषिक शब्दावाली के कुछ नमूने पर भी सविस्तार से चर्चा की गई है।

पत्रकारिता और अनुवाद का सामान्य परिचय

यों तो पत्रकार को एकाधिक भाषाओं का ज्ञान होना अपेक्षित होता है किन्तु भारत के सन्दर्भ में क्षेत्रीय भाषाओं की पत्रकारिता में अनुवाद का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अत: हिंदी अथवा अन्य किसी भारतीय भाषा के समाचारपत्र की भाषा के ज्ञान के अतिरिक्त अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान होना बहुत जरूरी है। इसका कारण है कि अभी तक भाषाई पत्र प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई), यूनाईटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यूएनआई) जैसी समाचार एजेंसियों पर निर्भर हैं। रायटर आदि विदेशी समाचार एजेंसियां भी अंग्रेजी के माध्यम से ही समाचार देती हैं। इसके अतिरिक्त भाषाई पत्रिकाओं को भी बहुत सी रचनाएँ, बहुत से लेख और फीचर

अंग्रेजी में ही प्राप्त होते हैं। अत: हिंदीभाषाई पत्रकार वास्तव में एक अनुवादक के रूप में ही प्राय: कार्य करता है।

अनुवाद की यह प्रक्रिया एकतरफा नहीं है। हिंदी इलाकों की बहुत सी ऐसी खबरें होती हैं, जिनका हिंदी से अंग्रेजी में प्रतिदिन अनुवाद किया जाता है। अगर हिंदी एजेंसियां अंग्रेजी अनुवाद करती हैं तो अंग्रेजी एजेंसियां भी हिंदी इलाकों की खबरों का हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद करती हैं। हिंदी एजेसियों को अनुवाद करना इसलिए मजबूरी है कि हिंदी एजेसियों के संवाददाता गैर हिंदी इलाकों में नहीं हैं और विदेशों में भी नहीं हैं। किसी इलाके की खबरें सिर्फ इसलिए हम देने से मना नहीं कर सकते कि वहां हमारा अपना यानि हिंदी का संवाददाता नहीं है। इसलिए उन इलाकों से अंग्रेजी में आने वाली खबरों का हिंदी में अनुवाद करना पड़ता है।

पत्रकारिता में अनुवाद की समस्याएँ

पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुवाद प्रत्येक समय आवश्यकता होती है। किंतुयह विडंबना ही है कि हमारे हिंदी अनुवादकों के पास अनुवाद के लिए अधिक समय नहीं होता है। उन्हें तो दी गई सामग्री का तुरंत अनुवाद और प्रकाशन करना होता है। यह भी चिंतनीय है कि यह समाचार किसी भी विषय से संबद्ध हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि अनुवादक को उस विषय की पूर्ण जानकारी ही हो। इसी प्रकार यह भी संभव है कि कभी-कभी कथ्य का संपूर्णतया अंतर न हो सके, क्योंकि प्रत्येक भाषा का पाठक वर्ग तथा सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ अलग ही होते हैं। इस प्रकार अनुवादकों के सामने कई समस्या सफल पत्रकारिता के लिए बाधाएँ बनती हैं, जिसमें प्रमुख: हैं।

भाषा की समस्या

पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुवाद करते समय सबसे पहले भाषा संरचना की समस्या देखने को मिलती हैं। भाषा के संदर्भ में दो-तीन प्रश्न हमारे सामने उठते हैं- एक पत्रकारिता की भाषा स्वरूप क्या है? क्या पत्रकारिता का भाषा स्वरूप विशिष्ट है? हाँ, अवश्य पर विज्ञान और आयुर्विज्ञान की भाषा के समान तकनीकी है और न तो अधिक साहित्यिक ही है और न ही सामान्य बोलचाल की भाषा। इसे हम किसी सीमा तक लिखित और औपचारिक भाषा के समकक्ष तथा निश्चित प्रयोजनमूलक स्तर पर से संबद्ध भाषा मान सकते हैं। हम इसे

संपादित शैली में प्रस्तुत भाषा मान सकते हैं, जहां प्रत्येक विषय सुविचारित है, प्रत्येक विषय के लिए निश्चित स्थान, स्तंभ और पृष्ठ हैं। कभी-कभी स्थिति विशेष में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। प्राय: पत्र की भाषा में लोक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली का प्राचुर्य रहता है। पत्रकारिता की भाषा में सर्वजन सुबोधता तथा प्रयोगधर्मिता का गुण होना आवश्यक है।

प्रत्येक भाषा की निजी संरचना होती है। अनुवादक को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे हिंदी की प्रकृति के अनुकूल और उपर्युक्त पत्रकारिता की भाषा की विशेषताओं को ध्यान में रखकर अनुवाद करने की चेष्टा करनी चाहिए। जिससे सहजता और स्वाभाविकता बनी रहे। हिंदी में अनुवाद करते समय अंग्रेजी वाक्य रचना का अनुसरण करने की अपेक्षा वाक्य को जटिल तथा अस्पष्ट न बनाकर, उसे दो-तीन छोटे वाक्यों में तोड़ना अच्छा रहता है। उदाहरण के लिए-In the pre independence era, Indian newspaperscovered only politics, for the majority of them at that timewere fighting for country's freedom-''स्वातंर्त्य-पूर्व युग में, भारतीय समाचार पत्र राजनीतिक चर्चा तक सीमित थे। उनमें से अधिकांश, उस समय देश की स्वतंत्रता के लिए जूझ रहे थे।" उपर्युक्त उदाहरण में एक दीर्घ वाक्य को दो वाक्यों में तोड़ने से कथन में सौंदर्य और आक्रामकता का समावेश हुआ है।

मुहावरों, शैली और लाक्षणिक पदबंधों की समस्या

प्राय: अनुवादक अंग्रेजी मुहावरों, शैली, लाक्षणिक पदबंधों आदि के समानांतर हिंदी में मुहावरें आदि नहीं ढूंढते। शाब्दिक भ्रष्ट अनुवाद करने के कारण एक अस्वाभाविकता का भाव बना रहता है। उदाहरण के लिए-Put him behind the bars-उसे जेल के सीखंचों के पीछे भेज दिया जाए। We were stunned with astonishment- हम आश्चर्य से स्तब्ध रह गए। उपर्युक्त उदाहरणों में हिंदी की स्वाभाविक प्रवृत्ति का हनन करते हुए अंग्रेजी का शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इससे एक फालतूपन का आभास होता है।

पत्रकारिता में साधारण ज्ञान, तुरंत निर्णय की समस्या

उप संपादकों आदि को रात-भर बैठकर प्राप्त होने वाले समाचारों को साथ-साथ हिंदी में अनुदित करके देना होता है। समय के एक-एक मिनट का

इतना हिसाब होता है कि अंग्रेजी में प्राप्त सामग्री में कोई शब्द अभिव्यक्ति समझ न आने पर शब्दकोश, ज्ञानकोश आदि देखने या सोचने का वक्त भी प्रायः नहीं होता। किंतु पत्रकार बहुत कुशल अनुवादक होते हैं, एकदम नए शब्द का भाव समझकर ही वे काफी अच्छे हिंदी समानक दे देते हैं और वही हिंदी समानक या प्रतिशब्द जनता में, पाठकों में चल भी पड़ते हैं। लेकिन कभी-कभी पत्रकार की असावधानी या उसके अज्ञान से अनुवाद में भंयकर भूलें हो जाती हैं, जैसे-एक बार एक उपसंपादक ने (salt) का अनुवाद 'नमक समझौता' कर दिया जबकि वहां 'साल्ट' का अर्थ 'नमक' नहीं बल्कि StrategicArms Limitation Treaty था। इस प्रकार के अन्य उदाहरण देखा जा सकता है-Legend of Glory- गौरव गाथा,Limitless-सीमाहीन, LovelyBaby- सलोना शिशु, The Knight of Kabul- काबुल का वीर अतः पत्रकार अनुवादक को साधारण ज्ञान तथा विषय को समझने की क्षमता होना परमावश्यक है।

शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद की समस्या

समाचार पत्रों के अनुवाद में स्वाभाविकता और बोधगम्यता होना बहुत आवश्यक है। यहां अनुवादक के तकनीकी रूप से सही होने से भी काम नहीं चलता-उसका सरल और जानदार होना भी जरूरी है। इस संदर्भ में नवभारत टाइम्स मुंबई के मुख्य संवाददाता **श्रीलाल मिश्र** का कहना है- प्रायः यह देखा गया है कि कुछ उप संपादक अनुवाद का ढांचा तैयार करते हैं। शब्दकोश से शब्दों का अर्थ देख लेते हैं। येन केन प्रकारेण वह एक वाक्य तैयार कर देते हैं। तकनीकी दृष्टि से उनका अनुवाद प्रायः सही भी रहता है। उसे सही अनुवाद की संज्ञा दी जा सकती है, लेकिन उनमें जान नहीं रहती है। वाक्य सही भी होता है, लेकिन उसका कुछ अर्थ नहीं निकलता है। हिंदी पत्रकारों द्वारा हुए निम्नलिखित गलत अनुवादों के असर का अनुमान लगातार समझा जा सकता है-Twentieth Century Fox- बीसवीं शताब्दी की लोमड़ी एक विदेशी फिल्म कंपनी का नामTopless क्तमे-शिखरहीन पोशाक (नग्न वक्ष) Call Money- मंगनी का रुपया (शीघ्रावधि राशि) Informal visit- गैर रस्मी मुलाकात (अनौपचारिक भेटं) Railway Gard- रेलवे के पहरेदार Flowery Language- मुस्कुराती हुई भाषा (सजीली भाषा-औपचारिकभाषा) यहां एक बात और उल्लेखनीय है कि जहां तक हो सके अप्रचलित शब्दों के व्यवहार से बचना चाहिए, जैसे absass के लिए 'विद्रधि' के स्थानपर 'फोड़ा' ही ठीक है,

appendix को 'उडुकपुछ' करने के बदल अप्रचलितशब्द लाने की अपेक्षा, इन्हें हिंदी में ध्वनि अनुकूल द्वारा भी रखा जा सकता है।

शैली की समस्या

समाचार पत्रों में विषय के अनुसार समाचारों की पृथक-पृथक शैलियां होना स्वाभाविक है जैसे कि अंग्रेजी पत्रो में होता ही है। किंतु भारतीय भाषाओं के पत्रों का पाठक विषय के अनुसार भाषा की गूढ़ता को प्रायः अस्वीकार करके सरल भाषा को ही स्वीकार करता है। अतः पत्रकारों को गूढ़-से-गूढ़ विषय के समाचार फीचर आदि भी सरलतम भाषा में अनुदित करने पड़ते हैं। यह कुछ वैसा ही हो जाता है जैसे किसी 8-10 साल के बच्चे को उसकी भाषा में न्यूक्लीयर विखंडन की पूर्ण प्रक्रिया समझाना पड़े अतः सरल शैली की समस्या भी अनुवाद की एक प्रमुख समस्या बन जाती है।

शीर्षक-उपशीर्षकों आदि की समस्या

शीर्षकों के अनुवाद में कई तरह की बाधाएँ हैं, जैसे शीर्षक में उसके लिए पृष्ठ पर रखी गई जगह के अनुसार शब्दों की संख्या का चयन करना पड़ता है। शीर्षक का रोचक/आकर्षक होना तथा विषय की प्रतीति कराने वाला होना आवश्यक है। अतएव शीर्षकों के मामले में शब्दानुवाद या भावानुवाद से भी काम नहीं चलता, बल्कि उनका छायानुवाद का या पुनःसृजन ही करना पड़ता है।

पत्रकारिता में पारिभाषिक शब्दावली

अपने दिन प्रतिदिन के व्यवहार में हम भाषा और उसकी शब्दावली का ही प्रयोग करते हैं। अपने सामान्य जीवन को चलाने के लिए हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उनमें प्रायः भाषा के सारे स्वर, व्यंजन तथा संज्ञा आदि शब्द आ जाते हैं। यह भाषा का सामान्य रूप है किंतु भाषा के कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जो इन सामान्य शब्दों से भिन्न होते हैं। ऐसे शब्दों को मोटे रूम से दो वर्गों में रखा जाता है- 1. पारिभाषिक 2. अर्द्ध पारिभाषिक। बृहत् हिंदी शब्दकोश में पारिभाषिक शबदावली की परिभाषा इस प्रकार की गई है-जिसका प्रयोग किसी विशिष्ट अर्थ में किया जाए, जो कोई विशिष्ट अर्थ सूचित करे, उसे पारिभाषिक कहते हैं तथा विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की सूची को 'पारिभाषिक शब्दावली' कहते हैं। इस तरह पारिभाषिक शब्द वह शब्द है, जो किसी विशेष

ज्ञान के क्षेत्र में एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होता है। चूंकि हमारी पारिभाषिक शब्दावली बहुत कुछ अंग्रेजी पर आधारित है अत: अंग्रेजी की शब्दसंपदा पर कुछ विचार करना चाहिए। पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में अंग्रेजी के शब्द भंडार में लगभग 90-95 प्रतिशत अंश तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दों का ही रहा है। प्रत्येक वर्ष अंग्रेजी के 10-15 हजार शब्द प्रचलन से बाहर हो जाते हैं और 20-25 हजार नए शब्द जुड़ जाते हैं। यह जोड़-घटाव भी मुख्यत: पारिभाषिक शब्दों का होता है और इन सभी अंग्रेजी शब्दों के लिए हिंदी में सम शब्दों का निर्धारण नहीं हुआ है।

जहां तक पत्रकारिता की बात है, पत्रकारिता का कार्य इसके जरिए लोगों को समसामयिक घटना एवं विचार आदि के बारे में लोगों को सूचित करना है। इसके अलावा विभिन्न विषय पर शिक्षा देना, लोगों का मनोरजन करना, लोकतंत्र की रक्षा करना और जनमत है। ऐसे में इन विषयों की अभिव्यक्ति के लिए पारिभाषिक शब्द बड़े ही महत्वपूर्ण होते हैं। दूसरी बात यह है कि समाचार पत्र पढ़ते समय या टेलीविजन देखते समय या रेडियो सुनते समय कोई शब्दकोश लेकर नहीं बैठता है। पाठक द्धर्शक/श्रोता सुबह की चाय के साथ, सफर के दौरान या कहीं समय व्यतीत कर रहा हो, देश दुनिया की खबरों को समझना एवं जानना चाहता है। तीसरी बात यह है कि समाचारपत्र-पत्रिकाओं तथा टीवी के पाठक-द्धर्शक बच्चे से लेकर बूढ़े तथा साक्षर से लेकर बुद्धिजीवी तक होता है। ऐसे में पाठक वर्ग को समझ में आए उस तरह की भाषा, शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। यदि अर्थ निश्चित नहीं होगा तो उसका प्रयोक्ता उसे एक अर्थ में प्रयुक्त करेगा और श्रोता या पाठक उसे दूसरे अर्थ में लेगा।

पारिभाषिक शब्दावली की समस्या

पत्रकारिता का कार्य रोजाना देश, दुनिया में घटित घटनाएं, आंदोलन,घोटाले, आविष्कार, विभिन्न समस्या अपने कलेवर में लिए हुए रहते हैं तो यह निश्चित है कि इसमें सभी प्रकार की चीजें आ जाती हैं। इसके साथ ही कुछ ऐसे शब्द आ जाते हैं, जो अपनी विशिष्टता लिए हुए रहते हैं। इसमें कोई आंचलिक शब्द हो सकता है, कोई ज्ञान विज्ञान के शब्द हो सकता है, कार्यालयीन शब्द हो सकता है, इतिहास से संबंधित हो सकता है। इन शब्दों को पाठकों के सामने रखना पत्रकार के लिए चुनौती होती है। ऐसे शब्दों का हिंदी में अनुवाद करके रखा जाए या उसे ऐसे ही लिप्यंतरण कर दिया जाए या उसके लिए कोई नया

शब्द गढ़ लिया जाए। पत्रकार को यह भी ध्यान रखना होता है कि ऐसे शब्द के मायने क्या हैं, क्योंकि यह सीधे समाज के लोगों तक पहुंचता है। दूसरी बात यह होती है कि पत्रकार को समाचार लिखते समय इतना समय नहीं होता है कि वह इस बारे में शब्दकोश का सहारा ले या विभिन्न विशेषज्ञों से पूछताछ करके कोई ठोस निर्णय ले।

पारिभाषिक शब्द की विशेषताएँ

पारिभाषिक शब्दों में निम्नलिखित विशेषताएँ अपेक्षित हैं-

उच्चरण- पारिभाषिक शब्द उच्चारण की दृष्टि से सुविधाजनक होना चाहिए,

अर्थ-पारिभाषिक शब्द का अर्थ सुनिश्चित परिधि से युक्त तथा स्पष्ट होना चाहिए। साथ ही विज्ञान या शास्त्र विशेष में एक संकल्प अथवा वस्तु आदि के लिए एक ही पारिभाषिक शब्द होना चाहिए एवं प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का एक ही अर्थ होना चाहिए,

लघुता- यथासंभव पारिभाषिक शब्दों का आकार छोटा होना चाहिए ताकि प्रयोक्ता को सुविधा रहे। शब्द व्याख्यात्मक हो इसके बजाय उसका पारदर्शी होना बेहतर है,

उर्वरता-पारिभाषिक शब्द उर्वर होना चाहिए अर्थात् उसे ऐसा बनाए जा सके यथा Fertile, Fertility, Fertilizer आदि या उर्वर, उर्वरकता, उर्वरक अति उर्वर आदि,

रूप–एक श्रेणी के पारिभाषिक शब्दों में रूप साम्य होना चाहिए, जैसे Science, Scientific, Scientist आदि अथवा विशेषज्ञों के नाम-Scientist, Cytologist, Botanist, Cardiologist, Dramatist आदि,

प्रसार योग्यता-भारत और हिंदी के संदर्भ में पारिभाषिक शब्दों में यह योग्यता भी अपेक्षित है कि वे भारत के अन्य भाषा-भाषियों में प्रसार पा सकें और उन्हें ग्राह्य हों,

सीमा में बंधा हुआ शब्द-इसकी परिभाषा से ही स्पष्ट है कि ज्ञान, विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में निश्चित अर्थों में परिभाषा की सीमा में बंधा हुआ शब्द है,

अर्थ संकोच–अर्थ की दृष्टि से देखें तो प्रायः अधिकांश पारिभाषिक शब्द अर्थ संकोच से बनते हैं,

त्रिविधता–प्रयोग के आधार की दृष्टि से देखें तो पारिभाषिक शब्दावली के स्वरूप में त्रिविधता पाई जाती है। अर्थात् कुछ पूर्ण पारिभाषिक, कुछ अर्ध पारिभाषिक और कुछ कभी-कभी पारिभाषिक के रूप में प्रयुक्त थे,

विषय विशेष की संकल्पना–विषय की दृष्टि से पारिभाषिक शब्द विषय विशेष की संकल्पनाओं के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं। जैसे-ऑक्सीजन विरेचन, कार्बन आदि,

वर्ण संकर-इतिहास और स्रोत की दृष्टि से पारिभाषिक शब्दावली वर्णसंकर होती है।

निर्माण के सिद्धांत

भारत में पारिभाषिक शब्दावली पर सर्वप्रथम **डा. रघुवीर** ने ही व्यवस्थित, पूर्ण वैज्ञानिक एवं विशद रूप से विचार एवं कार्य किया। डा. रघुवीर का कहना है कि पारिभाषिक शब्दों का नियम है कि जितने शब्द, अंग्रेजी में हो उतने ही हिंदी में भी होने चाहिए, उससे कम में काम नहीं चलेगा। इस विचार से असहमत होने की कोई गुंजाइश नहीं है। विज्ञान आदि अनेक विषयों में यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान का अनुसरण करने की मजबूरी और पुरानी अंग्रेजी दासता के परिप्रेक्ष्य में कम से कम अंग्रेजी भाषा के प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का समानक तो हिंदी को लाना ही पड़ेगा। यहां तक तो ठीक है किंतु इसके आगे प्रश्न उठता है कि इन शब्दों को कहां से लाए जाए और उनका स्रोत तथा स्वरूप कैसा हो? इस प्रश्न पर पिछले कई दशकों में विद्वानों का मतैक्य नहीं रहा। पारिभाषिक शब्दों के स्वरूप, स्रोत और निर्माण संबंधी विचारधाराओं में निम्नलिखित प्रमुख रही-

1. **पुनरुद्धारवादी/शुद्धतावादी विचारधारा**–कुछ विद्वान ऐसे हैं, जो भारतीय भाषाओं की सारी की सारी पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत से लेने के पक्ष में हैं। वे यथासंभव अधिक से अधिक शब्दों को प्राचीन संस्कृत वांग्मय से लेना चाहते हैं। इस संदर्भ में डा. रघुवीर का मानना है कि जो पारदिर्शता हिंदी के शब्दों में है वह संसार की किसी और भाषा में नहीं है तथा संस्कृत में उपलब्ध 20 उपसर्गों, 500 धातुओं और 80प्रत्ययों की सहायता से लाखों करोड़ों शब्द बनाए जा सकते हैं। उनके अनुसार भारतीय भाषाओं का आधार भाषा संस्कृत है। यदि हम चाहते हैं कि सभी भाषाओं के पारिभाषिक शब्द एक जैसे हों तो वह संस्कृत से ही हो सकते हैं। इसके विरुद्ध यह बात सामने आ सकती

है कि यह अतिवादी हैं। विदेशी या अन्य भाषा के शब्दों को आज पूर्णतया बहिष्कृत करना संभव नहीं है। कुछ शब्द तो ऐसे हैं जिनका संस्कृत या हिंदी में कुछ पर्याय नहीं है। जैसे स्टेशन। इन विद्वानों द्वारा जो पारिभाषिक शब्दावली तैयार की गई है कठिन है। जैसे- रेल-संयान, टिकट-संयान पत्र, रिक्शा-नरयान, मिल-निर्माणी आदि। ऐसे अनुवाद हास्यास्पद हो गई हैं। कहीं-कहीं पर इसका जड़ अनुवाद हो गया है जैसे-पीएचडी के लिए महाविज्ञ और रीडर के लिए प्रवाचक आदि।

2. शब्दग्रहणवादी विचारधारा–इस सिद्धांत को अपनाने वालों को स्वीकारवादी, अंतर्राष्ट्रीयवादी या आदानवादी कहते हैं। अधिकांश अंग्रेजी परंपरा के लोग इसी पक्ष में हैं। इनका मानना है कि चूंकि अंग्रेजी और अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली का प्रचार विश्व में सर्वाधिक है अत: उससे परिचित होने पर हमारे विज्ञान या शास्त्रवेत्ताओं को विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित साहित्य को समझने में आसानी होगी। दूसरी बात, इसे अपनाने से नई पारिभाषिक शब्दावली बनाने और उसके मानक रूप की समस्या समाप्त हो जाती है। तीसरी बात, नए शब्द विभिन्न विज्ञानों में हमेशा आते रहेगें तो फिर कब तक देशी स्त्रोतों को खोजते रहेगें। इसके विरुद्ध यह बात कही जा सकती है कि यह शब्दावली सर्वत्र नहीं अपनाई गई है। दूसरा, अंग्रेजी के सारे पारिभाषिक शब्द हिंदी नहीं पचा पाती है। वस्तुत: कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा के सारे के सारे शब्द पचा नहीं सकती। तीसरा, गृहित शब्द अर्धमृत होते हैं क्योंकि उनमें जनन शक्ति या तो बहुत कम होती है, या बिल्कुल नहीं होती। इसको मानने वाले अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों लेना चाहते हैं जैसे-एकेडमी, इंटेरिम, टैकनीक, कमेडी आदि। कुछ लोग ध्वनि व्यवस्था के अनुरूप अनुवाद करना चाहते हैं जैसे-अकादमी, अंतरिम,तकनीक, कामदी आदि।

3. प्रयोगवादी विचारधारा–तीसरे सिद्धांत को मानने वाले हैं प्रयोगवादी या हिन्दुस्तानी। इसको मानने वालों हिंदी-उर्दू के समन्वय तथा सरल शब्दावली के नाम पर बोलचाल के शब्द, संस्कृत शब्दों तथा अरबी-फारसी शब्दों की खिचड़ी से ऐसे शब्द बनाए हैं, जो बड़े हास्यास्पद हैं। जैसे-Recation- पलटकारी, Emergency- अचानकी, President- राजपति, Government-शासनिया आदि। इनका प्रयोग एक तो हास्यास्पद लगे तो इसमें गंभीरता नजर नहीं आई।

4. लोकवादी विचारधारा–इस तरह के माननेवालों ने या तो जनता से शब्द ग्रहण किए हैं या जनप्रचलित शब्दों के योग से शब्द बनाने के पक्षधर हैं। जैसे Defector–दलबदलू, आयाराम गयाराम, Maternity Home– जच्चा बच्चा घर, Power House– बिजली घर आदि। इस प्रकार के अनुवाद हिंदी के प्रकृति के अनुरूप तो है, लेकिन हिंदी के लिए सभी प्रकार के पारिभाषिक शब्द नहीं जुटाए जा सकते हैं, तो इससे भी पूरी तरह काम नहीं चल सकता है।

5. मध्यमार्गी विचारधारा–इस सिद्धांत को अपनाने वालों को समन्वयवादी भी कहा जा सकता है। जो भी इस विषय पर गंभीतरता से विचार करेगा वह इसका समर्थन करेगा। इस विचार का अनुसरण खासकर सरकारी शब्द निर्माण संस्थानों में किया गया। इसके तहत अंतर्राष्ट्रीय, अंग्रेजी, संस्कृत, प्राप्त, आधुनिक भाषाओं के प्राचीन, मध्यकालीन साहित्य, सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा बोलियों के समन्वय से नए शब्द निर्माण किए जा सकता है। इनका मानन है कि–यथासंभव अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को लिया जाए। जो अपने मूल रूप में चल रहे हैं उन्हें वैसा ही लें या जिसमें ध्वनि परिवर्तन की आवश्यकता है उसे बदलें दूसरा, अंग्रेजी लंबे समय तक संपर्क में रहने के कारण हमारे काफी निकट है। जो अंग्रेजी शब्द हमारी भाषा में प्रचलित हैं, उन्हें चलने दिया जाए। तीसरा,प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य से भी चलने वाले तथा सभी दृष्टियों से सटीक शब्दों को लिया जा सकता है। चौथा, शब्दावली में अखिल भारतीयता का गुण लाने के लिए यह उचित होगा कि विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा बोलियों में पाए जानेवाले उपयुक्त शब्दों को भी यथासभंव ग्रहण कर लिया जाए। पांचवां, शेष आवश्यक शब्दावली के लिए हमारे पास नए शब्द बनाते समय साधारणत: हमें इस बात का ध्यान नहीं रखना चाहिए कि शब्द की व्युत्पत्ति मूलत: क्या है, बल्कि हमें उसका वर्तमान प्रयोग और अर्थ देखना चाहिए। उस स्थिति में हमारे लिए मूल शब्दार्थ की अपेक्षा, वर्तमान शब्दार्थ ही अधिक महत्वपूर्ण होता है। भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग एवं केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने भी अपनी शब्दावलियों के निर्माण में उपर्युक्त विचारधारा को अपनया है।

पारिभाषिक शब्दावली के अनुवाद में समस्या का समाधान

ऐसे में इसका कुछ समाधान के लिए भारत सरकार ने संविधान के अनुच्छेद–351 और राष्ट्रपति के 2 अप्रैल 1960 के आदेश के अनुसार अक्टूबर 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना हुई। इसे तब तक निर्मित शब्दावली के समन्वय, शब्दावली निर्माण के सिद्धान्तों के निर्धारण,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी कोशों के निर्माण और आयोग द्वारा तैयार/अनुमोदित नई शब्दावली का उपयोग करते हुए मानक वैज्ञानिक पाठ्य पुस्तकों का मौलिक लेखन और अनुवाद का काम सौंपा गया। आयोग द्वारा कुछ नियम स्वीकृत और प्रतिपादित किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं-

अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथा सम्भव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यांतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं-

(क) तत्त्वों और यौगिकों के नाम जैसे हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि,

(ख) तौल और माप की इकाइयों और भौतिक परिमाण की इकाइयों जैसे-कैलोरी, ऐम्पियर आदि,

(ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं जैसे-वोल्ट के नाम परवोल्टामीटर आदि,

(घ) वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, भू विज्ञान आदि की द्विपदी नामावली,
जैसे-Mangifera indic

(ङ) स्थिरांक जैसे, n,g आदि,

(च) ऐसे अन्य शब्द जो आमतौर पर सारे संसार में प्रयोग हो रहे हैं जैसे-रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान आदि,

प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्टीय रूप में ही रखे जाएंगे परंतु संक्षितरूप नागरी और मानक रूपों में भी लिखा जा सकता है। जैसे-सेंटीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु इसका नागरी संक्षित रूप सी.एम. हो सकता है,

ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे-अ, ब, स, क, ख, ग परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए जैस- साइन A कास B आदि,

संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए,

हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार विरोधी और विशुद्धतावादी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए,

सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो-(अ) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और(इ) सस्कृत धातुओं पर आधारित हो,

एसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के वैज्ञानिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे telegraph, telegram के लिए तार continent के लिए महाद्वीप, tom के लिए परमाणु आदि। यह सब इसी रूप में व्यवहार किए जाने चाहिए,

अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भातीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे इंजन, मशीन, लावा, मीटर,लीटर, प्रिज्म, टार्च आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए,

अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण।

लिंग-हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण नहोने पर पुलिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

संकर शब्द-वैज्ञानिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे-Ionization के लिए आयनीकरण, Voltage के लिए वोल्टता, ringhstand के लिए वलयस्टैंड, saponifier के लिए साबुनीकरण आदि के सामान्य और प्राकृतिक भाषा शास्त्रीय क्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को वैज्ञानिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा सुबोधता,उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

वैज्ञानिक शब्दों में संधि और समास-कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच 'हाइफन' लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द रचनाओं को सरला ओर शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी।

हलंत-नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

पंचम वर्ण का प्रयोग-पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परंतु lenss, patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस,पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

3

भाषा का अर्थ

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं और इसके लिये हम वाचिक ध्वनियों का प्रयोग करते हैं।

भाषा, मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह है, जिनके द्वारा मन की बात बताई जाती है। किसी भाषा की सभी ध्वनियों के प्रतिनिधि स्वन एक व्यवस्था में मिलकर एक सम्पूर्ण भाषा की अवधारणा बनाते हैं। व्यक्त नाद की वह समष्टि, जिसकी सहायता से किसी एक समाज या देश के लोग अपने मनोगत भाव तथा विचार एक दूसरे से प्रकट करते हैं। मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह, जिनके द्वारा मन की बात बताई जाती है, जैसे–बोली,जबान,वाणी विशेष।

सामान्यत: भाषा को वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा आभ्यंतर अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। यही नहीं वह हमारे आभ्यंतर के निर्माण, विकास, हमारी अस्मिता, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन है। भाषा के बिना मनुष्य सर्वथा अपूर्ण है और अपने इतिहास तथा परम्परा से विच्छिन्न है।

इस समय सारे संसार में प्राय: हजारों प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं, जो साधारणत: अपने भाषियों को छोड़ और लोगों की समझ में नहीं आतीं। अपने समाज या देश की भाषा तो लोग बचपन से ही अभ्यस्त होने के कारण अच्छी तरह जानते हैं, पर दूसरे देशों या समाजों की भाषा बिना अच्छी तरह सीखे नहीं

आती। भाषाविज्ञान के ज्ञाताओं ने भाषाओं के आर्य, सेमेटिक, हेमेटिक आदि कई वर्ग स्थापित करके उनमें से प्रत्येक की अलग-अलग शाखाएँ स्थापित की हैं और उन शाखाओं के भी अनेक वर्ग-उपवर्ग बनाकर उनमें बड़ी-बड़ी भाषाओं और उनके प्रांतीय भेदों, उपभाषाओं अथवा बोलियों को रखा है। जैसे हिंदी भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के आर्य वर्ग की भारतीय आर्य शाखा की एक भाषा है, और ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि इसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं। पास-पास बोली जानेवाली अनेक उपभाषाओं या बोलियों में बहुत कुछ साम्य होता है, और उसी साम्य के आधार पर उनके वर्ग या कुल स्थापित किए जाते हैं। यही बात बड़ी-बड़ी भाषाओं में भी है, जिनका पारस्परिक साम्य उतना अधिक तो नहीं, पर फिर भी बहुत कुछ होता है।

संसार की सभी बातों की भाँति भाषा का भी मनुष्य की आदिम अवस्था के अव्यक्त नाद से अब तक बराबर विकास होता आया है, और इसी विकास के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है। भारतीय आर्यों की वैदिक भाषा से संस्कृत और प्राकृतों का, प्राकृतों से अपभ्रंशों का और अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है।

प्राय: भाषा को लिखित रूप में व्यक्त करने के लिये लिपियों की सहायता लेनी पड़ती है। भाषा और लिपि, भाव व्यक्तीकरण के दो अभिन्न पहलू हैं। एक भाषा कई लिपियों में लिखी जा सकती है और दो या अधिक भाषाओं की एक ही लिपि हो सकती है। उदाहरणार्थ पंजाबी, गुरूमुखी तथा शाहमुखी दोनों में लिखी जाती है, जबकि हिन्दी, मराठी, संस्कृत, नेपाली इत्यादि सभी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

परिभाषा

भाषा को प्राचीन काल से ही परिभाषित करने की कोशिश की जाती रही है। इसकी कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं-

1. 'भाषा' शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है बोलना या कहना अर्थात् भाषा वह है जिसे बोला जाय।
2. **प्लेटो** ने **सोफिस्ट** में विचार और भाषा के संबंध में लिखते हुए कहा है कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है। विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है और वही शब्द जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।

3. **स्वीट** के अनुसार ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।
4. **वेंद्रीय** कहते हैं कि भाषा एक तरह का चिह्न है। चिह्न से आशय उन प्रतीकों से है, जिनके द्वारा मानव अपना विचार दूसरों के समक्ष प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं जैसे नेत्रग्राह्य, श्रोत्र ग्राह्य और स्पर्श ग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से श्रोत्रग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।
5. **ब्लाक तथा ट्रेगर**– भाषा यादृच्छिक भाष् प्रतीकों का तंत्र है, जिसके द्वारा एक सामाजिक समूह सहयोग करता है।
6. **स्त्रुत्वा**–भाषा यादृच्छिक भाष् प्रतीकों का तंत्र है, जिसके द्वारा एक सामाजिक समूह के सदस्य सहयोग एवं संपर्क करते हैं।
7. **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका**–भाषा को यादृच्छिक भाष् प्रतीकों का तंत्र है, जिसके द्वारा मानव प्राणी एक सामाजिक समूह के सदस्य और सांस्कृतिक साझीदार के रूप में एक सामाजिक समूह के सदस्य संपर्क एवं संप्रेषण करते हैं।
8. ''भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि-संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परम्परा विचारों का आदान-प्रदान करता है।'' स्पष्ट ही इस कथन में भाषा के लिए चार बातों पर ध्यान दिया गया है-
   (1) भाषा एक पद्धति है, यानी एक सुसम्बद्ध और सुव्यवस्थित योजना या संघटन है, जिसमें कर्ता, कर्म, क्रिया, आदि व्यवस्थिति रूप में आ सकते हैं।
   (2) भाषा संकेतामक है अर्थात् इसमें जो ध्वनियाँ उच्चारित होती हैं, उनका किसी वस्तु या कार्य से सम्बन्ध होता है। ये ध्वनियाँ संकेतात्मक या प्रतीकात्मक होती हैं।
   (3) भाषा वाचिक ध्वनि-संकेत है, अर्थात् मनुष्य अपनी वागिन्द्रिय की सहायता से संकेतों का उच्चारण करता है, वे ही भाषा के अंतर्गत आते हैं।
   (4) भाषा यादृच्छिक संकेत है। यादृच्छिक से तात्पर्य है–ऐच्छिक, अर्थात् किसी भी विशेष ध्वनि का किसी विशेष अर्थ से मौलिक अथवा दार्शनिक सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक भाषा में किसी विशेष ध्वनि को किसी विशेष अर्थ का वाचक 'मान लिया जाता' है। फिर वह उसी अर्थ के लिए रूढ़ हो जाता है। कहने का अर्थ यह

है कि वह परम्परानुसार उसी अर्थ का वाचक हो जाता है। दूसरी भाषा में उस अर्थ का वाचक कोई दूसरा शब्द होगा।

हम व्यवहार में यह देखते हैं कि भाषा का सम्बन्ध एक व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण विश्व तक है। व्यक्ति और समाज के बीच व्यवहार में आने वाली इस परम्परा से अर्जित सम्पत्ति के अनेक रूप हैं। समाज सापेक्षता भाषा के लिए अनिवार्य है, ठीक वैसे ही जैसे व्यक्ति सापेक्षता। भाषा संकेतात्मक होती है अर्थात् वह एक 'प्रतीक-स्थिति' है। इसकी प्रतीकात्मक गतिविधि के चार प्रमुख संयोजक है: दो व्यक्ति-एक वह जो संबोधित करता है, दूसरा वह जिसे संबोधित किया जाता है, तीसरी संकेतित वस्तु और चौथी-प्रतीकात्मक संवाहक, जो संकेतित वस्तु की ओर प्रतिनिधि भंगिमा के साथ संकेत करता है।

विकास की प्रक्रिया में भाषा का दायरा भी बढ़ता जाता है। यही नहीं एक समाज में एक जैसी भाषा बोलने वाले व्यक्तियों का बोलने का ढंग, उनकी उच्चारण-प्रक्रिया, शब्द-भण्डार, वाक्य-विन्यास आदि अलग-अलग हो जाने से उनकी भाषा में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। इसी को शैली कह सकते हैं।भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य बोलकर, सुनकर, लिखकर व पढ़कर अपने मन के भावों या विचारों का आदान-प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में- जिसके द्वारा हम अपने भावों को लिखित अथवा कथित रूप से दूसरों को समझा सके और दूसरों के भावों को समझ सके उसे भाषा कहते है। सार्थक शब्दों के समूह या संकेत को भाषा कहते है। यह संकेत स्पष्ट होना चाहिए। मनुष्य के जटिल मनोभावों को भाषा व्यक्त करती है, किन्तु केवल संकेत भाषा नहीं है। रेलगाड़ी का गार्ड हरी झण्डी दिखाकर यह भाव व्यक्त करता है कि गाड़ी अब खुलनेवाली है, किन्तु भाषा में इस प्रकार के संकेत का महत्त्व नहीं है। सभी संकेतों को सभी लोग ठीक-ठीक समझ भी नहीं पाते और न इनसे विचार ही सही-सही व्यक्त हो पाते हैं। सारांश यह है कि भाषा को सार्थक और स्पष्ट होना चाहिए।

बोली, विभाषा, भाषा और राजभाषा

यों बोली, विभाषा और भाषा का मौलिक अन्तर बता पाना कठिन है, क्योंकि इसमें प्रमुख अन्तर व्यवहार-क्षेत्र के विस्तार पर निर्भर है। वैयक्तिक विविधता के चलते एक समाज में चलने वाली एक ही भाषा के कई रूप दिखाई देते हैं। मुख्य रूप से भाषा के इन रूपों को हम इस प्रकार देखते हैं-

1. बोली,
2. विभाषा, और
3. भाषा (अर्थात् परिनिष्ठित या आदर्श भाषा)

बोली और भाषा में अन्तर होता है। यह भाषा की छोटी इकाई है। इसका सम्बन्ध ग्राम या मण्डल अर्थात् सीमित क्षेत्र से होता है। इसमें प्रधानता व्यक्तिगत बोलचाल के माध्यम की रहती है और देशज शब्दों तथा घरेलू शब्दावली का बाहुल्य होता है। यह मुख्य रूप से बोलचाल की भाषा है, इसका रूप (लहजा) कुछ-कुछ दूरी पर बदलते पाया जाता है तथा लिपिबद्ध न होने के कारण इसमें साहित्यिक रचनाओं का अभाव रहता है। व्याकरणिक दृष्टि से भी इसमें विसंगतियां पायी जाती हैं।

विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा विस्तृत होता है। यह एक प्रान्त या उपप्रान्त में प्रचलित होती है। एक विभाषा में स्थानीय भेदों के आधार पर कई बोलियाँ प्रचलित रहती हैं। विभाषा में साहित्यिक रचनाएं मिल सकती हैं।

भाषा, या परिनिष्ठित भाषा अथवा आदर्श भाषा, विभाषा की विकसित स्थिति हैं। इसे राष्ट्र-भाषा या टकसाली-भाषा भी कहा जाता है।

प्रायः देखा जाता है कि विभिन्न विभाषाओं में से कोई एक विभाषा अपने गुण-गौरव, साहित्यिक अभिवृद्धि, जन-सामान्य में अधिक प्रचलन आदि के आधार पर राजकार्य के लिए चुन ली जाती है और उसे राजभाषा के रूप में या राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाता है।

राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा

किसी प्रदेश की राज्य सरकार के द्वारा उस राज्य के अन्तर्गत प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे राज्यभाषा कहते हैं। यह भाषा सम्पूर्ण प्रदेश के अधिकांश जन-समुदाय द्वारा बोली और समझी जाती है। प्रशासनिक दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य में सर्वत्र इस भाषा को महत्त्व प्राप्त रहता है।

भारतीय संविधान में राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए हिन्दी के अतिरिक्त 22 अन्य भाषाएं राजभाषा स्वीकार की गई हैं। राज्यों की विधानसभाएं बहुमत के आधार पर किसी एक भाषा को अथवा चाहें तो एक से अधिक भाषाओं को अपने राज्य की राज्यभाषा घोषित कर सकती हैं।

राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। प्राय: वह अधिकाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा होती है। प्राय: राष्ट्रभाषा ही किसी देश की राजभाषा होती है।

भाषा के विभिन्न रूप

जीवन के विभिन्न व्यवहारों के अनुरूप भाषिक प्रयोजनों की तलाश हमारे दौर की अपरिहार्यता है। इसका कारण यह है कि भाषाओं को सम्प्रेषणपरक प्रकार्य (फंक्शन) कई स्तरों पर और कई सन्दर्भों में पूरी तरह प्रयुक्ति सापेक्ष होता गया है। प्रयुक्ति और प्रयोजन से रहित भाषा, अब भाषा ही नहीं रह गई है। भाषा की पहचान केवल यही नहीं कि उसमें कविताओं और कहानियों का सृजन कितनी सप्राणता के साथ हुआ है, बल्कि भाषा की व्यापकतर संप्रेषणीयता का एक अनिवार्य प्रतिफल यह भी है कि उसमें सामाजिक सन्दर्भों और नये प्रयोजनों को साकार करने की कितनी सम्भावना है। इधर संसार भर की भाषाओं में यह प्रयोजनीयता धीरे-धीरे विकसित हुई है और रोजी-रोटी का माध्यम बनने की विशिष्टताओं के साथ भाषा का नया आयाम सामने आया है—वर्गभाषा, तकनीकी भाषा, साहित्यिक भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा, बोलचाल की भाषा, मानक भाषा आदि।

बोलचाल की भाषा

'बोलचाल की भाषा' को समझने के लिए 'बोली' (Dialect) को समझना जरूरी है। 'बोली' उन सभी लोगों की बोलचाल की भाषा का वह मिश्रित रूप है, जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है। विश्व में जब किसी जन-समूह का महत्त्व किसी भी कारण से बढ़ जाता है तो उसकी बोलचाल की बोली 'भाषा' कही जाने लगती है, अन्यथा वह 'बोली' ही रहती है। स्पष्ट है कि 'भाषा' की अपेक्षा 'बोली' का क्षेत्र, उसके बोलने वालों की संख्या और उसका महत्त्व कम होता है। एक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं क्योंकि भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है। जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारस्परिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का प्रसार होता है। आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुई आपसी व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से भी जाना जाता है। यह भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।

मानक भाषा

भाषा के स्थिर तथा सुनिश्चित रूप को मानक या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। भाषाविज्ञान कोश के अनुसार 'किसी भाषा की उस विभाषा को परिनिष्ठित भाषा कहते हैं जो अन्य विभाषाओं पर अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्थापित कर लेती है तथा उन विभाषाओं को बोलने वाले भी उसे सर्वाधिक उपयुक्त समझने लगते हैं। मानक भाषा शिक्षित वर्ग की शिक्षा, पत्राचार एवं व्यवहार की भाषा होती है। इसके व्याकरण तथा उच्चारण की प्रक्रिया लगभग निश्चित होती है। मानक भाषा को टकसाली भाषा भी कहते हैं। इसी भाषा में पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होता है। हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत तथा ग्रीक इत्यादि मानक भाषाएँ हैं। किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है, उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता की खोज है, अर्थात् यदि किसी लेखन या भाषिक इकाई में विकल्प न हो तब तो वही मानक होगा, किन्तु यदि विकल्प हो तो अपवादों की बात छोड़ दें तो कोई एक मानक होता है।जिसका प्रयोग उस भाषा के अधिकांश शिष्ट लोग करते हैं। किसी भाषा का मानक रूप ही प्रतिष्ठित माना जाता है। उस भाषा के लगभग समूचे क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग होता है। मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। मानक भाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि समाज में एक वर्ग मानक होता है, जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना-लिखना, उसी का खाना-पीना, उसी के रीति-रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलतः उसी वर्ग की भाषा होती है।

सम्पर्क भाषा

अनेक भाषाओं के अस्तित्त्व के बावजूद जिस विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है, उसे सम्पर्क भाषा कहते हैं। एक ही भाषा परिपूरक भाषा और सम्पर्क भाषा दोनों ही हो सकती है। आज भारत में सम्पर्क भाषा के तौर पर हिन्दी प्रतिष्ठित होती जा रही है जबकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी सम्पर्क भाषा के

रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। सम्पर्क भाषा के रूप में जब भी किसी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा के पद पर आसीन किया जाता है तब उस भाषा से कुछ अपेक्षाएँ भी रखी जाती हैं। जब कोई भाषा 'lingua franca' के रूप में उभरती है तब राष्ट्रीयता या राष्ट्रता से प्रेरित होकर वह प्रभुतासम्पन्न भाषा बन जाती है। यह तो जरूरी नहीं कि मातृभाषा के रूप में इसके बोलने वालों की संख्या अधिक हो पर द्वितीय भाषा के रूप में इसके बोलने वाले बहुसंख्यक होते हैं।

राजभाषा

जिस भाषा में सरकार के कार्यों का निष्पादन होता है उसे राजभाषा कहते हैं। कुछ लोग राष्ट्रभाषा और राजभाषा में अन्तर नहीं करते और दोनों को समानार्थी मानते हैं। लेकिन दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। राष्ट्रभाषा सारे राष्ट्र के लोगों की सम्पर्क भाषा होती है जबकि राजभाषा केवल सरकार के कामकाज की भाषा है। भारत के संविधान के अनुसार हिन्दी संघ सरकार की राजभाषा है। राज्य सरकार की अपनी-अपनी राज्य भाषाएँ हैं। राजभाषा जनता और सरकार के बीच एक सेतु का कार्य करती है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की उसकी अपनी स्थानीय राजभाषा उसके लिए राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान का प्रतीक होती है। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की अपनी स्थानीय भाषाएँ राजभाषा हैं। आज हिन्दी हमारी राजभाषा है।

राष्ट्रभाषा

देश के विभिन्न भाषा-भाषियों में पारस्परिक विचार-विनिमय की भाषा को राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा को देश के अधिकतर नागरिक समझते हैं, पढ़ते हैं या बोलते हैं। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश के नागरिकों के लिए गौरव, एकता, अखंडता और अस्मिता का प्रतीक होती है। महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की आत्मा की संज्ञा दी है। एक भाषा कई देशों की राष्ट्रभाषा भी हो सकती है, जैसे अंग्रेजी आज अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा कनाडाघ इत्यादि कई देशों की राष्ट्रभाषा है। संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तो नहीं दिया गया है लेकिन इसकी व्यापकता को देखते हुए इसे राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में राजभाषा के रूप में हिन्दी, अंग्रेजी की तरह न केवल प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा है, बल्कि उसकी भूमिका राष्ट्रभाषा के रूप में भी है। वह

हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा है। महात्मा गांधी जी के अनुसार किसी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम होय जिसको बोलने वाले बहुसंख्यक हों और जो पूरे देश के लिए सहज रूप में उपलब्ध हो। उनके अनुसार भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के निर्धारित अभिलक्षणों से युक्त है। उपर्युक्त सभी भाषाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। इसलिए यह प्रश्न निरर्थक है कि राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा आदि में से कौन सर्वाधिक महत्त्व का है, जरूरत है हिन्दी को अधिक व्यवहार में लाने की।

भाषा-परिवार

भाषाविज्ञान

भारत की भाषाएँ भारतीय संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाओं की संख्या है 22। 1950 में भारतीय संविधान की स्थापना के समय में, मान्यता प्राप्त भाषाओं की संख्या थी 14। आठवीं अनुसूची में तदोपरांत जोड़ी गई भाषाएँ सिंधी, कोंकणी, नेपाली, मणिपुरी, मैथिली, डोगरी, बोडो और संथाली। सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रलय की 2011 की रिपोर्ट के अनुसार पहचान योग्य मातृ भाषाओं की संख्या 234, शास्त्रीय भाषा का दर्जा पाने वाली पहली भाषा तमिल, शास्त्रीय भाषा का दर्जा पाने वाली अन्य भाषाएँ संस्कृत, कन्नड़, मलयालम, तेलुगू और उड़िया नागालैंड की राजभाषा है अंग्रेजी, जम्मू और कश्मीर की राजभाषा उर्दू और गोवा की राजभाषा है कोंकणी। भारत के संविधान द्वारा निर्धारित सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट की राजभाषा अंग्रेजी, लक्षद्वीप की प्रमुख भाषाएं जेसरी (द्वीप भाषा) और महल सामान्यत: पुडुचेरी (पूर्व में पांडिचेरी) में बोली जाने वाली विदेशी भाषा फ्रेंच 'पूर्व की इतालवी' कही जाने वाली भारतीय भाषा तेलुगु, भारत का एकमात्र राज्य जहाँ संस्कृत राजभाषा में रूप में मान्य है–उत्तराखण्ड। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के प्रमुख भाषाएं हिंदी, निकोबारी, बंगाली, तमिल मलयालम और तेलुगू। अंग्रेजी मान्यता प्राप्त भाषाओं की सूची में नहीं है। जम्मू एवं कश्मीर कश्मीरी डोगरी और हिंदी, हिमाचल प्रदेश हिन्दी पंजाबी और नेपाली, हरियाणा हिन्दी, पंजाबी और उर्दू, पंजाब पंजाबी हिन्दी, उत्तराखंड हिन्दी उर्दू, पंजाबी और नेपाली, दिल्ली हिन्दी पंजाबी, उर्दू और बंगाली उत्तर

प्रदेश हिन्दी उर्दू, राजस्थान हिन्दी, पंजाबी और उर्दू, मध्य प्रदेश हिन्दी, मराठी और उर्दू, पश्चिम बंगाल बंगाली हिंदी, संताली, उर्दू, नेपाली, छत्तीसगढ़ छत्तीसगढ़ी हिन्दी, बिहार हिन्दी, मैथिली और उर्दू, झारखंड हिन्दी संताली, बंगाली और उर्दू सिक्किम नेपाली हिन्दी, बंगाली, अरुणाचल प्रदेश बंगाली, नेपाली, हिन्दी और असमिया, नागालैंड बंगाली हिन्दी और नेपाली, मिजोरम बंगाली हिन्दी और नेपाली, असम असमिया बंगाली, हिंदी, बोडो और नेपाली, त्रिपुरा बंगाली हिन्दी, मेघालय बंगाली हिन्दी और नेपाली, मणिपुर मणिपुरी, नेपाली, हिन्दी और बंगाली, ओडिशा ओरिया हिंदी, तेलुगु और संताली, महाराष्ट्र मराठी हिन्दी, उर्दू और गुजराती, गुजरात गुजराती हिंदी, सिंधी, मराठी और उर्दू, कर्नाटक कन्नड़ उर्दू, तेलुगू, मराठी और तमिल, दमन और दीव गुजराती हिंदी और मराठी, दादरा और नगर हवेली गुजराती हिंदी, कोंकणी और मराठी, गोवा कोंकणी मराठी, हिन्दी और कन्नड़, आंध्र प्रदेश तेलुगु उर्दू, हिंदी और तमिल, केरल मलयालम, लक्षद्वीप मलयालम, तमिलनाडु तमिल तेलुगू, कन्नड़ और उर्दू, पुडुचेरी तमिल तेलुगू, कन्नड़ और उर्दू, अंडमान और निकोबार द्वीप बंगाली हिंदी, तमिल, तेलुगू और मलयालम।

भाषा की परिभाषा

डॉ. कामता प्रसाद गुरु–'भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों तक भलीभाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है।'

आचार्य किशोरीदास–'विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्दसमूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।''

डॉ. श्यामसुन्दर दास–'मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।'

डॉ. बाबूराम सक्सेना–'जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।'

डॉ. भोलानाथ तिवारी –'भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक (arbitrary) ध्वनि-प्रतीकों की वह संचरनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।'

रवीन्द्रनाथ–'भाषा वागेन्द्रिय द्वारा निःसृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है, जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिनके द्वारा किसी भाषा-समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों को सूचित करते हैं।'

महर्षि **पतंजलि** ने **पाणिनि** की अष्टाध्यायी महाभाष्य में भाषा की परिभाषा करते हुए कहा है- "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" जो वाणी से व्यक्त हो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है। **दुनीचंद** ने अपनी पुस्तक "हिन्दी व्याकरण" में भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है–"हम अपने मन के भाव प्रकट करने के लिए जिन सांकेतिक ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, उन्हें भाषा कहते हैं।"

डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए लिखा है–"भाषा मुख से उच्चरित उन परम्परागत सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की अभिव्यक्ति को कहते हैं, जिनकी सहायता से मानव आपस में विचार एवं भावों को आदान-प्रदान करते हैं तथा जिसको वे स्वेच्छानुसार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं।"

डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल के अनुसार–"भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छन्द प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है, जिससे मानव समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक-दूसरे को सहयोग देता है।"

श्री नलिनि मोहन सन्याल का कथन है–"अपने स्वर को विविध प्रकार से संयुक्त तथा विन्यस्त करने से उसके जो-जो आकार होते हैं, उनका संकेतों के सदृश व्यवहार कर अपनी चिन्ताओं को तथा मनोभावों को जिस साधन से हम प्रकाशित करते हैं, उस साधन को भाषा कहते हैं।"

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के मतानुसार–"भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"

प्लेटो ने विचार तथा भाषा पर अपने भाव व्यक्त करते हुए लिखा है- 'विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।'

मैक्समूलर के अनुसार–"भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या

प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"

क्रोचे द्वारा लिखित परिभाषा इस प्रकार है–भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को कहते हैं, जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है।

ब्लॉक और ट्रेगर के अनुसार–भाषा व्यक्त ध्वनि चिह्नों की उस पद्धति को कहते हैं, जिसके माध्यम से समाज-समूह परस्पर व्यवहार करते हैं।

हेनरी स्वीट का कथन है–जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते हैं।

ए. एच. गार्डिनर के विचार से विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि- ''मुख से उच्चरित ऐसे परम्परागत, सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की समष्टि ही भाषा है, जिनकी सहायता से हम आपस में अपने विचारों एवं भावों का आदान-प्रदान करते हैं।''

भाषा के भेद

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अत: समाज में रहते हुए सदा विचार-विमर्श की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप में भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को भाषा की संज्ञा दी जाती है। भावाभिव्यक्ति संदर्भ में हम अनेक माध्यमों को सहारा लेते हैं, यथा–स्पर्श कर, चुटकी बजाकर, आँख घुमा या दबाकर, उँगली को आधार बनाकर, गहरी साँस छोड़कर, मुख के विभिन्न अंगों के सहयोग से ध्वनि उच्चारण कर आदि। भाषा की स्पष्टता के ध्यान में रखकर उसके वर्ग बना सकते हैं–

मूक भाषा–भाषा की ध्वनि रहित स्थिति में ही ऐसी भावभिव्यक्ति होती है। इसे भाषा का अव्यक्त रूप भी कहा जा सकता है। संकेत, चिह्न, स्पर्श आदि भावाभिव्यक्ति के माध्यम इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। पुष्प की भाषा भी मूक है।

अस्पष्ट भाषा–जब व्यक्त भाषा का पूर्ण या स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है, तो उसे अस्पष्ट कहते हैं, यथा–चिड़ियाँ प्रात: काल से अपना गीत शुरू कर देती हैं, किन्तु उनके गीत का स्पष्ट ज्ञान सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाता है। इस प्रकार पक्षियों का गीत मानव के लिए अस्पष्ट भाषा है।

स्पष्ट भाषा–जब भावाभिव्यक्ति पूर्ण स्पष्ट हो, तो ऐसी व्यक्त भाषा को स्पष्ट कहते हैं। जब मनुष्य मुख अवयवों के माध्यम से अर्थमयी या यादृच्छिक ध्वनि-समष्टि का प्रयोग करता है, तो ऐसी भाषा का रूप सामने आता है। यह भाषा मानव-व्यवहार और उसकी उन्नति में सर्वाधिक सहयोगी है।

स्पर्श भाषा–इसमें विचारों की अभिव्यक्ति शरीर के एक अथवा अधिक अंगों के स्पर्श-माध्यम से होती है। इसमें भाषा के प्रयोगकर्ता और ग्रहणकर्ता में निकटता आवश्यक होती है।

इंगित भाषा–इसे आंगिक भाषा भी कहते हैं। इसमें विचारों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार के संकेतों के माध्यम से होती है, यथा–हरी झंडी या हरी बत्ती मार्ग साफ या आगे बढ़ाने का संकेत है या लालबत्ती मार्ग अवरुद्ध होने या रुकने का संकेत है।

वाचिक भाषा– इसके लिए 'मौखिक' शब्द का भी प्रयोग होता है। ऐसी भाषा में ध्वनि-संकेत भावाभिव्यक्ति के मुख्य साधन होते हैं। इसमें विचार-विनिमय हेतु मुख के विभिन्न अवयवों का सहयोग लिया जाता है, अर्थात् इसमें भावाभिव्यक्ति बोलकर की जाती है। यह सर्वाधिक प्रयुक्त भाषा है। सामान्यतः इस भाषा का प्रयोग सामने बैठे हुए व्यक्ति के साथ होता है। यंत्र-आधारित दूरभाष (टेलीफोन), वायरलेस आदि की भाषा भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आती है। भाषा के सूक्ष्म विभाजन में इसे यान्त्रिक या यंत्र-आधारित भाषा के भिन्न वर्ग में रख सकते हैं।

लिखित भाषा–भावाभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम लिखित भाषा है, इसमें अपने विचार का विनिमय लिखकर अर्थात् मुख्यतः लिपि का सहारा लेकर किया जाता है। इस भाषा में लिपि के आधार पर समय तथा स्थान की सीमा पार करने की शक्ति होती है। एक समय लिपिबद्ध किया गया विचार शताब्दियों बाद पढ़ कर समझा जा सकता है और कोई भी लिपिबद्ध विचार या संदेश देश-विदेश के किसी भी स्थान को भेजा जा सकता है। किसी भी समाज की उन्नति मुख्यतः वहाँ की भाषा-उन्नति पर निर्भर होती है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि उन्नत देश की भाषा भी उन्नत होती है। इसके साथ भाषा को मानवीय सभ्यता का उत्कर्ष आधार माना गया है। काव्यदर्श में वाणी (भाषा) को जीवन का मुख्याधार बताते हुए कहा गया है–"वाचामेय प्रसादेन लोक यात्र प्रवर्तते।"

भाषा की प्रवृत्ति

भाषा के सहज गुण-धर्म को भाषा के अभिलक्षण या उस की प्रकृति कहते हैं। इसे ही भाषा की विशेषताएँ भी कहते हैं। भाषा-अभिलक्षण को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। भाषा का प्रथम अभिलक्षण वह है, जो सभी भाषाओं के लिए मान्य होता है, इसे भाषा का सर्वमान्य अभिलक्षण कह सकते हैं। द्वितीय अभिलक्षण वह है, जो भाषा विशेष में पाया जाता है। इससे एक भाषा से दूसरी भाषा की भिन्नता स्पष्टता होती है। हम इसे विशिष्ट भाषागत अभिलक्षण भी कह सकते हैं। यहाँ मुख्यत: ऐसे अभिलक्षणों के विषय में विचार किया जा रहा है, जो विश्व की समस्त भाषाओं में पाये जाते हैं–

भाषा सामाजिक सम्पत्ति है–सामाजिक व्यवहार भाषा का मुख्य उद्देश्य है। हम भाषा के सहारे अकेले में सोचते या चिन्तन करते हैं, किन्तु वह भाषा इस सामान्य यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों पर आधारित भाषा से भिन्न होती है। भाषा अधोपांत समाज से संबंधित होती है। भाषा का विकास समाज में हुआ, उसका अर्जन समाज में होता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही होता है। यह तथ्य दृष्टव्य है कि बच्चा जिस समाज में पैदा होता है तथा पलता है, वह उसी समाज की भाषा सीखता है।

भाषा पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है–कुछ लोगों का कथन है कि पुत्र को पैत्रिक सम्पत्ति (घर, धन, बाग आदि) के समान भाषा भी प्राप्त होती है। अत: भाषा पैत्रिक सम्पत्ति है, किन्तु यह सत्य नहीं है। यदि किसी भारतीय बच्चे को एक-दो वर्ष अवस्था (शिशु-काल) में किन्हीं विदेशी भाषा-भाषी लोगों के साथ कर दिया जाये, तो वह उनकी ही भाषा बोलेगा। यदि भाषा पैत्रिक सम्पत्ति होती, तो वह बालक बोलने के योग्य होने पर अपने माता-पिता की ही भाषा बोलता।

भाषा व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है–भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। भाषा का निर्माण भी समाज के द्वारा होता है। महान साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा में कुछ एक शब्दों को जोड़ या उसमें से कुछ एक शब्दों को घटा सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि कोई साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा का निर्माता नहीं हो सकता है। भाषा में होने वाला परिवर्तन भी व्यक्तिकृत न होकर समाजकृत होता है।

भाषा अर्जित सम्पत्ति है–भाषा परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति है, किन्तु यह पैत्रिक सम्पत्ति की भांति नहीं प्राप्त होती है। मनुष्य को भाषा सीखने के लिए

प्रयास करना पड़ता है। सामाजिक व्यवहार भाषा सीखने में मार्ग-दर्शन के रूप में कार्य करता है, किन्तु मनुष्य को प्रयास के साथ उसका अनुकरण करना होता है। मनुष्य अपनी मातृभाषा के समान प्रयोगार्थ अन्य भाषाओं को भी प्रयत्न कर सीख सकता है। इससे स्पष्ट होता है, भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

भाषा व्यवहार अनुकरण द्वारा अर्जित की जाती है–शिशु बौद्धिक विकास के साथ अपने आसपास के लोगों की ध्वनियों को अनुकरण के आधार पर उन्हीं के समान प्रयोग करने का प्रयत्न करता है। प्रारम्भ में वह या, मा, बा आदि ध्वनियों का अनुकरण करता है फिर सामान्य शब्दों को अपना लेता है। यह अनुकरण तभी सम्भव होता है, जब उसे सीखने योग्य व्यावहारिक वातावरण प्राप्त हो। वैसे व्याकरण, कोश आदि से भी भाषा सीखी जा सकती है, किन्तु यह सब व्यावहारिक आधार पर सीखी गई भाषा के बाद ही सम्भव है। यदि किसी शिशु को निर्जन स्थान पर छोड़ दिए जाए तो वह बोल भी नहीं पाएगा, क्योंकि व्यवहार के अभाव में उसे भाषा का ज्ञान नहीं हो पाएगा।

भाषा सामाजिक स्तर पर आधारित होती है–भाषा का सामाजिक स्तर पर भेद हो जाता है। विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त किसी भी भाषा की आपसी भिन्नता देख सकते हैं। सामान्य रूप में सभी हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं, किन्तु विभिन्न क्षेत्रों की हिन्दी में भिन्नता होती है। यह भिन्नता उनके शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक आदि स्तरों के कारण होती है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र की अपनी शब्दावली होती है, जिसके कारण भिन्नता दिखाई पड़ती है। शिक्षित व्यक्ति जितना सतर्क रहकर भाषा का प्रयोग करता है सामान्य अथवा अशिक्षित व्यक्ति उतनी सतर्कता से भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता है। यह स्तरीय तथ्य किसी भी भाषा के विभिन्न कालों के भाषा-प्रयोग से भी अनुभव कर सकते हैं।

भाषा सर्वव्यापक है–यह सर्वमान्य तथ्य है कि विश्व के समस्त कार्यों का सम्पादन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाषा के ही माध्यम से होता है। समस्त ज्ञान भाषा पर आधारित है। व्यक्ति-व्यक्ति का संबंध या व्यक्ति-समाज का संबंध भाषा के अभाव में असम्भव है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है–"न सोस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमा-ते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सवं शब्देन भासते।" (वाक्यपदीय 123.24) मनुष्य के मनन-चिन्तन तथा भावाव्यक्ति का मूल माध्यम भाषा है, यह भी भाषा की सर्वव्यापकता का प्रबल-प्रमाण है।

भाषा सतत प्रवाहमयी है–मनुष्य के साथ भाषा सतत गतिशीली अवस्था में विद्यमान रहती है। भाषा की उपमा प्रवाहमान जलस्रोत-नदी से दी जा सकती है, जो पर्वत से निकल कर समुद्र तक लगातार बढ़ती रहती है, अपने मार्ग में वह कहीं सूखती नहीं है। समाज के साथ भाषा का आरम्भ हुआ और आज तक गतिशील है। मानव समाज जब तक रहेगा तब तक भाषा का स्थायित्व पूर्ण निश्चित है किसी व्यक्ति या समाज के द्वारा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु उसे समाप्त करने की किसी में शक्ति नहीं होती है।

भाषा सम्प्रेषण मूलतः वाचिक है–भाव सम्प्रेषण सांकेतिक, आंगिक, लिखित और यात्रिक आदि अनेक रूपों में होता है, किन्तु इनकी कुछ सीमाएँ हैं अर्थात् इन माध्यमों के द्वारा पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। स्पर्श तथा संकेत भाषा तो स्पष्ट रूप में अपूर्ण है, साथ ही लिखित भाषा से भी पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। वाचिक भाषा में आरोह-अवरोह तथा विभिन्न भाव-भंगिमाओं के कारण पूर्ण सशक्त भावाभिव्यक्ति सम्भव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण वाचिक भाषा को सजीव तथा लिखित तथा अन्य भाषाओं को निर्जीव भाषा कह सकते हैं। वाचिक भाषा का प्रयोग भी सर्वाधिक रूप में होता है। अनेक अनपढ़ व्यक्ति भी ऐसी भाषा का सहज, स्वाभाविक तथा आकर्षक प्रयोग करते हैं।

भाषा चिरपरिवर्तनशील है–संसार की सभी वस्तुओं के समान भाषा भी परिवर्तनशील है। किसी भी देश के एक काल की भाषा परवर्ती काल में पूर्वत् नहीं रह सकती, उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है। यह परिवर्तन अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण होता है। संस्कृत में 'साहस' का अर्थ अनुचित या अनैतिक कार्य के लिए उत्साह दिखाना था, तो हिन्दी में यह शब्द अच्छे कार्य के लिए उत्साह दिखाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भाषा अनुकरण के माध्यम में सीखी जाती है। मूल-भाषा (वाचक-भाषा) का पूर्ण अनुकरण सम्भव नहीं है। इसके कारण हैं- अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक तथा मानसिक रचना की भिन्नता एवं भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की भिन्नता। इस प्रकार भाषा प्रतिफल परिवर्तित होती रहती है।

भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित होता है–भाषा के दो रूप मुख्य हैं–मौखिक तथा लिखित। इनमें भाषा का प्रारम्भिक रूप मौखिक ही होता है। लिपि का विकास तो भाषा जन्म के पर्याप्त समय बाद में होता है। लिखित भाषा में ध्वनियों का ही अंकन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा के अभाव में लिपि की कल्पना भी असम्भव है। उच्चरित भाषा

के लिए लिपि आवश्यक माध्यम नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी ऐसे अनगिनत व्यक्ति मिल जाएँगे जो उच्चरित भाषा का सुन्दर प्रयोग करते हैं, किन्तु उन्हें लिपि का ज्ञान नहीं होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित या मौखिक है और उसका परवर्ती विकसित रूप लिखित है।

भाषा का आरम्भ वाक्य से हुआ है–सामान्यत: भाव या विचार पूर्णता के द्योतक होते हैं। पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति सार्थक, स्वतंत्र और पूर्ण अर्थवान इकाई-वाक्य से ही सम्भव है। कभी-कभी तो एक शब्द से भी पूर्ण अर्थ का बोध होता है, यथा- 'जाओ' आदि। वास्तव में ये शब्द न होकर वाक्य के एक विशेष रूप में प्रयुक्त हैं। ऐसे वाक्यों में वाक्यांश छिपा होता है। यहाँ पर वाक्य का उद्देश्य-अंश 'तुम' छिपा हुआ है। श्रोता ऐसे वाक्यों को सुनकर व्याकरणिक ढंग से उसकी पूर्ति कर लेता है। इस प्रकार ये वाक्य बन जाते हैं–'तुम जाओ।' 'तुम आओ' बच्चा एक ध्वनि या वर्ण के माध्यम से भाव प्रकट करता है। बच्चे की ध्वनि भावात्मक दृष्टि से संबंधित होने के कारण एक सीमा में पूर्णवाक्य के प्रतीक में होती है, यथा–'प' से भाव निकलता है-मुझे प्यास लगी है या मुझे दूध दे दो या मुझे पानी दे दो। यहाँ 'खग जाने खग ही की भाषा' का सिद्धान्त अवश्य लागू होता है। जिसके हृदय में ममता और वात्सल्य का भाव होगा या जग सकेगा वह ही ऐसे वाक्यों की अर्थ-अभिव्यक्ति को ग्रहण कर सकेगा।

भाषा मानकीकरण पर आधारित होती है–भाषा परिवर्तनशील है, यही कारण है कि एक ही भाषा एक युग के पश्चात् दूसरे युग में पहुँचकर पर्याप्त भिन्न हो जाती है। इस प्रकार परिवर्तन के कारण भाषा में विविधता आ जाती है। यदि भाषा-परिवर्तन पर बिल्कुल ही नियंत्रण न रखा जाए तो तीव्रगति के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में भाषा का रूप अबोध्य बन जाएगा। भाषा परिवर्तन पूर्णरूप से रोका तो नहीं जा सकता, किन्तु भाषा में बोधगम्यता बनाए रखने के लिए उसके परिवर्तन-क्रम का स्थिरीकरण आवश्यक होता है। इस प्रकार की स्थिरता से भाषा का मानकीकरण हो जाता है।

भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है–विभिन्न भाषाओं के प्राचीन, मध्ययुगीन तथा वर्तमान रूपों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप संयोगावस्था में होता है। इसे संश्लेषावस्था भी कहते हैं। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आता है और वियोगावस्था या विश्लेषणावस्था आ जाती है। भाषा की संयोगावस्था में वाक्य के विभिन्न अवयव आपस में मिले

हुए लिखे-बोले जाते हैं। परवर्ती अवस्था में यह संयोगवस्था धीरे-धीरे शिथिल होती जाती है, यथा–"रमेशस्य पुत्रः गृहं गच्छति। रमेश का पुत्र घर जाता है। 'रमेशस्य' तथा 'गच्छति' संयोगावस्था में प्रयुक्त हैं।

भाषा का अन्तिम रूप नहीं है–वस्तु बनते-बनते एक अवस्था में पूर्ण हो जाती है, तो उसका अन्तिम रूप निश्चित हो जाता है। भाषा के विषय में यह बात सत्य नहीं है। भाषा चिरपरिवर्तशील है। इसलिए किसी भी भाषा का अन्तिम रूप ढूँढ़ना निरर्थक है और उसका अन्तिम रूप प्राप्त कर पाना असम्भव है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि यह प्रकृति जीवित भाषा के संदर्भ में ही मिलती है।

भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है–विभिन्न भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है। मनुष्य स्वभावतः अल्प परिश्रम से अधिक कार्य करना चाहता है। इसी आधार पर किया गया प्रयत्न भाषा में सरलता का गुण भर देता है। इस प्रकृति का उदाहरण द्रष्टव्य है–डॉक्टर साहब, > डाक्टर साहब > डाटर साहब > डाक साहब > डाक् साब > डाक्साब।

भाषा नैसिर्गिक क्रिया है–मातृभाषा सहज रूप में अनुकरण के माध्यम से सीखी जाती है। अन्य भाषाएँ भी बौद्धिक प्रयत्न से सीखी जाती है। दोनों प्रकार की भाषाओं के सीखने में अन्तर यह है कि मातृभाषा तब सीखी जाती है जब बुद्धि अविकसित होती है, अर्थात् बुद्धि विकास के साथ मातृभाषा सीखी जाती है। इससे ही इस संदर्भ में होनेवाले परिश्रम का ज्ञान नहीं होता है। जब हम अन्य भाषा सीखते हैं, तो बुद्धि-विकसित होने के कारण ज्ञान-अनुभव होता है। कोई भी भाषा सीख लेने के बाद उसका प्रयोग बिना किसी कठिनाई के किया जा सकता है। जिस प्रकार शारीरिक चेष्टाएँ स्वाभाविक रूप से होती हैं ठीक उसी प्रकार भाषा-ज्ञान के पश्चात् उसकी भी प्रयोग सहज-स्वाभाविक रूप में होता है।

प्रत्येक भाषा की निश्चित सीमाएँ होती है–प्रत्येक भाषा की अपनी भौगोलिक सीमा होती है अर्थात् एक निश्चित दूरी तक एक भाषा का प्रयोग होता है। भाषा-प्रयोग के विषय में यह कहावत प्रचलित है-"चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।" एक भाषा से अन्य भाषा की भिन्नता कम या अधिक हो सकती है, किन्तु भिन्नता होती अवश्य है। एक निश्चित सीमा के पश्चात् दूसरी भाषा की भौगालिक सीमा प्रारम्भ हो जाती है, यथा–असमी भाषा

असम सीमा तक प्रयुक्त होती है, उसके बाद बंगला की सीमा शुरू हो जाती है। प्रत्येक भाषा की अपनी ऐतिहासिक सीमा होती है। एक निश्चित समय तक एक भाषा प्रयुक्त होती है, उससे पूर्ववर्ती तथा परवर्ती भाषा उससे भिन्न होती है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी निश्चित-प्रयोग समय से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है।

भाषा का माध्यम

अभिव्यक्ति का माध्यम

अपने भावों को अभिव्यक्त करके दूसरे तक पहुँचाने हेतु भाषा का उद्‌भव हुआ। भाषा के माध्यम से हम न केवल अपने, भावों, विचारों, इच्छाओं और आकांक्षाओं को दूसरे पर प्रकट करते हैं, अपितु दूसरों द्वारा व्यक्त भावों, विचारों और इच्छाओं को ग्रहण भी करते हैं। इस प्रकार वक्ता और श्रोता के बीच अभिव्यक्ति के माध्यम से मानवीय व्यापार चलते रहते हैं। इसलिए सुनना और सुनाना अथवा जानना और जताना भाषा के मूलभूत कौशल हैं, जो सम्प्रेषण के मूलभूत साधन हैं। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भाषा के अन्यतम कौशल है पढ़ना और लिखना जो विधिवत् शिक्षा के माध्यम से विकसित होते हैं।

चिन्तन का माध्यम

विद्यार्थी बहुत कुछ सुनें, बोलें या लिखें-पढ़ें, इतना पर्याप्त नहीं है, अपितु यह बहुत आवश्यक है कि वे जो कुछ पढ़े और सुनें, उसके आधार पर स्वयं चिन्तन-मनन करें। भाषा विचारों का मूल-स्रोत है। भाषा के बिना विचारों का कोई अस्तित्त्व नहीं है और विचारों के बिना भाषा का कोई महत्त्व नहीं। पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि ''बुद्धि के साथ आत्मा वस्तुओं को देखकर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है। मन शारीरिक शक्ति पर दबाव डालता है, जिससे वायु में प्रेरणा उत्पन्न होती है। वायु फेफड़ों में चलती हुई कोमल ध्वनि को उत्पन्न करती है, फिर बाहर की ओर जाकर और मुख के ऊपरी भाग से अवरुद्ध होकर वायु मुख में पहुँचती है और विभिन्न ध्वनियों को उत्पन्न करती है।" अतः वाणी के उत्पन्न के लिए चेतना, बुद्धि, मन और शारीरिक अवयव, ये चारों अंग आवश्यक हैं। अगर इन चारों में से किसी के पास एक या एकाधिक का अभाव हो तो वह भाषाहीन हो जाता है।

संस्कृति का माध्यम

भाषा और संस्कृति दोनों परम्परा से प्राप्त होती हैं। अत: दोनों के बीच गहरा सम्बन्ध रहा है। जहाँ समाज के क्रिया-कलापों से संस्कृति का निर्माण होता है, वहाँ सास्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा का ही आधार लिया जाता है। पौराणिक एवं साहसिक कहानियाँ, पर्व-त्यौहार, मेला-महोत्सव, लोक-कथाएँ, ग्रामीण एवं शहरी जीवन-शैली, प्रकृति-पर्यावरण, कवि-कलाकारों की रचनाएँ, महान विभूतियों की कार्यावली, राष्ट्रप्रेम, समन्वय-भावना आदि सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रभाव भी भाषा पर पड़ता है। दरअसल, किसी भी क्षेत्र विशेष के मानव समुदाय को परखने के लिए उसकी भाषा को समझना आवश्यक है। किसी निर्दिष्ट गोष्ठी के ऐतिहासिक उद्‌भव तथा जीवन-शैली की जानकारी प्राप्त करने हेतु उसकी भाषा का अध्ययन जरूरी है। संपृक्त जन-समुदाय के चाल-ढाल, रहन-सहन, वेशभूषा ही नहीं, अपितु उसकी सच्चाई, स्वच्छता, शिष्टाचार, सेवा-भाव, साहस, उदारता, निष्ठा, श्रमशीलता, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, कर्त्तव्यपरायणता आदि उसकी भाषा के अध्ययन से स्पष्ट हो जाते हैं।

साहित्य का माध्यम

भाषा साहित्य का आधार है। भाषा के माध्यम से ही साहित्य अभिव्यक्ति पाता है। किसी भी भाषा के बोलनेवालों, जन-समुदाय के रहन-सहन, आचार-विचार आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला उस भाषा का साहित्य होता है। साहित्य के जरिए हमें उस निर्दिष्ट समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का परिचय मिलता है। केवल समकालीन जीवन का ही नहीं, बल्कि साहित्य हमें अपने अतीत से उसे जोड़कर एक विकसनशील मानव-सभ्यता का पूर्ण परिचय देता है। साथ ही साहित्य के अध्ययन से एक उन्नत एवं उदात्त विचार को पनपने का अवसर मिलता है तो उससे हम अपने मानवीय जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अत: भाषा का साहित्यिक रूप हमारे बौद्धिक एवं भावात्मक विकास में सहायक होता है और साहित्य की यह अनमोल सम्पत्ति भाषा के माध्यम से ही हम तक पहुँच पाती है। उत्तम साहित्य समृद्ध तथा उन्नत भाषा की पहचान है।

4

भाषा की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए दो मुख्य आधार है–

1. प्रत्यक्ष मार्ग

भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का उल्लेख किया है। जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं–

दिव्य उत्पत्ति का सिद्धान्त

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को मानने वाले भाषा को ईश्वर की देन मानते हैं। इस प्रकार न तो वे भाषा को परम्परागत मानते है और न मनुष्यों द्वारा अर्जित। इन विद्वानों के अनुसार भाषा की शक्ति मनुष्य अपने जन्म के साथ लाया है और इसे सीखने का उसे प्रयत्न करना नहीं पड़ा है। इस सिद्धान्त को मानने वाले विभिन्न धर्म ग्रन्थों का उदाहरण अपने सिद्धान्त के समर्थन में देते है। हिन्दू धर्म मानने वाले वेदों को, इस्लाम धर्मावलम्बी कुरान शरीफ को, ईसाई बाइबिल को। वे भाषा को मनुष्यों की गति न मानकर ईश्वर निर्मित मानते है और इन ग्रन्थों में प्रयुक्त भाषाओं को संसार की विभिन्न भाषाओं की आदि भाषायें मानते है। इसी प्रकार बौद्ध अपने धर्मग्रन्थों की भाषा पाली को मूल भाषा मानते हैं।

धातु सिद्धान्त

भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी दूसरा प्रमुख सिद्धान्त धातु सिद्धान्त है। सर्वप्रथम **प्लेटो** ने इस ओर संकेत किया था। परन्तु इसकी स्पष्ट विवेचना करने का श्रेय जर्मन विद्वान प्रो. हेस को है। इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न वस्तुओं की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति प्रारम्भ में धातुओं से होती थी। इनकी संख्या आरम्भ में बहुत बड़ी थी परन्तु धीरे-धीरे लुप्त होकर कुछ सौ ही धातुएं रही। **प्रो. हेस** का कथन है कि इन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई है।

संकेत सिद्धान्त

यह सिद्धान्त अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ क्योंकि इसका आधार काल्पनिक है और यह कल्पना भी आधार रहित है। इस सिद्धान्त के अनुसार सर्वप्रथम मनुष्य बन्दर आदि जानवरों की भाँति अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति भावबोधक ध्वनियों के अनुकरण पर शब्द बनाये होगे। तत्पश्चात् उसने अपने संकेतों के अंगों के द्वारा उन ध्वनियों का अनुकरण किया होगा। इस स्थिति में स्थूल पदार्थों की अभिव्यक्ति के लिए शब्द बने होंगे। संकेत सिद्धान्त भाषा के विकास के लिए इस स्थिति को महत्वपूर्ण मानता है। उदाहरण के लिए पत्ते के गिरने से जो ध्वनि होती है, उसी आधार पर "पत्ता" शब्द बन गया।

अनुकरण सिद्धान्त

भाषा उत्पत्ति के इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा की उत्पत्ति अनुकरण के आधार पर हुई है। इस सिद्धान्त के मानने वाले विद्वानों का तर्क है कि मनुष्य ने पहले अपने आसपास के जीवों और पदार्थों की ध्वनियों का अनुकरण किया होगा। और फिर उसी आधार पर शब्दों का निर्माण किया होगा। उदाहरण के लिए काऊँ-काऊँ ध्वनि निकालने वाले पक्षी का नाम इसी ध्वनि के आधार पर संस्कृत में काक, हिन्दी में कौआ तथा अंगेजी में crow पडा। इसी प्रकार बिल्ली की म्याऊँ ध्वनि के आधार पर चीनी भाषा में बिल्लीं को "मियाऊ" कहा जाने लगा। इस प्रकार यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि भाषा की उत्पत्ति अनुकरण सिद्वान्त पर हुई है।

अनुसरण सिद्धान्त

यह सिद्धान्त भी अनुकरण सिद्धान्त से मिलता है। इस सिद्धान्त के मानने वालों का भी यही तर्क है कि मनुष्यों ने अपने आस-पास की वस्तुओं की

ध्वनियों के आधार पर शब्दों का निर्माण किया है। इन दोनों सिद्धान्तों में अन्तर इतना है कि जहाँ अनुकरण सिद्धान्त में चेतन जीवों की अनुकरण की बात थी, वहीं इस सिद्धान्त में निर्जीव वस्तुओं के अनुकरण की बात है। उदाहरण के लिए नदी की कल-कल ध्वनि के आधार पर उसका नाम कल्लोलिनी पड़ गया। इस प्रकार हवा से हिलते दरवाजे की ध्वनि के आधार पर लड़खड़ाना, बड़बड़ाना जैसे शब्द बने। अंग्रेजी के Murmur, Thunder जैसे शब्द भी इसी अनुसरण सिद्धान्त के आधार पर बनें।

श्रम परिहरण सिद्धान्त

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और परिश्रम करना उसकी स्वाभाविक विशेषता है। श्रम करते समय जब थकने लगता है, तब उस थकान को दूर करने के लिए कुछ ध्वनियों का उच्चारण करता है। **न्वायर** (Noire) नामक विद्वान ने इन्हीं ध्वनियों को भाषा उत्पत्ति का आधार मान लिया है। उसके अनुसार कार्य करते समय जब मनुष्य थकता है, तब उसकी सांसें तेज हो जाती है। सांसों की इस तीव्र गति के आने जाने के परिणामस्वरूप मनुष्य के वाग्यंत्र की स्वर -तन्त्रियां म्पित होने लगती है और अनेक अनुकूल ध्वनियॉ निकलने लगती है फलस्वरूप मनुष्य के श्रम से उत्पन्न थकान बहुत कुछ दूर हो जाती है। इसी प्रकार ठेला खींचने वाले मजदूर 'हइया' ध्वनि का उच्चारण करते है। इस सिद्धान्त के मानने वाले इन्हीं ध्वनियों के आधार पर भाषा की उत्पत्ति मानते है।

मनोभावसूचक सिद्धान्त

भाषा उत्पत्ति का यह सिद्धान्त मनुष्य की विभिन्न भावनाओं की सूचक ध्वनियों पर आधारित है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक **मैक्समूलर** ने इसे पूह-पूह सिद्धान्त कहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य विचारशील होने के साथ-साथ भावनाप्रधान प्राणी भी है। उसके मन में दु:ख, हर्ष, आश्चर्य आदि अनेक भाव उठते हैं। वह भावों को विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण के द्वारा प्रकट करता है, जैसे प्रसन्न होने पर अहा। दु:खी होने पर आह। आश्चर्य में पड़ने पर अरे जैसी ध्वनियों का उच्चारण करता है। इन्हीं ध्वनियों के आधार पर यह सिद्धान्त भाषा की उत्पत्ति मानता है।

विकासवाद का समन्वित रूप

भाषा उत्पत्ति की खोज के प्रत्यक्ष मार्ग का यह सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वीट ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया था। उन्होंने भाषा की उत्पत्ति के उपर्युक्त सिद्धान्तों के कुछ सिद्धान्तों को लेकर इनके समन्वित रूप से भाषा की उत्पत्ति की है। यह सिद्धान्त तीन हैं–

अनुकरणात्मक, मनोभावसूचक और प्रतीकात्मक। स्वीट के अनुसार भाषा अपने प्रारम्भिक रूप में इन तीन अवस्थाओं में थी। इस प्रकार भाषा का आरम्भिक शब्द समूह तीन प्रकार का था।

पहले प्रकार के शब्द अनुकरणात्मक थे। अर्थात् दूसरे जीव जन्तुओं की ध्वनियों का अनुकरण करके मनुष्य ने वे शब्द बनाये थे, जैसे चीनी मियाऊं, बिल्ली की मियाऊं ध्वनि के आधार पर बना और बिल्ली नामक जानवर का नाम ही पड़ गया। इसी प्रकार कौए के बोलने से उत्पन्न ध्वनि के आधार पर हिन्दी में कौआ और संस्कृत में उसे काक कहा जाने लगा।

स्वीट के अनुसार भाषा की प्रारम्भिक अवस्था के दूसरे प्रकार के शब्द मनोभावसूचक थे। मनुष्य अपने अन्तर्मन की भावनाओं को प्रकट करने के लिए इस प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण करता होगा और कालान्तर में उन्हीं ध्वनियों ने भावों को सूचित करने वाले शब्दों का रूप ले लिया। आह! अहा! आदि शब्द ऐसे ही विभिन्न भावसूचक है।

तीसरे प्रकार के शब्दों के अन्तर्गत स्वीट ने प्रतीकात्मक शब्दों को रखा। उनके अनुसार भाषा की प्रारम्भिक अवस्था में इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत अधिक रही होगी। प्रतीकात्मक शब्दों का तात्पर्य ऐसे शब्दों से है, जो मनुष्य के विभिन्न सम्बन्धों से, जैसे खाना-पीना, हँसना-बोलना आदि और विभिन्न सर्वनामों जैसे यह, वह, मैं, तुम आदि के प्रतीक बन गये है। स्वीट का मत था कि इन शब्दों की संख्या प्रारम्भ में बहुत व्यापक रही होगी और इसीलिए उन्होंने प्रथम तथा द्वितीय वर्ग से बचे उन सभी शब्दों को भी इस तीसरे वर्ग में रखा है, जिनका भाषा में प्रयोग होता है।

इस प्रकार स्वीट के अनुसार अनुकरणात्मक, भावबोधक तथा प्रतीकात्मक शब्दों के समन्वय से भाषा की उत्पत्ति हुई है और फिर कालान्तर में प्रयोग प्रवाह में आकर भाषा में बहुत से शब्दों का अर्थ विकसित हो गया और नये शब्द बनते चले गये।

परोक्ष मार्ग

भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए प्रत्यक्ष मार्ग के अतिरिक्त परोक्ष मार्ग भी है। इस मार्ग के अंतर्गत भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने की दिशा उल्टी हो जाती है अर्थात् हम भाषा के वर्तमान रूप का अध्ययन करते हुये अतीत की ओर चलते हैं। इस मार्ग के अंतर्गत अध्ययन की तीन विधियां हैं–

शिशुओं की भाषा

कुछ भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि शिशुओं के द्वारा प्रयुक्त शब्दों के आधार पर हम भाषा की आरंभिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। शिशुओं की भाषा बाह्य प्रवाहों से उतना प्रभावित नहीं रहती, जितनी कि मनुष्यों की भाषा। इसलिए बच्चों की भाषा के अध्ययन से यह पता लगाया जा सकता है कि भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई होगी। क्योंकि जिस प्रकार बच्चा अनुकरण से भाषा सीखता है उसी प्रकार मनुष्यों ने भाषा सीखी होगी।

असभ्यों की भाषा

कुछ भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा उत्पत्ति की खोज संसार की असभ्य जातियों के द्वारा प्रयुक्त भाषाओं के अध्ययन के द्वारा की जा सकती है। असभ्य जातियाँ चूंकि संसार के सभ्य क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव से बची रहती हैं, अत: उनकी भाषा भी परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होती। अत: उनकी भाषाओं के अध्ययन और विश्लेषण से भाषा की प्रारंभिक अवस्था का पता चल सकता है।

आधुनिक भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन

भाषा की उत्पत्ति की खोज का एक आधार भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन भी है। इस सिद्धांत के अनुसार हम एक वर्तमान भाषा को लेकर प्राप्त सामग्री के आधार पर भाषा के इतिहास की खोज करते हैं। इस खोज में हमें अतीत की ओर लौटना पड़ता है। अतीत की यह यात्रा तब तक चलती रहती है जब तक हमें उस भाषा विशेष के प्राचीनतम आधार न मिल जायें।

भाषा उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए परोक्ष मार्ग का यह सिद्धांत अधिक उपयुक्त है। उपयुक्तता का यह कारण इस खोज की विश्वसनीयता है क्योंकि इस खोज के अंतर्गत हम भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। यह

अध्ययन कई आधारों पर होता है जैसे–रूप,ध्वनि, अर्थ आदि। अध्ययन के ये आधार वैज्ञानिक हैं, फलस्वरूप किसी भाषा विशेष की ऐतिहासिक खोज अधिक विश्वसनीय हो जाती है, यही कारण है कि भाषा की उत्पत्ति का यह सिद्धांत अधिक उपयुक्त एवं मान्य है।

भाषा के प्रकार्य

भाषा का प्रकार्यात्मक अध्ययन प्राग स्कूल की देन है। अतः प्राग संप्रदाय को प्रकार्यवादी संप्रदाय भी कहा जाता है। प्राग संप्रदाय में इस दिशा में कार्य करने वाले भाषा वैज्ञानिक **रोमन याकोव्यसन** और **मार्तिने कर** हैं। अतः उन्हें प्रकार्यवादी (Functionalist) भी कहा जाता है।

भाषिक प्रकार्य–में भाषा का विश्लेषण सामान्य संरचना के आधार पर नहीं किया जाता। प्रकार्यवादी भाषा के विभिन्न प्रकार्यों के आधार पर भाषा का विश्लेषण करते हैं।

सामान्यतः भाषा के अंतर्गत आने वाली इकाइयों के अपने प्रकार्य (Function) होते हैं, जिनका अध्ययन भाषा विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। किंतु प्राग संप्रदाय ने भाषा के अपने प्रकार्यों को अध्ययन का विषय बनाया। रोमन याकोव्यसन के अनुसार भाषा को तीन दृष्टियों से देखना चाहिये।

वक्ता,
श्रोता,
संदर्भ।

वक्ता की दृष्टि से भाषा अभिव्यक्ति प्रकार्य करती है, श्रोता की दृष्टि से प्रभाविक प्रकार्य करती है। और संदर्भ की दृष्टि से सांप्रेषणिक प्रकार्य करती है। इसके अतिरिक्त संपर्क, कूट,और संदेश ये तीन संदर्भ भी भाषा बनाती है।अतः याकोव्यसन ने छः प्रकार्य माने हैं।

अभिव्यक्ति प्रकार्य,
इच्छापरक,
अभिधापरक,
संपर्कद्योतक,
आधिभाषिक,
काव्यात्मक।

प्रकार्यवादियों के अनुसार भाषा की संरचना प्रकार्य के अनुसार बदल जाती है। इस प्रकार एक ही भाषा प्रकार्यानुसार भिन्न -भिन्न रूपों में प्रस्तुत होती है। भाषा के इन समस्त रूपों को चार भागों में सम्मिलित किया जाता है। याकोव्यसन ने वक्ता, श्रोता और संदर्भ तीन तत्त्वों के आधार पर प्रमुख तीन प्रकार बताये हैं। उपर्युक्त छः रूप भाषा के अभिव्यक्तिक संदर्भ से जुड़े हैं। अतः हम इसे निम्न रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं–

सांप्रषणिक प्रकार्य–जब वक्ता द्वारा श्रोता को कोई सूचना संप्रेषित की जाती है और सीधे विचार विनिमय होता है तो भाषा संरचना का स्तर अलग होता है, जिसे हम सांप्रेषणिक प्रकार्य कहते हैं। सामान्य वार्तालाप में इसी प्रकार्य का प्रयोग होता है।

अभिव्यक्ति प्रकार्य–भाषा के द्वारा वक्ता अपने आपको अभिव्यक्त करता है। अतः हर व्यक्ति की भाषा कुछ न कुछ बदल जाती है, जिसे हम उसकी शैली कह सकते हैं। भाषा के सभी स्तरों पर यह परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यहां तक कि साहित्य-सृजन में भी कथा भाषा और काव्य-भाषा का अंतर साम्य देखा जा सकता है। इस प्रकार भाषा की संरचना एक स्तर पर नहीं होती। अभिव्यक्तिक प्रकार्यानुसार भाषा संरचना में परिवर्तन आता है।

प्रभाविक प्रकार्य–भाषा का प्रयोग जब इस रूप में होता है, जिसमें संप्रेषण और आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा श्रोता को प्रभावित करना ही मुख्य उद्देश्य हो तो उसे भाषा का प्रभाविक प्रकार्य कहा जाता है। भाषणों की भाषा मुख्यतः प्रभाविक होती है, जिसका उद्देश्य श्रोता को प्रभावित करना है। अतः भाषणों की संरचना और उसका अनुमान अलग होता है। इसकी संरचना शब्दावली भी भिन्न होती है।

समष्टिक प्रकार्य–भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा के उपर्युक्त तीन प्रकार अलग-अलग अवसरों पर प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार्यों से समन्वित भाषा का अस्तित्त्व अलग होता है, जिससें सामाजिक प्रकार्य कहा जा सकता है। समन्वित भाषा संरचना का अपना प्रकार्य होता है। यह उसी प्रकार है, जैसे अलग-अलग वस्तुएं अपना स्वतंत्र महत्व रखती हैं, लेकिन उन्हें एक साथ प्रस्तुत किया जाये तो किसी अन्य वस्तु का बोध कराती हैं। उदाहरण के लिए इडली, डोसा स्वयं में अलग खाद्य हैं पर समष्टि रूप में दक्षिण भारतीय व्यंजनों के रूप में माने जायेंगे।

इसी प्रकार अलग-अलग प्रकार्य के रूप में प्रस्तुत होने पर भी भाषा की अपनी निजता होती है। सामान्य क्रम में रेडियो या आकाशवाणी कुछ कहे लेकिन समष्टिक रूप में हिंदी का प्रतिनिधित्व करने वाला शब्द आकाशवाणी है। इस तरह भाषा का जो निजी अस्तित्त्व है और अभिव्यक्ति से पृथक है, उसे समष्टिक प्रकार्य कहा जा सकता है।

इसी प्रकार्यात्मक अध्ययन के आधार पर प्राग स्कूल में भाषा के मानक रूप का अध्ययन हुआ। रोमन याकोव्यसन ने भाषा के प्रकार्यों का निर्धारण करके भाषा के अभिलक्षणों और ध्वनियों का अध्ययन किया है, जो उनकी महत्वपूर्ण देन है।

भाषा की विशेषताएं

जब हम भाषा का संदर्भ मानवीय भाषा से लेते हैं। तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषताएं या अभिलक्षण कौन-कौन से हैं। ये अभिलक्षण ही मानवीय भाषा को अन्य भाषिक संदर्भों से पृथक करते हैं। **हॉकिट** ने भाषा के सात अभिलक्षणों का वर्णन किया है। अन्य विद्वानों ने भी अभिलक्षणों का उल्लेख करते हुए आठ या नौ तक संख्या मानी है। मूल रूप से 9 अभिलक्षणों की चर्चा की जाती है–

यादृच्छिकता- 'यादृच्छिकता' का अर्थ है -माना हुआ। यहां मानने का अर्थ व्यक्ति द्वारा नहीं वरन् एक विशेष समूह द्वारा मानना है। एक विशेष समुदाय किसी भाव या वस्तु के लिए जो शब्द बना लेता है, उसका उस भाव से कोई संबंध नहीं होता। यह समाज की इच्छानुसार माना हुआ संबंध है, इसलिए उसी वस्तु के लिए भाषा में दूसरा शब्द प्रयुक्त होता है।भाषा में यह यादृच्छिकता शब्द और व्याकरण दोनों रूपों में मिलती है। अत: यादृच्छिकता भाषा का महत्वपूर्ण अभिलक्षण है।

सृजनात्मकता- मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषता उसकी सृजनात्मकता है। अन्य जीवों में बोलने की प्रक्रिया में परिवर्तन नहीं होता पर मनुष्य शब्दों और वाक्य-विन्यास की सीमित प्रक्रिया से नित्य नए-नए प्रयोग करता रहता है। सीमित शब्दों को ही भिन्न-भिन्न ढंग से प्रयुक्त कर वह अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। यह भाषा की सृजनात्मकता के कारण ही संभव हो सका है। सृजनात्मकता को ही उत्पादकता भी कहा जाता है।

अनुकरणग्राहता–मानवेतर प्राणियों की भाषा जन्मजात होती है तथा वे उसमें अभिवृद्धि या परिवर्तन नहीं कर सकते किंतु मानवीय –भाषा जन्मजात नहीं होती। मनुष्य भाषा को समाज में अनुकरण से धीरे–धीरे सीखता है। अनुकरण ग्राह्य होने के कारण ही मनुष्य एक से अधिक भाषाओं को भी सीख लेता है। यदि भाषा अनुकरण ग्राह्य न होती तो मनुष्य जन्मजात भाषा तक ही सीमित रहता।

परिवर्तनशीलता–मानव भाषा परिवर्तनशील होती है। वही शब्द दूसरे युग तक आते–आते नया रूप ले लेता है। पुरानी भाषा में इतने परिवर्तन हो जाते हैं। कि नई भाषा का उदय हो जाता है। संस्कृत से हिन्दी तक की विकास यात्रा भाषा की परिवर्तनशीलता का उदाहरण है।

विविक्तता– मानव भाषा विच्छेद है। उसकी संरचना कई घटकों से होती है। ध्वनि से शब्द और शब्द से वाक्य विच्छेद घटक होते है। इस प्रकार अनेक इकाइयों का योग होने के कारण मानव भाषा को विविक्त कहा जाता है।

द्वैतता–भाषा में किसी वाक्य में दो स्तर होते हैं। प्रथम स्तर पर सार्थक इकाई होती है दूसरे स्तर पर निरर्थक। कोई भी वाक्य इन दो स्तरों के योग से बनता है। अत: इसे द्वैतता कहा जाता है। भाषा में प्रयुक्त सार्थक इकाइयों को रूपिम और निरर्थक इकाइयों को स्वनिम कहा जाता है। स्वनिम निरर्थक इकाइयां होने पर भी सार्थक इकाइयों का निर्माण करती हैं। इसके साथ ही ये निरर्थक इकाइयॉं अर्थ भेदक भी होती हैं। जैसे d+v+j+v में चार स्वनिम है, जो निरर्थक इकाइयां हैं पर कर रूपिम सार्थक इकाई हैं। इसे ही [k+v+j+v कर दे तो खर रूपिम बनेगा किंतु 'कर' और 'खर' में अर्थ भेदक इकाई रूपिम नहीं, स्वनिम क और ख है। इस प्रकार रूपिम अगर अर्थद्योतक इकाई है तो स्वनिम अर्थ भेदक। इन दो स्तरों से भाषा की रचना होने के कारण भाषा को द्वैत कहा गया है।

भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन–भाषा में दो पक्ष होते हैं–वक्ता और श्रोता। वार्ता के समय दोनों पक्ष अपनी भूमिका को परिवर्तित करते रहते हैं। वक्ता श्रोता और श्रोता वक्ता होते रहते हैं। इसे ही भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन कहते है।

अंतरणता–मानव भाषा भविष्य एवं अतीत की सूचना भी दे सकती है तथा दूरस्थ देश का भी। इस प्रकार अंतरण की विशेषता केवल मानव भाषा में है।

असहजवृत्तिकता–मानवेतर भाषा प्राणी की सहजवृत्ति आहार निद्रा भय, मैथुन से ही संबंद्ध होती है और इसके लिए वे कुछ ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। किंतु मानव भाषा सहजवृत्ति नहीं होती है। वह सहजात वृत्तियों से संबंधित नहीं होती। भाषा के ये अभिलक्षण मानवीय भाषा को अन्य ध्वनियों या मानवेत्तर प्राणियों से अलग करने में समर्थ हैं।

भाषा के विविध रूप

भाषा के स्वरूप पर विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा के अनेक प्रकार होते है। मुख्यतः इतिहास, क्षेत्र, प्रयोग, निर्माण, मानकता और मिश्रण के आधारों पर भाषा के बहुत से रूप होते हैं। उदाहरण के लिए इतिहास के आधार पर अनेक भाषाओं की जन्मदात्री मूलभाषा जैसे संस्कृत ग्रीक आदि को प्राचीन भाषाय पाली, प्राकृत को मध्यकालीन भाषा तथा हिंदी, मराठी, बंगला को आधुनिक भाषा से इंगित किया जाता है। क्षेत्र के आधार पर भाषा का सबसे छोटा रूप बोली होती है। इनमें से प्रमुख भाषा रूप निम्नलिखित हैं–

मूलभाषा

'मूलभाषा' भाषा का वह प्राथमिक स्वरूप है, जो स्वयं किसी से प्रसूत नहीं होता अपितु वह दूसरों को ही प्रसूत करता है। भाषा की उत्पत्ति अत्यंत प्राचीन काल में उन स्थानों पर हुई होगी जहां अनेक लोग एक साथ रहते रहे होंगे। ऐसे स्थानो में से किसी एक स्थान की भाषा की निर्मिति की पहली प्रक्रिया मूलभाषा कहलाती है, जिसने कालांतर में ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कारणों से अनेक भाषाओं,बोलियों तथा उपबोलियों को जन्म दिया होगा।

क्षेत्रीय बोलिया

जब हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तो हमें भाषा का परिवर्तन समझ में आने लगता है। यह परिवर्तन जैसे-जैसे दूरियां बढ़ती हैं, स्पष्ट समझ में आने लगता है।भाषा के ऐसे सीमित एवं क्षेत्र विशेष के रूप को बोली कहा जाता है। जो ध्वनि, रूप, वाक्य अर्थ, शब्द तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से भिन्न हो सकती है। इस प्रकार जब एक भाषा के अंतर्गत कई अलग-अलग रूप विकसित हो जाते हैं तो उन्हें बोली कहते हैं। ये बोलियां बुंदेली, बघेली,

भोजपुरी, मालवी आदि हैं। उदाहरण के लिए –खड़ी बोली एवं बुंदेली बोली के कुछ शब्दों को देखते हैं,

ध्वनि के स्तर पर भिन्नता

खड़ी बोली –		**बुंदेली बोली**
लड़का	–	लरका
मछली	–	मछरिया
लेना	–	लेव

शब्दों के स्तर पर भिन्नता

खड़ी बोली	–	बुंदेली बोली
पेड़	–	रूख
मांस	–	गोश
सिर	–	मूड
पैर	–	गोड़ो

व्यक्ति बोली

भौगोलिक दृष्टि तथा सामाजिक इकाई के आधार पर भाषा व्यवहार का लघुतम रूप व्यक्ति बोली है। किसी भाषा समाज में आने वाला व्यक्ति अपने कुछ विशिष्टताओं के कारण भाषिक विभेद को प्रदर्शित करता है। यद्यपि यह विभेद ऐसा नहीं होता कि अपने समाज के अन्य व्यक्तियों के द्वारा समझा न जा सके। मनुष्य में भाषा सीखने की प्राकृतिक क्षमता है। किंतु सीखने का कार्य, किसी भाषा समाज में ही हो सकता है। जिस समाज में वह जन्म लेता है, जहां पलता है। वहां की भाषा वह सीख लेता है। वह केवल छोटे से समूह में प्रचलित बोली की ही नहीं, बल्कि व्यापक धरातल पर प्रयुक्त मानक भाषा तथा आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं का प्रयोग करता है।

अपभाषा या विकृत भाषा

अंग्रेजी के स्लैग का हिंदी रूपांतरण है। किसी भाषा समाज में एक निश्चित शिष्टाचार से च्युत भाषा संरचना को शिष्ट भाषा कहते हैं। इसका प्रचलन विशेष श्रेणी या सम वर्गों में होता है। अपभाषा में अशुद्धता तथा

अश्लीलता का समावेश हो जाता है। इसके प्रयोक्ता प्रायः शब्द निर्माण या वाक्य निर्माण में व्याकरण के नियमों को ओझल कर देते हैं। अपभाषा में सामान्य संकेतिक अर्थ का अपकर्ष दिखाई देता है। वैसे अपभाषा के कुछ प्रयोग अपनी सशक्त व्यंजना के कारण शिष्ट भाषा में स्वीकृत हो जाते हैं। मक्खन लगाना, चमचागिरी आदि इसी तरह के प्रयोग हैं। गाली–गलौच को भी अपभाषा का उदाहरण माना जा सकता है। 1960-70 के बीच कविता के कुछ ऐसे आंदोलन चले, जिनमें अपभाषा का खुलकर व्यवहार किया गया। हिंदी के कुछ उपन्यासों तथा कहानियों में भी अपभाषा का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

व्यावसायिक भाषा

व्यावसायिक वर्गों के आधार पर भाषा की अनेक श्रेणियां बन जाती है। किसान, बढ़ई, डॉक्टर, वकील, पंडित, मौलवी,दुकानदार आदि की भाषा में व्यावसायिक शब्दावलियों के समावेश के कारण अंतर हो जाता है। इस व्यावसायिक शव्दावली की स्थिति बहुत कुछ पारिभाषिक होती है। कुछ व्यवसायों में बहुप्रचलित शब्दावली के स्थान पर विशिष्ट अर्थसूचक नयी शब्दावली गढ़ ली जाती है। इसकी स्थिति बहुत कुछ सांकेतिक भाषा जैसी होती है। कभी-कभी यह अपभाषा की कोटि में पहुँच जाती है। कहारों की भाषा (वधू की डोली ढोते समय) इसी तरह की होती है। बैल के व्यवसायी आपस में एक भाषा बोलते हैं, जिसे ग्राहक बिल्कुल नहीं समझ पाता है। मौलवी साहव जब हिंदी बोलते हैं तो उनका झुकाव प्रायः अरबी- फारसी, निष्ठ भाषा की ओर रहता है और पंडित जी की हिंदी- संस्कृत की ओर झुकी रहती है।

कूट भाषा

इसे अंग्रेजी में कोड लेंग्वेज कहते हैं। कूट भाषा का प्रयोग पांडित्य प्रदर्शन, मनोरंजन,तथा गोपन के लिए होता है। सेना में कूट भाषा का प्रयोग गोपन के लिए होता है। इसमें शब्दों को सर्वप्रचलित अर्थ के स्थान पर नये अर्थों से जोड़कर प्रयुक्त किया जाता है, इनका अर्थ वही व्यक्ति समझ पाता है, जिसे पहले से बता दिया होता है। सूर ने साहित्यिक चमत्कार दिखाने के लिए कूट के पदों की रचना की है, जिनका अर्थ साहित्य-शास्त्रियों द्वारा ही प्रस्फुटित किया जा सकता है।

कृत्रिम भाषा

यह निर्मित भाषा है संसार में अनेक भाषाएं हैं। एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषी को बिना पूर्व शिक्षा के समझ नहीं पाता। भाषा भेद के कारण जीवन के विविध क्षेत्र जैसे–व्यवसाय, राजनीति, भ्रमण, शिक्षा आदि में बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। इस समस्या के निवारण के लिए 'ऐसपेरन्तो' नामक कृत्रिम भाषा बनाई गई। यूरोप में कुछ लोग इस भाषा को सीखते भी हैं। इस भाषा के निर्माण में जो उद्देश्य था वह निश्चित ही महत्वपूर्ण था। किंतु जनाधार के अभाव में यह भाषा उस उद्देश्य को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकी। कृत्रिम भाषा में सामान्य बातचीत ही हो सकती, गंभीर चिंतन या साहित्य लेखन नहीं हो सकता। भाषा एक तरह से मानव के संस्कार का अभिन्न हिस्सा है, इसलिए उसकी सृजनशीलता भी मातृभाषा में ही घटित होती है। अपनी मातृभाषा के उच्चारणात्मक संस्कार के साथ यदि ऐसपेरन्तो का उच्चारण करेगा तो उसमें भी परिवर्तन ला देगा। इस तरह पुनः भाषा की एकता खंडित हो जायेगी।

मिश्रित भाषा

दो भाषाओं के मिश्रण से इसका निर्माण होता है। इससे सामान्य कार्य -व्यवसाय आदि किये जाते हैं। चीन में अंग्रेजी शब्दों को चीनी उच्चारण तथा व्याकरण के अनुसार ढालकर पीजिन का निर्माण किया गया है। दक्षिण अफ्रीका में डच अंग्रेजी बांटू से मिश्रित भाषा का निर्माण हुआ है। कभी-कभी दो भाषाओं का मिश्रण इतना सबल तथा आवश्यक हो जाता है कि एक समुदाय अपनी मातृभाषा को छोड़ देता है जमेका, त्रिनिनाद, मारीशस, विभिन्न समुदायों के मिलन से संकर भाषाएं बन गयी हैं। इन भाषाओं को अंग्रेजी में क्रियोल (संकर) कहा जाता है। इंडोनेशिया की शिशूल विश्व की सर्वाधिक संकर भाषा मानी गयी। उर्दू को भी संकर भाषा कहा जा सकता है।

मानक भाषा

भाषा का आदर्श रूप उसे माना जाता है, जिसमें एक बड़े समुदाय के लोग विचार विनिमय करते हैं। अर्थात् इस भाषा का प्रयोग शिक्षा, शासन और साहित्य रचना के लिए होता है। अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी और हिन्दी इसी प्रकार की भाशाएं है। यह व्याकरणबद्ध होती है।

5

भाषायी समस्या

भाषा लोक व्यवहार का सशक्त साधन है। भावोद्‌गार को प्रकट करने, विचार को बोधगम्य बनाने तथा जगत-व्यवहार को चलाने का विश्वव्यापी माध्यम है। एक दूसरे को भली-भांति जानने, पहचानने और समझने की कुंजी है। इसके अभाव में भाव मुक्त, विचार बधिर और व्यवहार लंगड़े बनकर रह जाते हैं। इसी के बल तथा आश्रय से मनुष्य इतर प्राणियों से भिन्न और पृथक् होकर अपने को सभ्य एवं संस्कृत कहलाने का दम भरता है।

परंतु इन जैसी बातों तथा विशेषताओं के रहते भी अभी तक ऐसी कोई विश्वव्यापी भाषा नहीं बन पाई है, जिसे सर्वमान्य ठहराया जा सके। इसके ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा शारीरिक जैसे कई कारण हैं। किसी वस्तु, बात या विषय का आरंभ या उसकी रचना देश काल की सीमा के भीतर परिवेश या परिस्थिति विशेष में हुआ करता है और उसका प्रचार-प्रसार अथवा संकोच विस्तार पुरुषार्थ के परिणाम के अनुपात के अनुरूप होता है। इसलिए इनका स्वरूप भेद इनके मूल उद्देश्य की पूर्ति में बाधक न होकर सहायक ही बनना चाहिए।

भाषा भेद किसी न किसी रूप और मात्रा में सब समय रहता है। मध्य काल में जब क्षेत्रीय बोलियाँ अपने-अपने विकास पथ पर बड़ी तीव्र गति से अग्रसर हो रही थीं, वैसा टकराव-बिखराव न था। उन दिनों न तो कोई भाषायी समस्या थी न ही विवाद था। भाषायी विवाद और समस्या को जन्म देकर

उकसाने-उभारने का सारा श्रेय ब्रिटिश शासन और उसके अवयवों को है। यह विरासत हमें उन्हीं की कूटनीति के दुष्परिणाम स्वरूप मिली है, जिसे आज इसने अपने सिरदर्द के रूप में पाल लिया है। उसके कुफल को भोगना अनिवार्य सा हो चला है। इससे त्रण पाने के लिए सूझ-बूझ और सद्भावना की आवश्यकता है, क्योंकि भाषा किसी धर्म या जाति से ही बँधकर अपने राष्ट्रीय चरित्र और विश्वजनीन प्रकृति से वंचित रह जाती है।

विडंबना यह है कि सब समय ऐसा नहीं हो पाता है। कभी-कभी संकुचित स्वार्थ के कारण दृष्टि पथ धूमिल पड़ जाता है और मनुष्य की जय यात्रा में एक भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फलस्वरूप वह पथभ्रष्ट ही नहीं, लक्ष्य विरत भी हो जाता है, जिसकी परिणति संघर्ष में होती है। उसकी रचनात्मक प्रवृत्तियों का स्थान ध्वंसकारी गतिविधियाँ ले लेती हैं। इसका एक स्वाभाविक कुपरिणाम यह होता है कि निहित स्वार्थ वालों की बन जाती है और उनकी कुचालें फलवती दिखाई देने लगती हैं। दाँव-पेंच से अनभिज्ञ व्यक्तियों के निर्विकार चित्त में भी विकार घर बना लेता है और धीरे-धीरे पलती दरारें भी खाई बनकर दुराव ला देती हैं, जिन्हें पार करना सब समय सुगम या संभव नहीं हो पाता है। इसके लिए असीम धैर्य, समय तथा सक्रियता की अपेक्षा एवं आवश्यकता हुआ करती है। एक बार एकता सूत्र के उलझ जाने पर अभिन्नता का बोध कराना कठिन तथा दुरूह हो जाता है। विश्वजनीनता का भाव कवि कल्पना मात्र लगने लगता है। उसकी अखंडता को मार्मिक आघात पहुँचता है।

हमारे तत्त्व चिंतक पूर्व पुरुष नानात्व में एकत्व का अनुभव कर सके थे। इसलिए 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी अनुभूति को वाणी प्रदान कर पाते थे। उन्हें राष्ट्र का भी बोध था, किंतु पूरक रूप में विघटनकारी प्रतिद्वंद्वी रूप में नहीं। उसके विश्वजनीन विचार मानव मात्र के लिए थे, किसी वर्ण, वर्ग या जाति विशेष के लिए नहीं। उनका विश्व व्यक्ति का ही विस्तार था। परंतु उच्च एवं उन्नत विचारों की सार्थकता उनकी सफल व्यावहारिकता में ही है। व्यावहारिकता की खोट वैचारिक विमलता को धूमिल बना देती है और व्यावहारिक निर्दोषता मनुष्य की चारित्रिक निपुणता पर निर्भर करती है। इसीलिए हमारे यहाँ सुव्यवस्था के साथ साथ सच्चरित्रता पर भी बल दिया गया है। स्मरणीय है कि निर्मल दृष्टि ही उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने में सक्षम एवं समर्थ है।

प्रस्तुत संदर्भ में इतनी विस्तृत भूमिका देने की आवश्यकता इसलिए प्रतीत हुई कि बहुधा भाषायी समस्या को भाषा वैज्ञानिक न रहने देकर उसे राजनीतिक मुहरे का रूप दे दिया जाता है और उसका उपयोग अभीष्ट की पूर्ति के लिए अपनी रीति से किया जाने लगता है। किसी भाषा की प्रकृति, उसके स्वरूप, उसकी प्राणवता और प्रेरक शक्ति को जान-पहचान कर उसे यथा योग्य स्थान पर प्रतिष्ठित रखने का ध्यान बहुत ही कम रखा जाता है। इस प्रकार का कार्य प्राय: ऐसे लोगों के द्वारा सम्पन्न होता है, जो इसके अधिकारी नहीं होते, उनके लिए काँच और हीरे में कोई अंतर नहीं होता है। सभी समान रूप में उपभोग्य वस्तुएँ हैं। ऐसी असंगत, अवांछनीय और अवैधानिक दृष्टि किसी भी जाति या राष्ट्र के लिए आत्मघाती हो सकती है। इसलिए भाषायी समस्याएँ समय-समय पर उकसाकर उलझा दी जाती हैं और विषयांतर करके उसकी आड़ में मनमानी कर ली जाती है। यह एक नाजुक स्थिति है। ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न को हल्के-फुल्के ढंग से सुलझाया नहीं जा सकता। इसका विश्लेषण-विवेचन पर्याप्त गंभीरता के साथ किया जाना चाहिए। इसके लिए उसकी पृष्ठभूमि को जान रखना सर्वथा एवं समीचीन है।

भारतीय भाषाओं में संस्कृत सर्वाधिक प्राचीन भाषा बतलाई जाती है। भर्तृहरि जैसे मनीषी ने तो इसे अनादि तक कह डाला है। आदि तो कहीं न कहीं और कभी न कभी हुआ ही होगा। फिर भी जिसका ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध न हो उसे अनादि कह देना अनैतिहासिक नहीं ठहराया जा सकता है। निस्संदेह संस्कृत वांग्मय से अधिक पुरानी संस्कृत भाषा रही होगी। इस संदर्भ में पूर्व प्रचलित किसी निविद भाषा का नाम भी लिया जाता है, जिसके विषय में हमारी यथेष्ट जानकारी नहीं है। वैदिक वांग्मय से भी प्राचीनतर तमिल अथवा प्राकृत भाषा के होने का प्रमाण अनुपलब्ध है। परंतु किसी भाषा की मात्र प्राचीनता अपने आप में उसके अस्तित्त्व को बनाए रखने का औचित्य सिद्ध नहीं करती है। इस कसौटी पर संस्कृत की स्थिति अन्यान्य भाषाओं से भिन्न और खरी उतरती है। संस्कृत भाषा में उपलब्ध साहित्य के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती है कि वह मात्र लोक व्यवहार अथवा जगत् व्यवहार चलाने की भाषा नहीं है, अपितु उसमें पूर्व पुरुषों द्वारा अर्जित ज्ञान विज्ञान की निधियाँ सुरक्षित हैं। वे किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के लिए गर्व एवं गौरव की वस्तु तथा विषय है। उनका बहुलांश मानव मात्र के लिए उपयोगी एवं हितकर है। इसी के सहारे आज भी संस्कृत भाषा जीवित बनी हुई है और भविष्य में भी बनी रहेगी। ज्ञान-विज्ञान

किसी एक की बपौती नहीं है, उसे सदैव सर्वसुलभ रहना चाहिए। संस्कृत में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ समाहित हैं। इसलिए यह भाषा विशिष्ट एवं अद्वितीय है। जब तक मनुष्य में ज्ञान-विज्ञान की जिज्ञासा तथा पिपासा बनी रहेगी, तब तक संस्कृत भाषा और साहित्य का महत्त्व तथा माहात्म्य अक्षुण बना रहेगा। इसमें संदेह नहीं कि इसकी सहचरी रूप में अन्य भाषाएँ भी फूलती, फलती और फैलती रहेंगी।

कुछ लोगों ने भ्रांतिवश संस्कृत को कोरे कर्मकांड की भाषा समझ लिया है। इसका भी एक ऐतिहासिक तथा राजनीतिक कारण है, जो अपने आप में स्वतंत्र विषय है। परंतु वास्तविकता यदि इसके विपरीत नहीं तो बहुत कुछ इससे भिन्न तथा पृथक् अवश्य है। अंतर्साक्ष्य द्वारा यह सरलता से सिद्ध किया जा सकता है कि संस्कृत सार्वभौम भाषा है। इस साहित्य में वनवासी आदिवासी से लेकर नगर निवासी तक का चित्रण है। कामसूत्र से लेकर ब्रह्मसूत्र तक की रचना हुई है। अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, ज्योतिशास्त्र, कृषिशास्त्र, वास्तुशास्त्र, रसायनशास्त्र, दर्शनशास्त्र, साहित्यशास्त्र, गणितशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद तथा अणु-परमाणु जैसे विविध विषयों का इस भाषा में विशद् वर्णन विवेचन है। जीवन और जगत् के विषय में जितना गहन एवं गंभीर चिंतन यहाँ उजागर है, उतना किसी एक भाषा में कदाचित सुलभ नहीं है। ऐसी समृद्ध तथा जीवंत भाषा की उपेक्षा अथवा अनदेखी करना आत्म हत्या से भी जघन्यतर अपराध है। संस्कृत भाषा के प्रश्न को प्रांतीय अथवा राष्ट्रीय स्तर से बढ़कर लोकोपयोगी विश्वजनीन संदर्भ में जांचना-परखना चाहिए। सूर्य के बिंब को भरे घड़े के जल में भी देखा तो जा सकता है, किंतु स्वयं सूर्य को, उसकी समा को आयत नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार का प्रयास हास्यास्पद ही कहा जायेगा।

घटनाचक्र ने लोक मंच के सवाल को राजनीतिक मंच पर उतार दिया है और राजनीतिक क्षेत्र में उसका उपयोग गेंद के समान उछाल कर किया जाने लगा है। यह कदाचित इसलिए कि हम सत्ताकामी पहले हैं, देश भक्त बाद में। इसलिए कभी तो हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उभारा जाता है तो कभी प्रांतीय भाषाओं को उकसाया जाता है। इससे भी दो कदम आगे ऐसे लोग हैं, जो राष्ट्रभाषा के आसन पर विदेशी भाषा को ही बनाए रखने में संकोच का अनुभव नहीं करते, जैसे उनका स्वाभिमान ही तिरोहित हो चुका है। अंग्रेजी भाषा को जिस रूप में हम जानते-पहचानते हैं, वह अंग्रेजी भाषा भाषियों में ही सर्वमान्य नहीं है। फिर

हमारे पूर्वजों ने उसके गुणों पर रीझकर उसे नहीं पढ़ा-सीखा था। इसके आर्थिक और राजनीतिक कारण थे, भाषा वैज्ञानिक अथवा साहित्यिक नहीं। यह हमारी दासता की विरासत है, इससे हमारी प्रांतीय अथवा क्षेत्रीय भाषाओं का भी भविष्य अंधकारमय बन जायेगा। हिन्दी ऐतिहासिक तथा सामाजिक कारणों से हमारी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनी। आंदोलन की भाषा के रूप में संघर्ष के बीच उसका विकास हुआ है और अपने विशिष्ट नैसर्गिक गुणों के कारण राष्ट्रभाषा के पट पर प्रतिष्ठित हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसका राजभाषा के पद पर आसीन होना स्वाभाविक था और ऐसा ही हुआ भी।

इसी प्रकार उर्दू भारतीय भाषा हिन्दी की शैली के रूप में तुर्क, अरब तथा ईरान के संपर्क से अस्तित्त्व में आई। आदान-प्रदान की दृष्टि में यह एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। उनके सान्निध्य में रहकर इसका विकास होना भी अनिवार्य था। कालक्रम से धीरे-धीरे यह फूलने, फलने और फैलने भी लगी। इसकी किसी से न तो होड़ थी, न संघर्ष ही था। इसके सहज विकास को नया कृत्रिम मोड़ दिया जाने लगा, प्रयोग की भाषा प्रयास के सांचे में ढलने लगी तो लोग चौंककर चकराने लगे और इसकी प्रतिक्रिया भी आरंभ हो गई। सामंती परिवेश और वातावरण में जन्मी भाषा भी यदि लोक व्यवहार की भाषा बनकर रहे तो भला इसमें किसे आपत्ति हो सकती है, किंतु वहीं जब राजनीतिक मुहरे के रूप में काम में लाई जाने लगती है, तो उसका सहजपन विकृत होकर दूषित हो जाता है। उर्दू हमारी अपनी भाषा-शैली है, इसलिए उसका दुरुपयोग होते देखकर जितनी पीड़ा हमें होती है, उतनी शतरंज के खिलाड़ियों के लिए कदापि संभव नहीं है।

आज हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। यह हमारे लिए एक खुली चुनौती और निर्मम चेतावनी बन गया है। इसके लिए पर्याप्त सजगता, सतर्कता तथा सक्रियता की अपेक्षा है। हमारी एक भूल हमें रसातल में पहुँचा सकती है। ऐसी दशा में विघटनकारी शक्तियों से हमें सावधान रहना है। लोकहित में व्यक्तिगत या दलगत लाभ के लोभ का संवरण करना है। प्रजातंत्र के नाम पर अपनी कुत्सित कामनाओं को चरितार्थ नहीं होने देना है। मनुष्य को अपनी श्रेष्ठता को उजागर करना है।

भाषा वही जीवित रहती है, जो जनता के द्वारा प्रयुक्त होती है। वह न तो विद्वानों द्वारा गढ़ी-मढ़ी जाती है, न कोशों द्वारा सिखाई जाती है। वह गतिशील तथा वृद्धिशील प्रकृति की है, जिसका विस्तार होता रहता है। भाषा जनता की

होनी चाहिए, जड़ता की नहीं। हिन्दी राजकाज की ही भाषा नहीं, हमारी सांस्कृतिक विरासत की संदेशवाहिका भी है। राष्ट्रभाषा से अनुस्यूत राष्ट्रलिपि के समाधान का भी यही जनपथ है।

इसके लिए वह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि भाषायी प्रश्न को भाषा वैज्ञानिक परिधि तक ही सीमित रहने दिया जाए, उसे राजनीतिक मुहरे के रूप में उछाला न जाए। इसके लिए अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है, जो सद्भाव और सौहार्द्र द्वारा सर्वथा संभव है।

विश्व के तेजी से प्रगति कर रहे सभी विकासशील देश ऐसा, अंग्रेजी अपनाए बिना, निज भाषाओं के माध्यम से कर रहे हैं। भारत में स्थिति उलटी है। यहाँ अंग्रेजी की जकड़ बढ़ रही है और भारतीय भाषाएँ चपरासियों की भाषाएँ हो चली हैं। इसका प्रमुख कारण है हमारी भाषाओं का आपसी वैमनस्य! इसके निराकरण के लिए अच्छा हो, यदि सभी भारतीय भाषाएँ एक लिपि अपनाएँ जो वर्तमान विभिन्न लिपियों को मिला-जुला रूप हो। पर सबसे महत्वपूर्ण कदम होगा दक्षिण की चार भाषाओं को उत्तर भारत में मान्यता। साथ ही हिंदी के पाठ्यक्रम में दूसरी उत्तर भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाएँ जोड़ी जाएँ ताकि छात्र इन भाषाओं की निकटता से परिचित हों। वे भाषाएँ भी ऐसी ही नीति अपनाएँ।

अंग्रेजी एक अत्यंत महत्वपूर्ण भाषा है पर वाइसरायों के जमाने से चला आ रहा हमारा आंग्ल-पाठ्यक्रम विवेकशून्य और आत्मघाती है। हम अंग्रेजी ऐसे पढ़ाएँ जैसे किसी भी अन्य देश में एक विदेशी भाषा पढ़ाई जाती है।

भारत को अपने व्यापक पिछड़ेपन से यदि कभी उबरना है, विभिन्न वर्गों की घोर असमानता यदि कभी कम करनी है तो जरूरी होगा कि हम एक आम आदमी को उसी की भाषा में शिक्षा और शासन दें, जैसा कि हर विकसित देश में होता है।

भारत में ऐसे जानकार हर गली-नुक्कड़ पर मिलते हैं, जो अंग्रेजी को प्रगति का पर्याय मानें, कोई उन्हें झकझोरे और बताए कि उन्नति का स्रोत आंग्ल भाषा नहीं। वह ज्ञान है, जिसे अंग्रेजी से अनुदित कर जापान, कोरिया और चीन जैसे देश जन-सामान्य तक पहुँचाते हैं, उसका विकास करते हैं और अपना विकास करते हैं।

क्या भारतीय भाषाएँ चीनी, जापानी आदि भाषाओं की तुलना में इतनी अक्षम हैं कि अंग्रेजी से अनुवाद न किया जा सके? स्वयं अंग्रेजी में निरंतर

पारिभाषिक शब्द गढ़े जाते हैं, जो प्रायः ग्रीक और लैटिन भाषाओं पर आधारित होते हैं। संस्कृत का शब्द-भंडार इन दो प्राचीन भाषाओं से अधिक समृद्ध हैं। हमें पारिभाषिक शब्द बनाने में कठिनाई क्यों हो? जापानी, कोरिआई आदि भाषाओं की तुलना में हमें अधिक सुभीता होना चाहिए।

पर किस भाषा में अनुवाद? यह 'अंग्रेजी की महत्ता क्यों और कितनी?' से भी बड़ा प्रश्न है। भारतीय भाषाओं के आपसी वैमनस्य के कारण पहले इसका हल ढूँढ़ें।

भारतीय भाषाओं को दो भागों में बाँटा जाता है। उत्तर और मध्य भारत की भाषाएँ सीधे संस्कृत पर आधारित है। दक्षिण की चार भाषाओं का मूल भिन्न है पर उन पर भी संस्कृत का यथेष्ट प्रभाव है।

उत्तर भारत की भाषाएँ गिनते समय प्रायः लोग लिपियों पर ध्यान देते हैं पर लिपियाँ भाषाओं की भिन्नता का सदा सही माप नहीं देती। यदि भोजपुरी की अपनी लिपि होती तो वह भी पंजाबी की तरह एक अलग भाषा मानी जाती। ऐसे कई और उदाहरण दिए जा सकते हैं, शायद इसी कारण **विनोबा भावे** ने कई दशक पूर्व आग्रह किया था कि सभी भारतीय भाषाएँ संस्कृत की लिपि यानी देवनागरी अपनाएँ। उनका यह सुझाव आया गया हो गया क्योंकि इसके अंतर्गत हिंदी और मराठी को छोड़कर अन्य सभी भाषाओं को झुकना पड़ता। समाधान ऐसा हो कि देश के भाषायी समन्वय के लिए हर भाषा को किंचित त्याग करना पड़े।

ऐसा संभव हैं क्योंकि सभी भारतीय लिपियों की उत्पत्ति ब्राम्ही लिपि से हुई हैं। यदि हम इस ब्राम्ही लिपि का ऐसा आधुनिक सरलीकरण और 'त्वरित उद्‌भव' करें कि वह प्रचलित विभिन्न लिपियों का मिथज (hybrid) लगे तो उसे अपनाने में भिन्न भाषाओं को कम आपत्ति होगी। (इस लिपि में कई अक्षर ऐसे होंगे जिनका प्रयोग कुछेक भाषा ही करेंगी।)

पर क्या अपनी लिपि का लगाव छोड़ा जा सकेगा? प्रथम तो यह कि मिश्रज लिपि पूरी तरह अपरिचित अथवा विदेशी न होगी। दूसरे, यदि कुछ कठिनाई होगी भी तो लाभ बड़े और दूरगामी हैं, यह भी ध्यान देने की बात है कि अंकों के मामले में ऐसा पहले ही हो चुका है–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संसार की सभी लिपियां, अंकों के लिए अब 1,2,3,4,5 का प्रयोग करती हैं।

बात अंतर्राष्ट्रीयता की आई है तो कुछ लोग कहेंगे कि क्यों न हम अंग्रेजी की रोमन लिपि अपनाएँ?

ऐसा करना अनर्थकारी और हास्यास्पद होगा। भारतीय वर्णमाला को विश्व का अग्रणी ज्ञानकोश–एनसायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका–भी 'वैज्ञानिक' कहता है। (ऐसा अभिमत किसी दूसरी वर्णमाला के लिए व्यक्त नहीं किया गया।) भारतीय लिपियाँ पूरी तरह ध्वन्यात्मक (फोनेटिक) हैं अर्थात् उच्चारण और वर्तनी (स्पेलिंग) में कोई भेद नहीं। (आश्चर्य नहीं कि मेरे एक ब्राजीली मित्र ने मात्र एक दिन में देवनागरी पढ़ना सीख लिया था) ऐसी लिपि प्रणाली को छोड़कर यूरोपीय लिपि अपनाना सर्वथा अनुचित होगा।

इस समय हमारी लिपियों की संसार में कोई पूछ नहीं हैं। यदि सभी भारतीय भाषाएँ एक लिपि का प्रयोग करें तो शीघ्र ही इस लिपि को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता मिलेगी जैसी कि चीनी, अरबी आदि लिपियों को आज प्राप्त हैं। एकता में बल है।

एक-लिपि हो जाने पर भी भारतीय भाषाएँ भिन्न बनी रहेंगी। दूसरा कठिन कदम होगा एक भाषा को समस्त भारत में प्रधान बनाने का। यह हिंदी होगी पर विशालहृदया हिंदी! साथ ही, हिंदी के दक्षिण भारत में प्रसार के लिए आवश्यक हैं कि दक्षिण की चार भाषाओं को उत्तर भारत में मान्यता मिले। यह अत्यंत महत्वपूर्ण बात है! हिंदी भाषियों की संकीर्णता ही हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने में सबसे बड़ी अड़चन रही है। दक्षिणी भाषाओं के प्रति उत्तर भारत में कोई जिज्ञासा नहीं हैं। यदि है तो एक हापडिल्ले सापडिल्ले वाली उपहास-वृत्ति। आश्चर्य नहीं कि स्वाभिमानी दक्षिण भारतीय, जिनकी भाषाओं का लंबा इतिहास और अपना साहित्य हैं, हिंदी प्रसार प्रयत्नों को इकतरफा और हेकड़ी भरा कहकर उसका विरोध करें।

भारतीय सेना में दक्षिण भारत की सेना-टुकड़ियों के उत्तर भारतीय अफसरों को चार दक्षिणी भाषाओं में से एक सीखनी पड़ती है। उत्तर भारत की शिक्षा प्रणाली में ऐसा ही कुछ किया जाना नितांत आवश्यक हैं। जैसे, हर माध्यमिक स्कूल में छँठी कक्षा से एक दक्षिण भारतीय भाषा पढ़ाने की व्यवस्था हो। ऐसा होने पर उत्तर-दक्षिण का भाषायी वैमनस्य जाता रहेगा और तदजनित सद्भाव के वातावरण में सहज ही हिंदी को दक्षिण भारत में स्वीकृति मिलेगी।

उत्तर भारत की दूसरी भाषाओं के प्रति हिंदी को विशालहृदया भी होना होगा। बंगाली, गुजराती, उड़िया आदि के शीर्षस्थ साहित्यकारों की रचनाएँ हिंदी पाठ्यक्रम में जोड़ी जाएँ, इससे छात्रों पर अतिशय भार न पड़ेगा। इन हिंदीतर भाषाओं के अनेक पद्यों की भाषा हिंदी की खड़ी बोली से लगभग उतनी ही

दूर है जितनी रामचरितमानस की अवधी। 'वैष्णव जन तो तेने रे कहिए, जे पीड़ परायी जाणे रे' का अर्थ समझने के लिए किस हिंदी भाषी को कुंजी उठानी होगी? संस्कृत गर्भित होने पर यह दूरी और भी कम हो जाती है जैसा कि 'जन गण मन' और 'वंदे मातरम' जैसी रचनाओं में देखा जा सकता है। गद्य पाठन भी मुश्किल न होगा। 'शांतता, कोर्ट चालू आहे' का अर्थ एक बार जान लेने पर क्या किसी उत्तर भारतीय के लिए याद रखना कठिन है?

उत्तर भारत की भाषाओं के सामीप्य के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं–मीराबाई के भजन हिंदी में जितने लोकप्रिय हैं उतने ही गुजराती में।–बिहार के विद्यापति को हिंदी और बंगाली भाषी दोनों ही अपना मानते हैं।–पंजाबी के 'गुरु ग्रंथ साहिब' में मराठी कवि 'नामदेव' के अनेक पद हैं। (यह भी कि नानक देव के अधिकांश दोहों की भाषा ऐसी है कि यदि वे 'गुरुमुखी' में लिखे जाएँ तो पंजाबी कहलाएँगे और देवनागरी में लिखे जाएँ तो हिंदी)

उत्तर भारतीय भाषाओं के पाठ्यक्रम में दूसरी सहोदरी भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाओं को समाहित कर लेने से छात्र स्वयं इस भाषायी-निकटता से अवगत होंगे। हमारी सांस्कृतिक धरोहर में भिन्न क्षेत्रों के साहित्य का जो योगदान है उससे उनका परिचय होगा। भाषायी-सौहार्द्र तो बढ़ेगा ही।

यों देश में आज भी दूसरी भारतीय भाषाओं की कुछेक रचनाएँ पढ़ाई जाती हैं–पर अंग्रेजी के माध्यम से! इस पर कुछ कहने से पहले हम 'अंग्रेजी की महत्ता' के बड़े विषय को लें।

निस्संदेह वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में नई खोजों, नए विचारों की भाषा प्रायः अंग्रेजी होती है। सबसे उन्नत देश अमेरिका की भाषा अंग्रेजी है। ज्ञान-विज्ञान की जितनी पुस्तकें, पत्रिकाएँ अंग्रेजी में उपलब्ध हैं, उतनी किसी और भाषा में नहीं।

पर क्या इन ज्ञान को आत्मसात करने के लिए हम अपनी भाषा छोड़कर अंग्रेजी को अंगीकार करें? भारत में आज ऐसा ही हो रहा है। अंग्रेजों के जाते समय अंग्रेजी भाषा की जितनी महत्ता थी, उससे अधिक आज है। क्या हमारा यह अंग्रेजी अनुराग हमारे देश के उत्थान में सहायक हुआ है अथवा इस विदेशी भाषा पर अधिकार करने के अर्धसफल या असफल प्रयास में हम पीढ़ी दर पीढ़ी अपार समय और ऊर्जा गँवा रहे हैं?

उच्च शिक्षा के लिए जितने छात्र भारत से प्रतिवर्ष अमेरिका जाते हैं, लगभग उतने ही ताईवान, दक्षिण कोरिया जैसे देशों से, जहाँ विश्वविद्यालयों में विज्ञान तथा

तकनीकी विषय भी चीनी, कोरियाई जैसी भाषाओं में पढ़ाए जाते हैं। (यह भी ध्यान दे कि हमारी जनसंख्या ताईवान की जनसंख्या से 40 गुनी और दक्षिणी कोरिया की जनसंख्या से 20 गुनी है!) हमारे अंग्रेजी-दक्ष इंजीनियर कोरिया के लोगों को कार, टी.वी. बनाना नहीं सिखाते। उनके टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलने वाले इंजीनियर हमें, और बाकी दुनिया को, ऐसा सामान बनाकर बेचते हैं।

इन अंग्रेजी-मोह से मुक्त देशों की सफलता का कारण समझना कठिन नहीं हैं। वहाँ अंग्रेजी की पुस्तकों का स्वदेशी भाषा में अनुवाद करके उस ज्ञान को जन-साधारण के लिए सुलभ कर देते हैं। जो छात्र उच्चतर अध्ययन के लिए विदेश जाना चाहते हैं, अथवा जो दूसरे कारणों से अंग्रेजी में रुचि रखते हों, केवल वे ही अंग्रेजी पढ़ते हैं। शेष छात्र इस भार से लगभग मुक्त।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इन देशों में विदेशी साहित्य और संस्कृति के प्रति रुचि न हों। टैगोर की कविताओं से इन एशियाई देशों के छात्र जितने परिचित हैं उतने भारत के नहीं। वहाँ महाकवि का काव्य अपनी बोली में भाषांतर करके पढ़ाया जाता है। हमारे यहाँ करोड़ों अ-बंगाली विद्यार्थी उन्हीं कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ते हैं, जो कुँजियों की मदद से आधा-अधूरा किसी के पल्ले पड़ जाय तो बहुत समझिए।

बात हमारे अंग्रेजी पाठ्यक्रम की आई है तो उसके अन्य आयाम भी देख लें। भारत में अंग्रेजी एक विदेशी भाषा के रूप में नहीं पढ़ाई जाती। इसका पठन-पाठन कुछ ऐसा है मानों हम सब लंदन के निवासी हों!

वे छात्र जो अभी अंग्रेजी व्याकरण सीख ही रहे होते हैं और जो अपने मन के एक-दो सहज विचारों को ठीक तरह अंग्रेजी में व्यक्त करने में असमर्थ हैं, उनसे कहा जाता है कि वे अंग्रेजी में गद्य तथा पद्य की संदर्भ सहित व्याख्या करें! संसार का शायद ही कोई दूसरा देश एक विदेशी भाषा को सीखने में ऐसी कमअक्ली दिखाता हो! यह शिक्षा-पद्धति ब्रिटिश-राज की देन हैं, जिससे हम आज भी स्वतंत्र नहीं हो पाए हैं। स्वयं भारत के महानगरों में, जहाँ फ्रांसीसी, जर्मनी आदि भाषाएँ सिखाई जाती हैं, वहाँ जोर व्याकरण की पक्की नींव डालने और शब्द ज्ञान बढ़ाने पर होता है। उस भाषा के साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन तो बहुत बाद में और अधिकांश छात्रों की उसकी आवश्यकता ही नहीं। यह उस साहित्य की अवहेलना नहीं, अपनी सीमाएँ समझने और प्राथमिकता निर्धारित करने की बात हैं। कंप्यूटर प्रोग्रामिंग के क्षेत्र में सफल होने के लिए, अंग्रेजी साहित्य तो छोड़िए, उसके व्याकरण के विशेष ज्ञान की भी जरूरत नहीं!

अंग्रेजी में ऐसे अनेक उच्च कोटि के कवि और लेखक हैं, जिनकी कुछेक रचनाओं से परिचित होना किसी भी शिक्षित भारतीय के लिए जरूरी है। पर अंग्रेजी साहित्य विश्व साहित्य नहीं हैं! अन्य विदेशी भाषाओं में भी प्रथम स्तर के बहुतेरे साहित्यकार हैं। वास्तव में **ताल्सतॉय**, **चेखव** और **दॉस्तोयव्स्की** जैसे रूसी दिग्गजों के आगे अंग्रेजी का कोई कथाकार नहीं ठहरता। हम क्यों न सभी श्रेष्ठतम विदेशी साहित्यकारों की रचनाएँ पढ़ें–पर अपनी भाषा में अनुदित करके, जैसा कि संसार के लगभग हर दूसरे देश में होता हैं। हमारे वर्तमान आंग्ल-पाठयक्रम में फ्रांसीसी **मोपासां** और रूसी **चेखव** की कहानियाँ कुछ ऐसे प्रस्तुत की जाती हैं मानों वे अंग्रेजी के लेखक हों! बंगाली के टैगोर का क्षोभनीय उदाहरण तो हम देख ही चुके हैं।

यदि हमारे देश से कभी अंग्रेजी का दबदबा हटा तो कुछ समस्याएँ भी उठ खड़ी होंगी:

समृद्ध परिवारों की नाकारा निकल गई कुछेक संतानों को, जिनकी एक मात्र योग्यता अंग्रेजी में गिटपिटाना हैं, फिर नौकरियाँ कौन देगा?

हिंदी के फिल्म जगत में तो बिल्कुल उथल-पुथल मच जाएगी। वहाँ जो कुछ हिंदी बोली जाती हैं वह पर्दे पर कैमरा हटते ही उन अधपढ़ों की भीड़ में जो जितनी अमेरिकी-ढरक से अंग्रेजी बोलता है, अपने आप को उतना ही कुलीन समझता है। यदि अंग्रेजी की महत्ता गई तो इस उद्योग के लोग अपना उथलापन, अपनी अभद्रता कहाँ कैसे छिपाएँगे?

ऐसी दिक्कतें तो होंगी कुछ और वर्ग भी विरोध करेंगे मानो समर्थ अंग्रेजी का प्रभुत्त्व जाते ही देश बेसहारा हो जाएगा। अच्छा हो यदि ये लोग स्वयं अंग्रेजी भाषा का अपना इतिहास जान लें -

आज से 500 वर्ष पहले विश्व की भाषाओं में अंग्रेजी की कोई गिनती नहीं थीं।

इसको बोलने वाले दो-एक टापू तक सीमित थे और वहाँ भी विद्वानों की भाषा लैटिन थीं। शासक वर्ग में लैटिन की पुत्री इतालवी को सीखने का लोगों को सबसे अधिक चाव था, पर इंग्लैंडवासी इस विदेशी-भाषा-भक्ति से ऊपर उठे। उन्होंने उस समय के सभी महत्वपूर्ण ग्रंथों का–बाइबिल जिनमें प्रमुख थी–अपनी बोली में अनुवाद प्रारंभ किया। विदेशी पुस्तकों, कथाओं आदि के आधार पर अपनी भाषा में साहित्य रचा। उनकी भाषा समृद्ध और सशक्त हुई और

साथ ही सबल हुआ वह समाज। उनके उत्कर्ष की शेष कहानी तो हम जानते ही है।

पाँच सदी पूर्व की अंग्रेजी की तुलना में हमारी भाषाओं की वर्तमान स्थिति श्रेयस्कर है। संस्कृत की विपुल शब्द संपदा हमारी थाती है। अगर कमी है तो केवल इच्छाशक्ति की, एक संकल्प की, आपसी भाषायी राग-द्वेश को मिटाकर आगे बढ़ने की।

आज देश में जो भी प्रगति हो रही हैं उसका लाभ प्रायः उच्च मध्यवर्गीय 20 करोड़ लोगों तक सीमित हैं, शेष 80 प्रतिशत के पास अपना जीवनस्तर सुधारने के बहुत कम रास्ते हैं, जिसका एक कारण अंग्रेजी की प्रभुसत्ता है। (और ऊपर का वह 20 प्रतिशत भी, अंग्रेजी भाषा-ज्ञान बढ़ाने में सतत् समय गँवाता, दूसरे एशियाई देशों की तुलना में फिसड्डी लगता है।)

यदि भारत को कभी उन्नत देशों की श्रेणी में गिना जाना है तो जरूरी है कि हम अंग्रेजी की बेड़ियों से मुक्त हों। उसे एक अतिथि-सा सम्मान दें। गृहस्वामिनी न मानें। आम आदमी को उसी की भाषा में शिक्षा और शासन दिया जाय।

हम अन्य देशों से सीखें। आज चीन जिस तरह दिन दूनी, रात चौगुनी तरक्की कर रहा है, आश्चर्य नहीं कि इस शताब्दी के मध्य तक चीनी भाषा विश्व में उतनी ही महत्वपूर्ण हो जाय जितनी अंग्रेजी।(इसके संकेत अमेरिका में अभी से दिखने लगे हैं।) तब हम और दयनीय लगेंगे।

6

भाषाविज्ञान

भावाविज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषाविज्ञान, भाषा के स्वरूप, अर्थ और सन्दर्भ का विश्लेषण करता है। भाषा के दस्तावेजीकरण और विवेचन का सबसे प्राचीन कार्य 6ठी शताब्दी के महान भारतीय वैयाकरण **पाणिनि** ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में किया है।

भाषा विज्ञान के अध्ययेता 'भाषाविज्ञानी' कहलाते हैं। भाषाविज्ञान, व्याकरण से भिन्न है। व्याकरण में किसी भाषा का कार्यात्मक अध्ययन (functional description) किया जाता है, जबकि भाषाविज्ञानी इसके आगे जाकर भाषा का अत्यन्त व्यापक अध्ययन करता है। अध्ययन के अनेक विषयों में से आजकल भाषा-विज्ञान को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

भाषाविज्ञान भाषा को भाषा ही जानकर उसका वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

भाषा विज्ञान के अनेक नाम

भाषा-सम्बन्धी इस अध्ययन को यूरोप में आज तक अनेक नामों और संज्ञाओं से अभिहित किया जाता रहा है। सर्वप्रथम इस अध्ययन को फिलोलॉजी (Philology) शब्द के आगे विशेषण के रूप में एक शब्द जोड़ा गया- (Comparative) तब इसे ''कम्पैरेटिव फिलोलॉजी'' (Comparative

Philologys) कह कर पुकारा गया। उन्नीसवीं शताब्दी तक व्याकरण तथा भाषा-विषयक अध्ययन को प्रायः एक ही समझा जाता था। अतः इसे विद्वानों ने 'कम्पैरेटिव ग्रामर' नाम भी दिया। फ्रांस में इसको लैंगिस्तीक् (Linguistique) नाम दिया गया। फ्रांस में भाषा सम्बन्धी कार्य अधिक होने के कारण उन्नीसवीं सदी में सम्पूर्ण यूरोप में ही 'Linguistique' अथवा 'Linguistics' नाम ही प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त 'साइंस ऑफ लैंग्वेज', 'ग्लौटोलेजी' (Glottology) आदि अन्य नाम भी इस विषय को प्रकट करने के लिए काम में आये। आज इन सभी नामों में से ''लिंग्विस्टिक्स'', ''फिलोलॉजी'' (Philology) मात्र ही प्रयोग में लाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इन सभी यूरोपीय नामों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में जो नाम प्रयोग में लाए जाते हैं वे इस प्रकार हैं- ''भाषा-शास्त्र'', ''भाषा-तत्त्व'', ''भाषा-विज्ञान'', तथा ''तुलनात्मक भाषा-विज्ञान'' आदि। इन सभी नामों में से सर्व प्रचलित नाम ''भाषा-विज्ञान'' है। इन नाम में प्राचीन और नवीन सभी नामों का समाहार-सा हुआ जान पड़ता है। अतः यही नाम इस शास्त्र के लिए सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

भाषाविज्ञान का इतिहास

अपने वर्तमान स्वरूप में भाषा विज्ञान पश्चिमी विद्वानों के मस्तिष्क की देन कहा जाता है। अति प्राचीन काल से ही भाषा-सम्बन्धी अध्ययन की प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में पाई जाती है। 'शिक्षा' नामक वेदांग में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्म चर्चा उपलब्ध होती है। ध्वनियों के उच्चारण- अवयव, स्थान, प्रयत्न आदि का इन ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। 'प्रातिशाख्य' एवं निरूक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति, धातु, उपसर्ग-प्रत्यय आदि विषयों पर वैज्ञानिक विश्लेषण भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है। **भर्तृहरि** के ग्रन्थ 'वाक्य पदीय' के अन्तर्गत 'शब्द' के स्वरूप का सूक्ष्म, गहन एवं व्यापक चिन्तन उपलब्ध होता है। वहाँ शब्द को 'ब्रह्म' के रूप में परिकल्पित किया गया है और उसकी 'अक्षर' संज्ञा बताई गई है। प्रकारान्तर से यह एक भाषा-अध्ययन सम्बन्धी ग्रन्थ ही है।

संस्कृत साहित्य में दर्शन एवं साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी हमें 'शब्द' 'अर्थ', 'रस' 'भाव' के सूक्ष्म विवेचन के अन्तर्गत भाषा वैज्ञानिक चर्चाओं के ही संकेत प्राप्त होते हैं। संस्कृत-साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होने वाली

भाषा-विचार-विषयक सामग्री ही निश्चित रूप से वर्तमान भाषा-विज्ञान की आधारशिला कही जा सकती है।

आधुनिक विषय के रूप में भाषा-विज्ञान का सूत्रपात यूरोप में सन 1786 ई. में **सर विलियम जोन्स** नामक विद्वान द्वारा किया गया माना जाता है। संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रसंग में सर विलियम जोन्स ने ही सर्वप्रथम संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इस संभावना को व्यक्त किया था कि संभवत: इन तीनों भाषाओं के मूल में कोई एक भाषा रूप ही आधार बना हुआ है। अत: इन तीनों भाषाओं (संस्कृत, ग्रीक और लैटिन) के बीच एक सूक्ष्म संबंध सूत्र अवश्य विद्यमान है। भाषाओं का इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन ही आधुनकि भाषा-विज्ञान के क्षेत्र का पहला कदम बना।

सामान्य परिचय

'भाषा-विज्ञान' नाम में दो पदों का प्रयोग हुआ है। 'भाषा' तथा 'विज्ञान'। भाषा-विज्ञान को समझने से पूर्व इन दोनों शब्दों से परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है।

'भाषा' शब्द संस्कृत की ''भाष्'' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है-व्यक्त वाक (व्यक्तायां वाचि)। 'विज्ञान' शब्द में 'वि' उपसर्ग तथा 'ज्ञा' धातु से 'ल्युट्' (अन) प्रत्यय लगाने पर बनता है। सामान्य रूप से 'भाषा' का अर्थ है 'बोल चाल की भाषा या बोली' तथा 'विज्ञान' का अर्थ है 'विशेष ज्ञान', किन्तु 'भाषा-विज्ञान' शब्द में प्रयुक्त इन दोनों पदों का स्पष्ट और व्यापक अर्थ समझ लेने पर ही हम इस नाम की सारगर्भिता को जानने में सफल होंगे। अत: हम यहाँ इन दोनों पदों के विस्तृत अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

भाषा:मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने भावों और विचारों को एक दूसरे तक पहुंचाने की आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जाती रही है। इस प्रकार भाषा का अस्तित्त्व मानव समाज में अति प्राचीन सिद्ध होता है। मानव के सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का प्रकाशन करने के लिए, सभ्यता और संस्कृति के इतिहास को जानने के लिए भाषा एक महत्त्वपूर्ण साधन का कार्य करती है। हमारे पूर्वपुरुषों से सभी साधारण और असाधारण अनुभव हम भाषा के माध्यम से ही जान सके हैं। हमारे सभी सद्ग्रन्थों और शास्त्रों से मिलने वाला ज्ञान भाषा पर ही निर्भर है। महाकवि दण्डी ने अपने महान ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में भाषा की महत्ता सूचित करते हुए लिखा है:-

इदधतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योत्तिरासंसारं न दीप्यते॥

अर्थात् यह सम्पूर्ण भुवन अंधकारपूर्ण हो जाता, यदि संसार में शब्द-स्वरूप ज्योति अर्थात् भाषा का प्रकाश न होता। स्पष्ट ही है कि यह कथन मानव भाषा को लक्ष्य करके ही कहा गया है। पशु-पक्षी भावों को प्रकट करने के लिए जिन ध्वनियों का आश्रय लेते हैं वे उनके भावों का वहन करने के कारण उनके लिए भाषा हो सकती हैं, किन्तु मानव के लिए अस्पष्ट होने के कारण विद्वानों ने उसे 'अव्यक्त वाक्' कहा है, जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखती। क्योंकि 'अव्यक्त वाक्' में शब्द और अर्थ दोनों ही अस्पष्ट बने रहते हैं। मनुष्य भी कभी-कभी अपने भावों को प्रकट करने के लिए अंग-भंगिमा, भ्रू-संचालन, हाथ-पाँव-मुखाकृति आदि के संकेतों का प्रयोग करते हैं, परन्तु वह भाषा के रूप में होते हुए भी 'व्यक्त वाक्' नहीं है। मानव भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह 'व्यक्त वाक्' अर्थात् शब्द और अर्थ की स्पष्टता लिए हुए होती है। महाभाष्य के रचयिता **पतंजलि** के अनुसार 'व्यक्त वाक्' का अर्थ भाषा के वर्णनात्मक होने से ही है।

यह सत्य है कि कभी-कभी संकेतों और अंगभंगिमाओं की सहायता से भी हमारे भाव और विचारों का प्रेषण बड़ी सरलता से हो जाता है। इस प्रकार वे चेष्टाएँ भाषा के प्रतीक बन जाती हैं, किन्तु मानव भावों को प्रकट करने का सबसे उपयुक्त साधन वह वर्णनात्मक भाषा है जिसे 'व्यक्त वाक्' की संज्ञा प्रदान की गई है। इस में विभिन्न अर्थों को प्रकट करने के लिए कुछ निश्चित् उच्चरित या कथित ध्वनियों का आश्रय लिया जाता है। अतः भाषा हम उन शब्दों के समूह को कहते हैं, जो विभिन्न अर्थों के संकेतों से सम्पन्न होते हैं, जिनके द्वारा हम अपने मनोभाव सरलता से दूसरों के प्रति प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार भाषा की परिभाषा करते हुए हम उसे मानव-समाज में विचारों और भावों का आदान-प्रदान करने के लिए अपनाया जाने वाला एक माध्यम कह सकते हैं, जो मानव के उच्चारण अवयवों से प्रयत्नपूर्वक निःसृत की गई ध्वनियों का सार्थक आधार लिए रहता है। वो ध्वनि-समूह शब्द का रूप तब लेते हैं, जब वे किसी अर्थ से जुड़ जाते हैं। सम्पूर्ण ध्वनि-व्यापार अर्थात् शब्द-समूह अपने अर्थ के साथ एक 'यादृच्छिक' सम्बंध पर आधारित होता है। 'यादृच्छिक' का अर्थ है पूर्णतया कल्पित। संक्षेप में विभिन्न अर्थों में व्यक्त किये गए मुख से उच्चरित

उस शब्द समूह को हम भाषा कहते हैं जिसके द्वारा हम अपने भाव और विचार दूसरों तक पहुँचाते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लाभ

भाषा-विज्ञान के अध्ययन से हमें अनेक लाभ होते हैं, जैसे-

1. अपनी चिर-परिचित भाषा के विषय में जिज्ञासा की तृप्ति या शंकाओं का निर्मूलन,
2. ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक संस्कृति का परिचय,
3. किसी जाति या सम्पूर्ण मानवता के मानसिक विकास का परिचय,
4. प्राचीन साहित्य का अर्थ, उच्चारण एवं प्रयोग सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान,
5. विश्व के लिए एक भाषा का विकास,
6. विदेशी भाषाओं को सीखने में सहायता,
7. अनुवाद करने वाली तथा स्वयं टाइप करने वाली एवं इसी प्रकार की मशीनों के विकास और निर्माण में सहायता,
8. भाषा, लिपि आदि में सरलता, शुद्धता आदि की दृष्टि से परिवर्तन-परिवर्द्धन में सहायता।

इन सभी लाभों की दृष्टि से आज के युग में भाषा-विज्ञान को एक अत्यन्त उपयोगी विषय माना जा रहा है और उसके अध्ययन के क्षेत्र में नित्य नवीन विकास हो रहा है।

भाषाविज्ञान–कला है या विज्ञान?

भाषा एक प्राकृतिक वस्तु है, जो मानव को ईश्वरीय वरदान के रूप में मिली हुई है। भाषा का निर्माण मनुष्य के मुख से स्वाभाविक रूप में निःसृत ध्वनियों (वर्णों) के द्वारा होता है। भाषा का सामान्य ज्ञान इसके बोलने और सुनने वाले सभी को हो जाता है। यही भाषा का सामान्य ज्ञान कहलाता है। इसके आगे, भाषा कब बनी, कैसे बनी ? इसका प्रारम्भिक एवं प्राचीन स्वरूप क्या था ? इसमें कब-कब, क्या-क्या परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों के क्या कारण हैं ? अथवा कुल मिलाकर भाषा कैसे विकसित हुई ? उस विकास के क्या कारण हैं ? कौन सी भाषा किस दूसरी भाषा से कितनी समानता या विषमता रखती है ? यह सब भाषा का विशेष ज्ञान या 'भाषा-विज्ञान' कहा जाएगा। इसी

भाषा-विज्ञान के विशेष रूप अर्थात् भाषा विज्ञान को आज अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय मान लिया गया है।

भाषा-विज्ञान जब अध्ययन के विषयों में बड़ी-बड़ी कक्षाओं के पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया तो सर्वप्रथम यह एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि भाषा-विज्ञान को कला के अन्तर्गत गिना जाए या विज्ञान में। अर्थात् भाषा-विज्ञान कला है अथवा विज्ञान है। अध्ययन की प्रक्रिया एवं निष्कर्षों को लेकर निश्चय किया जाने लगा कि वस्तुतः उसे भौतिक विज्ञान, एवं रसायन विज्ञान आदि की भाँति विशुद्ध विज्ञान माना जाए अथवा चित्र, संगीत, मूर्ति, काव्य आदि कलाओं की भाँति कला के रूप में स्वीकार किया जाए।

भाषा-विज्ञान कला नहीं है

कला का सम्बन्ध मानव-जाति वस्तुओं या विषयों से होता है। यही कारण है कि कला व्यक्ति प्रधान या पूर्णतः वैयक्तिक होती है। व्यक्ति सापेक्ष होने के साथ-साथ किसी देश विशेष और काल-विशेष का भी कला पर प्रभाव रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी काल में कला के प्रति जो मूल्य रहते हैं उनमें कालान्तर में नये-नये परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं तथा वे किसी दूसरे देश में भी मान लिए जाएँ, यह भी आवश्यक नहीं है। एक व्यक्ति को किसी वस्तु में उच्च कलात्मक अभिव्यक्ति लग रही है। किन्तु दूसरे को वह इस प्रकार की न लग रही हो। अतः कला की धारणा प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न हुआ करती है।

कला का सम्बन्ध मानव हृदय की रागात्मिक वृत्ति से होता है। उसमें व्यक्ति की सौन्दर्यानुभूति का पुट मिला रहता है। कला का उद्देश्य भी सौन्दर्यानुभूति कराना, या आनन्द प्रदान करना है, किसी वस्तु का तात्विक विश्लेषण करना नहीं। कला के स्वरूप की इन सभी विशेषताओं की कसौटी पर परखने से ज्ञात होता है कि भाषा-विज्ञान कला नहीं है, क्योंकि उसका सम्बन्ध हृदय की सरसता-वृत्ति से न होकर बुद्धि की तत्त्वग्राही दृष्टि से होता है। भाषा-विज्ञान का उद्देश्य सौन्दर्यानुभूति कराना या मनोरंजन कराना भी नहीं है। वह तो हमारे बौद्धिक चिन्तन को प्रखर बनाता है। भाषा के अस्तित्त्व का तात्त्विक मूल्यांकन करता है। उसका दृष्टिकोण बुद्धिवादी है। भाषा-विज्ञान के निष्कर्ष किसी व्यक्ति, राष्ट्र या काल के आधार पर परिवर्तित नहीं होते हैं तथा भाषा-विज्ञान के अध्ययन का मूल आधार, जो भाषा है वह मानवकृत पदार्थ नहीं

है। अत: भाषा-विज्ञान को हम कला के क्षेत्र में नहीं गिन सकते। भाषा-विज्ञान की उपयोगिता इसमें है कि वह भाषा सिखाने की कला का ज्ञान कराता है। इसी कारण स्वीट ने व्याकरण को, भाषा को कला तथा विज्ञान दोनों कहा है। भाषा का शुद्ध उच्चारण, प्रभावशाली प्रयोग कला की कोटि में रखे जा सकते हैं।

भाषाविज्ञान–विज्ञान है

भाषा-विज्ञान को कला की सीमा में नहीं रखा जा सकता, यह निश्चय हो जाने पर यह प्रश्न उठता है कि क्या भाषा-विज्ञान, भौतिक-शास्त्र, रसायन-विज्ञान आदि विषयों की भाँति पूर्णत: विज्ञान है ?

अनेक विद्वानों की धारणा में भाषा-विज्ञान विशुद्ध विज्ञान नहीं है। उनकी धारणा के अनुसार अभी भाषा-विज्ञान के सभी प्रयोग पूर्णता को प्राप्त नहीं हुए हैं और उसके निष्कर्षों को इसीलिए अंतिम निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता। इसके साथ ही भाषा-विज्ञान के सभी निष्कर्ष विज्ञान की भाँति सार्वभौमिक और सार्वकालिक भी नहीं है।

जिस प्रकार गणित शास्त्र में 2 + 2 = 4 सार्वकालिक, विकल्परहित निष्कर्ष है, जो सर्वत्र स्वीकार किया जाता है, भाषा-विज्ञान के पास इस प्रकार के विकल्प-रहित निर्विवाद निष्कर्ष नहीं हैं। विज्ञान में तथ्यों का संकलन और विश्लेषण होता है और ध्वनि के नियम अधिकांशत: विकल्परहित ही हैं, अत: कुछ विद्वानों के अनुसार भाषा-विज्ञान को मानविकी (कला) एवं विज्ञान के मध्य में रखा जा सकता है।

विचार करने पर हम देखते हैं कि विज्ञान की आज की द्रुत प्रगति में प्रत्येक विशेष ज्ञान अपने आगामी ज्ञान के सामने पुराना और अवैज्ञानिक सिद्ध होता जा रहा है। नित्य नवीन आविष्कारों के आज के युग में वैज्ञानिक दृष्टि नित्य सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और नवीन से नव्यतर होती चली जा रही है। आज के विकसित ज्ञान-क्षेत्र को देखते हुए कई वैज्ञानिक मान्यताएँ पुरानी और फीकी पड़ गई हैं। न्यूटन का प्रकाश सिद्धान्त भी अब सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा है। इससे यह सिद्ध होता हो जाता है कि नूतन ज्ञान के प्रकाश में पुरातन ज्ञान भी विज्ञान के क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है।

अत: विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर भाषा-विज्ञान को हम विज्ञान के ही सीमा-क्षेत्र में पाते हैं। भाषा-विज्ञान निश्चय ही एक विज्ञान है जिसके अन्तर्गत हम भाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह सही है कि अभी तक भाषा-विज्ञान का वैज्ञानिक स्तर पर पूर्णत: विकास नहीं हो पाया है। यही

कारण है कि प्रसिद्ध ग्रिम-नियम के आगे चल कर **ग्रासमान** और **वर्नर** को उसमें सुधार करना पड़ा है। उक्त सुधारों से पूर्व ग्रिम का ध्वनि नियम निश्चित् नियम ही माना जाता था और सुधारों के बाद भी वह निश्चित् नियम ही माना जाता है। इस प्रकार नये ज्ञान के प्रकाश में पुराने सिद्धान्तों का खण्डन होने से विज्ञान का कोई विरोध नहीं है। वास्तव में यही शुद्ध विज्ञान है।

सन् 1930 के बाद जहाँ वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान को पुनः महत्त्व प्राप्त हुआ, वहाँ तब से लेकर आज तक द्रुत गति में विकास हुआ है। जब से ध्वनि के क्षेत्र में यंत्रों की सहायता से नये-नये परीक्षण प्रारम्भ हुए हैं तथा प्राप्त निष्कर्ष पूरी तरह नियमित होने लगे हैं, तब से ही भाषा-विज्ञान धीरे-धीरे प्रगति करता हुआ विज्ञान की श्रेणी में माना जाने लगा है।

विज्ञान की एक बड़ी विशेषता है उसका प्रयोगात्मक होना। अमेरिकी विद्वान् **बलूम फील्ड़** (सन् 1933 ई.) के बाद अमेरिकी भाषा विज्ञानियों ने ध्वनि-विज्ञान एवं रूप-विज्ञान आदि के साथ भाषा-विज्ञान की एक नवीन पद्धति के रूप में प्रायोगिक भाषा-विज्ञान का बड़ी तीव्रता के साथ विकास किया है। इस पद्धति के अन्तर्गत भाषा-विज्ञान प्रयोगशालाओं का विषय बनता जा रहा है और उसके लिए अनेक यंत्रों का आविष्कार हो गया है। यह देख कर निश्चित रूप में इस विषय को विज्ञान ही कहा जाएगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

आजकल जबकि समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि शास्त्रीय विषयों के लिए जहाँ विज्ञान शब्द का प्रयोग करने की परम्परा चल पड़ी है, तब शुद्ध कारण-कार्य परम्परा पर आधारित भाषा-विज्ञान को विज्ञान कहना किसी भी दृष्टि से अनुचित नहीं ठहराया जा सकता।

भाषा-विज्ञान की परिभाषा

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने अपने ग्रन्थ भाषा रहस्य में लिखा है-

"भाषा-विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।"

मंगल देव शास्त्री (तुलनात्मक भाषाशास्त्र) के शब्दों में-

"भाषा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें (क) सामान्य रूप से मानवी भाषा (ख) किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः (ग) भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी के 'भाषा-विज्ञान' ग्रन्थ में यह परिभाषा इस प्रकार दी गई है-

"जिस विज्ञान के अन्तर्गत वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए, इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो, उसे भाषा विज्ञान कहते हैं।"

ऊपर दी गई सभी परिभाषाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उनमें परस्पर कोई अन्तर नहीं है। डॉ. श्यामसुन्दर दास की परिभाषा में जहाँ केवल भाषाविज्ञान पर ही दृष्टि केन्द्रित रही है वहीं मंगलदेव शास्त्री एवं भोलानाथ तिवारी ने अपनी परिभाषाओं में भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रकारों को भी समाहित कर लिया है। परिभाषा वह अच्छी होती है, जो संक्षिप्त हो और स्पष्ट हो। इस प्रकार हम भाषा-विज्ञान की एक नवीन परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं- "जिस अध्ययन के द्वारा मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए, उसे भाषा-विज्ञान कहा जाता है।"

दूसरे शब्दों में भाषा-विज्ञान वह है, जिसमें मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और व्यापक वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

व्याकरण और भाषा-विज्ञान में अन्तर

(क) व्याकरण शास्त्र में किसी भाषा विशेष के नियम बताए जाते हैं, अतः उसका दृष्टिकोण एक भाषा पर केन्द्रित रहता है, किन्तु भाषा-विज्ञान में तुलना के लिए अन्य भाषाओं के नियम, अध्ययन का आधार बनाए जाते हैं। इस प्रकार व्याकरण का क्षेत्र सीमित है और भाषा-विज्ञान का व्यापक।

(ख) व्याकरण वर्णन-प्रधान है। वह किसी भाषा के नियम तथा साधु रूप सामने रख देता है। व्याकरण भाषा के व्यावहारिक पक्ष का संकेत करता है, उसके कारण व इतिहास की कोई विवेचना नहीं करता। संस्कृत की गम् धातु (गतः) से हिन्दी में गया बना है। परन्तु 'जाना', 'जाता' आदि शब्द 'या' धातु से बने हैं। इसी कारण गया शब्द को भी इसी के साथ जोड़ दिया गया है। व्याकरण की दृष्टि से कभी 'एक दश' शुद्ध शब्द रहा होगा परन्तु कालान्तर में 'द्वादश' की नकल पर 'एकादश' का प्रचलन हो गया। व्याकरण

तो प्रचलित रूप बतला कर चुप हो जाएगा पर भाषा-विज्ञान इससे भी आगे जाएगा, वह बताएगा कि इसके पीछे मुण्डा आदि आसपास की भाषाओं का प्रभाव है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण है।

(ग) भाषा-विज्ञान जहाँ भाषा के विकास का कारण समझाता है वहाँ व्याकरण प्रचलित शब्द को 'साधु प्रयोग' कहकर भाषा-विज्ञान का अनुगमन करता जाता है। इस प्रकार व्याकरण भाषा विज्ञान का अनुगामी है। भाषा-विज्ञान में ध्वनि-विचार के अन्तर्गत हिन्दी के अधिकांश शब्द व्यंजनांत माने जाने लगे हैं, जैसे 'राम' शब्द का उच्चारण 'राम' न होकर राम् है, किन्तु व्याकरण अभी तक अकारांत मानता चला आ रहा है।

(घ) भाषा-विज्ञान में भाषा के जो परिवर्तन उसका विकास माने जाते हैं वे व्याकरण में उसकी भ्रष्टता कहे जाते हैं। यही कारण है कि संस्कृत के बाद प्राकृत (= बिगड़ी हुई) आदि नाम दिये गये। भाषा-विज्ञान 'धर्म' शब्द के 'धम्म' या 'धरम' हो जाने को उसका विकास कहता है और व्याकरण उसे विकार कहता है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान

भाषा के प्रचलित वर्तमान स्वरूप को छोड़ कर शेष सारी अध्ययन सामग्री भाषा-विज्ञान को साहित्य से ही उपलब्ध होती है। यदि आज हमारे सामने संस्कृत, ग्रीक और अवेस्ता साहित्य न होता तो भाषा-विज्ञान कभी यह जानने में सफल न होता कि ये तीनों भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से निकली हैं। इसी प्रकार आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक का हिन्दी साहित्य हमारे सामने न होता तो भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किस प्रकार कर पाता।

भाषा-विज्ञान किसी प्रकार से भी भाषा का अध्ययन करे उसे पग-पग पर साहित्य की सहायता लेनी पड़ती है। बुन्देलखण्ड के नटखट बालकों के मुंह से यह सुन कर-

ओना मासी धम
बाप पढ़े ना हम

व्याकरण कहता है कि यह क्या बला है, प्राचीन साहित्य का अध्ययन ही उसे बतलाएगा कि शाकटायन के प्रथम सूत्र 'ऊँ नमः सिद्धम्' का ही यह बिगड़ा हुआ रूप है।

साहित्य भी भाषा-विज्ञान की सहायता से अपनी अनेक समस्याओं का समाधान खोजने में सफल हो जाता है। **डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल** ने भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर जायसीकृत 'पद्मावत' के बहुत से शब्दों को उनके मूल रूपों से जोड़ कर उनके अर्थों को स्पष्ट किया है। साथ ही शुद्ध पाठ के निर्धारण में भी इससे पर्याप्त सहायता ली है। अतः साहित्य और भाषा-विज्ञान दोनों एक दूसरे के सहायक हैं।

मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान

भाषा हमारे भावों-विचारों अर्थात् मन का प्रतिबिम्ब होती है, अतः भाषा की सहायता से बहुत से समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। विशेष रूप से अर्थविज्ञान तो मनोविज्ञान पर पूरी तरह से आधारित है। वाक्य-विज्ञान के अध्ययन में भी मनोविज्ञान से पर्याप्त सहायता मिलती है। कभी-कभी ध्वनि-परिवर्तन का कारण जानने के लिए भी मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है। भाषा की उत्पत्ति तथा प्रारम्भिक रूप की जानकारी में भी बाल-मनोविज्ञान तथा अविकसित लोगों का मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है।

मनोविज्ञान को भी अपनी चिकित्सा-पद्धति में रोगी की ऊलजलूल बातों का अर्थ जानने के लिए भाषा-विज्ञान से सहायता लेनी पड़ती है। अतः भाषा-विज्ञान की सहायता से एक मनोविज्ञानी रोगी की मनोग्रन्थियों का पता लगाने में सफल हो सकता है। भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण ही आजकल भाषा मनोविज्ञान (Linguistic Psychology) या साइकोलिंगिंवस्टिक्स (Psycholinguistics) नामक एक नयी अध्ययन-पद्धति का विकास हो रहा है।

शरीर-विज्ञान और भाषा-विज्ञान

भाषा मुख से निकलने वाली ध्वनि को कहते हैं, अतः भाषा-विज्ञान में हवा भीतर से कैसे चलती है, स्वरयंत्र, स्वरतंत्री, नासिकाविवर, कौवा, तालु, दाँत, जीभ, ओंठ, कंठ, मूर्द्धा तथा नाक के कारण उसमें क्या परिवर्तन होते हैं तथा कान द्वारा कैसे ध्वनि ग्रहण की जाती है, इन सबका अध्ययन करना पड़ता

है। इसमें शरीर-विज्ञान ही उसकी सहायता करता है। लिखित भाषा का ग्रहण आँख द्वारा होता है और इस प्रक्रिया का अध्ययन भी भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत ही होता है। इसके लिए भी उसे शरीर विज्ञान का ऋणी होना पड़ता है।

भूगोल और भाषा-विज्ञान

भाषा-विज्ञान और भूगोल का भी-गहरा सम्बन्ध है। कुछ लोगों के अनुसार किसी स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों का उसकी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी स्थान में बोली जाने वाली भाषा में वहाँ के पेड़-पौधे, पक्षी, जीव-जन्तु एवं अन्न आदि के लिए शब्द अवश्य मिलते हैं, परन्तु यदि उनमें से किसी की समाप्ति हो जाए तो उसका नाम वहाँ की भाषा से भी जुदा हो जाता हैं। 'सोमलता' शब्द का प्रयोग आज हमारी भाषा में नहीं होता। इस लोप का कारण सम्भवत: भौगोलिक ही है। किसी स्थान में एक भाषा का दूर तक प्रसार न होना, भाषा में कम विकास होना तथा किसी स्थान में बहुत सी बोलियों का होना भी भौगोलिक परिस्थितियों का ही परिणाम होता है। दुर्गम पर्वतों पर रहने वाली जातियों का परस्पर कम सम्पर्क होने के कारण उनकी बोली प्रसार नहीं कर पाती। नदियों के आर-पार रहने वाले लोगों की बोली-भाषा सामान्य भाषा से हट कर भिन्न होती है।

देशों, नगरों, नदियों तथा प्रान्तों आदि के नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करने में भूगोल बड़ी मनोरंजक सामग्री प्रदान करता है।

अर्थ-विचार के क्षेत्र में भी भूगोल भाषा-विज्ञान की सहायता करता है। 'उष्ट्र' का अर्थ भैंसा से ऊँट कैसे हो गया तथा 'सैंधव' का अर्थ घोड़ा और नमक ही क्यों हुआ, आदि समस्याओं पर विचार करने में भी भूगोल सहायता करता है। भाषा-विज्ञान की एक शाखा भाषा-भूगोल की अध्ययन-पद्धति तो ठीक भूगोल की ही भाँति होती है। इसी प्रकार किसी स्थान के प्रागैतिहासिक काल के भूगोल का अध्ययन करने में भाषा-विज्ञान भी पर्याप्त सहायक होता है।

इतिहास और भाषा-विज्ञान

इतिहास का भी भाषा-विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास के तीन रूपों (1) राजनीतिक इतिहास, (2) धार्मिक इतिहास, (3) सामाजिक इतिहास-को लेकर यहाँ भाषा-विज्ञान से उसका सम्बन्ध दिखलाया जा रहा है-

(क) राजनीतिक इतिहास–किसी देश में अन्य देश का राज्य होना उन दोनों ही देशों की भाषाओं को प्रभावित करता है। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के कई हजार शब्दों का प्रवेश तथा अंग्रेजी भाषा में कई हजार भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रवेश भारत की राजनीतिक पराधीनता या दोनों देशों के परस्पर सम्बन्ध का परिणाम है। हिन्दी में अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली शब्दों के आने के कारणों को जानने के लिए भी हमें राजनीतिक इतिहास का सहारा लेना पड़ता है।

(ख) धार्मिक इतिहास–भारत में हिन्दी-उर्दू-समस्या धर्म या साम्प्रदायिकता की ही देन है। धर्म का भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म का रूप बदलने पर भाषा का रूप भी बदल जाता है। यज्ञ का लोक-धर्म से उठ जाना ही वह कारण है जिससे आज हमारी भाषा से यज्ञ-सम्बन्धी अनेक शब्दों का लोप हो चुका है। व्यक्तियों के नामों पर भी धर्म का प्रभाव पड़ता है। हिन्दू की भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुलता होगी तो एक मुसलमान की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता देखने को मिलेगी। इसी प्रकार बहुत-सी प्राचीन धार्मिक गुत्थियों को भाषा-विज्ञान की सहायता से सुलझाया जा सकता है। धर्म के बल पर कभी-कभी कोई बोली अन्य बोलियों को पीछे छोड़कर विशेष महत्त्व पा जाती है। मध्य युग में अवधी और ब्रज के विशेष महत्त्व का कारण हमें धार्मिक इतिहास में ही प्राप्त होता है।

(ग) सामाजिक इतिहास–सामाजिक व्यवस्था तथा हमारी परम्पराएँ भी भाषा को प्रभावित करती हैं। भाषा की सहायता से किसी जाति के सामाजिक इतिहास का ज्ञान भी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय समाज में पारिवारिक सम्बन्धों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसलिए भारतीय भाषाओं में, माँ-बाप, बहन-भाई, चाचा, मौसा, फूफा, बुआ, मौसी, साला, बहनोई, साढ़ू, साली, सास-ससुर जैसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु यूरोपीय समाज में इन सभी सम्बन्धों के लिए केवल अंकल, आंट, मदर, फादर, ब्रदर, सिस्टर जैसे शब्द ही है जिनमें कुछ 'इन लॉ' आदि शब्द जोड़ जाड़ कर अभिव्यक्ति की जाती है। अतः भाषा-विज्ञान के अध्ययन में सामाजिक इतिहास पूरी सहायता करता है। इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था में शब्दों का किस प्रकार निर्माण हो जाया करता है इस पर भाषा-विज्ञान प्रकाश डालता है। किसी समाज की भाषा में मिलने वाले शब्दों से उसकी समाज-व्यवस्था का परिचय प्राप्त होता है। समाज में संयुक्त-परिवार व्यवस्था है, विशाल कुटुम्ब व्यवस्था है या एकल

परिवार व्यवस्था है, इस बात का उसमें व्यवहार किए गए शब्दों से पता चलता है।

भाषाविज्ञान तथा ज्ञान के अन्य क्षेत्र

भाषाविज्ञान के अध्ययन में तर्कशास्त्र, भौतिकशास्त्र एवं मानव-शास्त्र जैसे अन्य ज्ञान के क्षेत्र भी बड़ी सहायता पहुंचाते हैं। मनुष्य में अनेक प्रकार के अंधविश्वास घर कर लेते हैं, जिनका उसकी भाषा पर प्रभाव पड़ता है। भारतीय सामज में स्त्रियाँ अपने पति का नाम घुमा-फिराकर लेती है, सीधा-स्पष्ट नहीं। रात्रि में विशाल कीड़ों का नाम नहीं लिया जाता है। वे अपने लड़के का नाम मांगे (मांगा हुआ), छेदी (उसकी नाक छेद कर), बेचू (उसे दो-चार पैसे में किसी के हाथ बेच कर), घुरहू (कूड़ा), कतवारू (कूड़ा) अलिचार (कूड़ा) या लेंढ़ा (रड्डी), आदि रखते हैं। अंधविश्वासों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी सामाजिक-मनोविज्ञान से सम्बद्ध गुत्थियों के स्पष्टीकरण के लिए मानव-विज्ञान की शाखा-प्रशाखाओं का सहारा लेना पड़ता है।

इस प्रकार ज्ञान के अनेक क्षेत्र- संस्कृति-अध्ययन, शिक्षाशास्त्र, सांख्यिकी, पाठ-विज्ञान–आदि भाषा विज्ञान से गहरा सम्बन्ध रखते हैं।

भाषाविज्ञान के क्षेत्र

मानव की भाषा का जो क्षेत्र है वही भाषा-विज्ञान का क्षेत्र है। संसारभर के सभ्य-असभ्य मनुष्यों की भाषाओं और बोलियों का अध्ययन भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान केवल सभ्य-साहित्यिक भाषाओं का ही अध्ययन नहीं करता अपितु असभ्य-बर्बर-असाहित्यिक बोलियों का, जो प्रचलन में नहीं है, अतीत के गर्व में खोई हुई हैं उन भाषाओं का भी अध्ययन इसके अन्तर्गत होता है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के विभाग

विषय-विभाजन की दृष्टि से भाषाविज्ञान को भाषा-संरचना (व्याकरण) एवं 'अर्थ का अध्ययन' (semantics) में बांटा जाता है। इसमें भाषा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण और वर्णन करने के साथ ही विभिन्न भाषाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है। भाषाविज्ञान के दो पक्ष हैं- तात्त्विक और व्यावहारिक।

तात्त्विक भाषाविज्ञान में भाषा का ध्वनिसम्भार (स्वरविज्ञान और ध्वनिविज्ञान (फोनेटिक्स)), व्याकरण (वाक्यविन्यास व आकृति विज्ञान) एवं शब्दार्थ (अर्थविज्ञान) का अध्ययन किया जाता है।

व्यावहारिक भाषाविज्ञान में अनुवाद, भाषा शिक्षण, वाक-रोग निर्णय और वाक-चिकित्सा, इत्यादि आते हैं।

इसके अतिरिक्त भाषाविज्ञान का ज्ञान-विज्ञान की अन्यान्य शाखाओं के साथ गहरा संबंध है। इससे समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, गणनामूलक भाषाविज्ञान (computational lingustics), आदि इसकी विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ है। भाषाविज्ञान के गौण क्षेत्र निम्नलिखित हैं-

1. भाषा की उत्पत्ति—भाषा-विज्ञान का सबसे प्रथम, स्वाभाविक, महत्त्वपूर्ण किन्तु विचित्र प्रश्न भाषा की उत्पत्ति का है। इस पर विचार करके विद्वानों ने अनेक सिद्धान्तों का निर्माण किया है। यह एक अध्ययन का रोचक विषय है, जो भाषा के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है।

2. भाषाओं का वर्गीकरण—भाषा के प्राचीन विभाग (वाक्य, रूप, शब्द, ध्वनि एवं अर्थ) के आधार पर हम संसार भर की सभी भाषाओं का अध्ययन करके उन्हें विभिन्न कुलों या वर्गों में विभाजित करते हैं।

3. अन्य क्षेत्र—भाषा के अध्ययन के भाषा-भूगोल, भाषा-कालक्रम विज्ञान, भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज, लिपि-विज्ञान, भाषा की प्रकृति, भाषा के विकास के कारण आदि अन्य अनेक क्षेत्र हैं।

तात्त्विक भाषाविज्ञान के प्रक्षेत्र

स्वनविज्ञान (Phonetics)—मानव के स्वर-यंत्र द्वारा उत्पन्न स्वनियों का अध्ययन,

स्वनिमविज्ञान (Phonology)—किसी भाषा के स्वनिमों का अध्ययन,

रूपविज्ञान (morphology)—शब्दों के आन्तरिक संरचना का अध्ययन,

वाक्यविन्यास या वाक्यविज्ञान (syntax)—वाक्य का निर्माण करने वाली शाब्दिक इकाइयों (lexical units) के बीच परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन,

अर्थविज्ञान (semantics)—शब्दों एवं कथनों के अर्थ का अध्ययन,

शैली (style),

प्रायोगिक भाषाविज्ञान (pragmatics)।

वाक्य-विज्ञान—भाषा में सारा विचार-विनिमय वाक्यों के आधार पर किया जाता है। भाषा-विज्ञान के जिस विभाग में इस पर विचार किया जाता है उसे वाक्य-विचार या वाक्य-विज्ञान कहते हैं। इसके तीन रूप हैं-

1. वर्णनात्मक (descriptive)
2. ऐतिहासक वाक्य-विज्ञान (Historical)
3. तुलनात्मक वाक्य-विज्ञान (Comparative)

वाक्य-रचना का सम्बंध बोलनेवाले समाज के मनोविज्ञान से होता है। इसलिए भाषा-विज्ञान की यह शाखा बहुत कठिन है।

रूप-विज्ञान—वाक्य की रचना पदों या रूपों के आधार पर होती है। अत: वाक्य के बाद पद या रूप का विचार महत्त्वपूर्ण हो जाता है। रूप-विज्ञान के अन्तर्गत धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि उन सभी उपकरणों पर विचार करना पड़ता है, जिनसे रूप बनते हैं।

शब्द-विज्ञान—रूप या पद का आधार शब्द है। शब्दों पर रचना या इतिहास इन दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। किसी व्यक्ति या भाषा का विचार भी इसके अन्तर्गत किया जाता है। कोश-निर्माण तथा व्युत्पत्ति-शास्त्र शब्द-विज्ञान के ही विचार-क्षेत्र की सीमा में आते हैं। भाषा के शब्द समूह के आधार पर बोलने वाले का सांस्कृतिक इतिहास जाना जा सकता है।

ध्वनि-विज्ञान—शब्द का आधार है ध्वनि। ध्वनि-विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों का अनेक प्रकार से अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत ध्वनि-शास्त्र (Phonetics) एक अलग से उपविभाग है, जिसमें ध्वनि उत्पन्न करने वाले अंगों-मुख-विवर, नासिका-विवर, स्वर तंत्री, ध्वनि यंत्र के साथ-साथ सुनने की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के दो रूप हैं-ऐतिहासिक और दूसरा तुलनात्मक। ग्रिम नियम का सम्बन्ध इसी से है।

अर्थ-विज्ञान—वाक्य का बाहरी अंग ध्वनि पर समाप्त हो जाता है यह भाषा का बाहरी कलेवर है, इसके आगे उसकी आत्मा का क्षेत्र प्रारम्भ होता है, जिसे हम अर्थ कहते हैं। अर्थ-रहित शब्द आत्मारहित शरीर की भाँति व्यर्थ होता है। अत: अर्थ भाषा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। अर्थ-विज्ञान में शब्दों के अर्थों तथा उसके कारणों पर विचार किया जाता है।

भाषाविज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ अथवा प्रकार

किसी भी अध्ययन को हम वैज्ञानिक तब कहते हैं, जब उसमें एक निश्चित प्रक्रिया को अपना कर चलते हैं। भाषा विज्ञान भी किसी भाषा के कारण-कार्यपरक युक्तिपूर्ण विवेचन-विश्लेषण के लिए कुछ निश्चित प्रक्रियाओं

में बंध कर चलता है। इन्हीं प्रक्रियाओं के आधार पर अभी तक भाषा-विज्ञान के पाँच प्रकार के अध्ययन हमें प्राप्त होते हैं-

सामान्यतया भाषा का अध्ययन निम्नांकित दृष्टियों से किया जाता है–

वर्णनात्मक पद्धति

वर्णात्मक पद्धति द्वारा एक ही काल की किसी एक भाषा के स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है। इसके लिए इसमें उन सिद्धांतों पर प्रकाश डाला जाता है, जिनके आधार पर भाषा-विशेष की रचनागत विशेषताओं को स्पष्ट किया जा सके। ध्यातव्य है कि इस पद्धति में एक साथ विभिन्न कालों को भाषा का समावेश नहीं किया जा सकता, क्योंकि हर काल की भाषा के विश्लेषण के लिए पृथक्-पृथक् सिद्धांतों का प्रयोजन करना पड़ेगा।

पाणिनि न केवल भारत के, अपितु संसार के सबसे बड़े भाषाविज्ञानी हैं, जिन्होंने वर्णनात्मक रूप में भाषा का विशद् एवं व्यापक अध्ययन किया। **कात्यायन** एवं **पतंजलि** भी इसी कोटि में आते हैं। ग्रीक विद्वानों में **थ्रैक्स**, **डिस्कोलस** तथा **इरोडियन** ने भी इस क्षेत्र में उल्लेख्य कार्य किया था।

पाणिनि से पूर्ण प्रभावित होकर **ब्लूमफील्ड** (अमरीका) ने सन् 1932 ई. में 'लैंग्वेज' नामक अपना ग्रन्थ प्रकाशित करवाकर वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इधर पश्चिमी देशों–विशेषकर अमरीका में वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का आशातीत विकास हुआ है।

❐❐❐